नागार्जुन के उपन्यासों में नारी-विमर्श

शोध-निर्देशक
डॉ. सुशील कुमार शर्मा
उपाचार्य, हिन्दी विभाग

अनुसंधित्सु
नमी दास

NORTH-EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY
Date........

हिन्दी विभाग
मानविकी एवं शिक्षा संकाय
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलाँग - 793022

Thesis

NEHU LIBRARY
Acc No. 103964
Acc By ...
Date 8-6-10
Class ...
Sub.Heading ...
Enter by ...
Transcribed by ...

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी-विमर्श

अनुसंधित्सु
नमी दास

द्वारा
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग, के हिन्दी विभाग में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी-एच.डी.) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग

अक्टूबर 2009

घोषणा

मैं नमी दास एतद्द्वारा घोषित करती हूँ कि इस शोध-प्रबंध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किए गए कार्यों का परिणाम है। इस शोध-सामग्री के आधार पर न तो मुझे, और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान की गयी है और न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध-उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/संस्थान में प्रस्तुत किया गया है ।

इसे पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग के सम्मुख हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी.एच. डी.) की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है ।

SK Sharma 14.10.09 | SK Sharma 14.10.09 | नमी दास
अध्यक्ष | निर्देशक | अनुसंधित्सु
अध्यक्ष Head
हिन्दी विभाग/Hindi Deptt
पू.प.वि.वि, शिलांग- 22
N.E.H.U, Shillong- 22

(डॉ. सुशील कुमारा शर्मा)

प्राक्कथन

समाज मनुष्य के रहन-सहन एवं एक विशेष गतिमय प्रवाह को लेकर चलता है। उस गतिमय प्रवाह में मनुष्य की सहभागिता प्रबल होती है। मनुष्य की इसी सहभागिता में मुख्य रूप से सम्मिलित होने वाली नारी पुरुष की जीवन संगिनी होती है। समाज में स्त्री-पुरुष दोनों का जीवन संवहन एक विशेष सम्बन्धों पर टिका हुआ है। नारी कही जाने वाली स्त्री कहीं माता के रूप में, तो कहीं बहन के रूप में, अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करती है। वह पत्नी के रूप में भी पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक परंपराओं के निर्वाह में पुरुष की जीवन संगिनी बनकर गार्हस्थ्य जीवन के विविध स्वरूप को साकार करती है। भारतीय सांस्कृतिक रंगमंच पर लोक-संस्कृति की अधिष्ठात्री नारी 'देवी', 'अर्धांगिनी' तथा माता जैसी सम्बोधनों से सुशोभित होने पर भी सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य में प्रायः कुत्सा का ही शिकार बनी रही और समस्त सामाजिक विसंगतियों का कारण मानी जाती रही । वैदिक काल की मर्यादित अवधारणा में नारी का उदात्त चित्रण हुआ – 'जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहीं देवता निवास करते हैं' यह एक सर्वोत्कृष्ट युग बोध में नारी का महत्त्व प्रतिपादित करता है। मानव की उत्पत्ति का माध्यम 'नारी' देवत्व से पूर्ण रही, किन्तु मध्यकाल में उपेक्षा-तिरस्कार की मार झेलती तमाम प्रवंचनाओं की शिकार हुई। पुनः युग बोध परिवर्तन के साथ नारी साहित्य की विषय बनी - सीता, पार्वती, अन्नपूर्णा के रूप में तुलसी के काव्य में, तो राधा रुक्मिनी के रूप में सूर के काव्य में, आधुनिक काल में 'नारी' केवल श्रद्धा का विषय बनकर जीवन के सुन्दर समतल में पीयूष स्रोत बनकर बहती रही। अबला का जीवन जीती अश्रुपूरित नेत्र लिए नारी, पुत्र पालक और गृहिणी के रूप में नजर आई ।

वर्तमान युग में नारी का उत्तरदायित्व बढ़ गया है। शिक्षा के फलस्वरूप उसे अपनी गरिमा का भान हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप जीवन के विविध आयामों के संदर्भ में लाख प्रश्न उभरकर उसके सामने आने लगे। नारी को अपने जीवन का ढर्रा काफी बदलना

पड़ा और उसके लिए उसे प्रशंसा तथा दुशंसा दोनों झेलनी पड़ी । वर्तमान आधुनिक यथार्थ बोध में नारी उपयुक्त भाव बोध से निकलकर संकुचित दायरे को तोड़कर विस्तृत फलक पर अपनी पहचान कायम कर रही है। नारी नर की सहभागिनी, अर्धांगिनी, गृहवासिनी होने के अतिरिक्त सहकर्मणी, सहचरी से भी आगे निकलकर आज युग परिवर्तिनी बन चुकी है। नारी की स्थिति का चित्रण तत्कालीन युग बोध में नारी के प्रति समाज की अवधारणा, समाज के अनुचित व्यवहार के प्रति सजग नारी की खुलेआम संघर्ष घोषणा, वैचारिक विरोध में समाज और पुरुष दोनों से जूझती नारी नागार्जुन के उपन्यासों में आयी है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में नारी की स्थिति एवं उसकी समस्याओं के विविध पहलुओं पर सूक्ष्मता से चिन्तन किया है। नारी सर्वत्र उनके उपन्यासों में विमर्श बिन्दु रही है। इनके उपन्यासों की संवेदना की आधार भूमि हमारे भारत की आत्मा 'ग्रामीण जमीन' ही रही है। जीवन में जूझती नारी ही उपन्यासकार के विमर्श के केन्द्र में रही है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में 'नागार्जुन और उनके उपन्यास साहित्य' को विवेचित किया गया है । प्रथमतः नागार्जुन के जीवन परिचय के अंतर्गत जन्म, शिक्षा-दीक्षा, विवाह, गार्हस्थ्य जीवन तथा देहावसान को दर्शाया गया है। जन्म, पारिवारिक स्थिति एवं शिक्षा-दीक्षा का गहनतम बिन्दुओं में विवेचनात्मक तथ्य उपलब्ध कराया गया है, साथ ही विवाह, गार्हस्थ्य जीवन तथा देहावसान के यथार्थ वातावरण का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास साहित्य में — रतिनाथ की चाची,बलचनमा, नयी पौध, दुखमोचन, बाबा बटेसरनाथ, उग्रतारा, वरुण के बेटे, कुम्भीपाक, जमनिया का बाबा, पारो के अन्तर्गत् नारी विमर्श का परिचायात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय 'नारी एवं नारी विमर्श' सैद्धांतिक पीठिका के रूप में है। इसमें नारी का आविर्भाव, नारी के पर्यायवाची शब्द,नारी के विविध रूप, नारी

का महत्त्व तथा नारी के अन्य स्वरूपों की महत्ता का प्रदिपादन किया गया है। नारी-विमर्श का अर्थ एवं परिभाषा भारतीय एवं पाश्चात्य नारी चिंतकों की दृष्टि से प्रस्तुत की गयी है। इसी अध्याय में नारी विमर्श के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है। नारी विमर्श के उद्भव और विकास को पाश्चात्य आयातीत अवधारणाओं एवं आधुनिक भारतीय साहित्यकारों की उचित सार्थक अवधारणाओं को एक विवेचनात्मक बिन्दु आधार पर रखकर देखा गया है। नारी विमर्श वह नारीवादी अवधारणा है जिसके लेखन में पितृसत्तात्मक मूल्यों एवं अवधारणाओं को चुनौती दी गई है। उसके विरूद्ध संवाद करते हुए उन मूल्यों को खारिज किया गया है, उससे स्त्री को समाज में बदलती हुई स्थिति, दृष्टि और भूमिका का प्रश्न भी नए परिप्रेक्ष्य में उभरकर सामने आया है। इन्हीं नारीवादी अवधारणाओं को विश्लेषणात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है ।

शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में 'नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्र' के जीवन अस्तित्व की तलाश जारी है, जहाँ व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्र कैसे अपना जीवन-यापन करते हैं तथा सामाजिक वैषम्य से लड़कर कैसे अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करते हैं, इसका विमर्श उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है। इसके विमर्शात्मक स्वरूप में नारी जीवन का सुख और उसकी आधिकारिक माँग एक नए दृश्य के रूप में उभर कर सामने आयी है। नारी-विमर्श की सत्यता नागार्जुन ने भींगे स्वर में नहीं की है बल्कि उनकी लेखनी युग बोध से ऊपर को छलांग लगाती है । पुरुष वर्चस्व के विरोध में आवाज उठाने वाली नारी अपनी मानसिक शक्ति का प्रयोग इस व्यवस्था को समझने में करती है। नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों में व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्र की खोज की गई है, जिसमें उच्च वर्ग के नारी पात्र, मध्य वर्ग के नारी पात्र, निम्न वर्ग के नारी पात्र, ग्रामीण नारी पात्र, शहरी नारी पात्र, शिक्षित नारी पात्र, अशिक्षित नारी पात्र आदि का विश्लेषण किया गया है । नारी की जागृति नागार्जुन की अन्तःधारणा है जो इसमें वर्गीय क्रम में जूझती नारी

की विमर्शात्मकता को स्पष्ट करती है ।

शोध-प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में 'नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी की भूमिका' को विवेचित किया गया है। जिसमें नारी की पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, कामकाजी आदि नारियों की भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसमें नारी की पारिवारिक भूमिका के निर्वाह में सामाजिक विषमताओं की बाधक प्रवृत्ति का नवीन रूप उभकर सामने आया है। पुरुष वर्चस्व के बीच अपने परिवार को सम्हालती नारी आर्थिक विषमता से जूझती है। सामाजिक भूमिका में युग परिवर्तिनी नारी चेतना शक्ति के रूप में उपस्थित है । नारी समाज के उन बन्धनों का विरोध करती है, जहाँ पर उसका विकास बाधित होता है। पुरुष वर्चस्व के खिलाफ नारी का आक्रोश उस व्यवस्था की भर्त्सना करता है, जहाँ नारी केवल भोग और विलास की वस्तु समझी जाती रही है। विलासिता के विरूद्ध आवाज उठाती नारी का अपने अधिकारों के प्रति सजग होना नारी विमर्श का प्रतीक है । समाज में मानवोचित अधिकार में सम्मिलित मानवीय संवेदना, नारी की सजग चेतना को एक उत्कृष्ट आयाम प्रदान करती है। उसका जीवन संघर्षों से भरा पड़ा है, किन्तु नागार्जुन मूल्यों के प्रति एक सशक्त विमर्श प्रदान करते हैं, जहाँ नारी झुकती नहीं बल्कि सभी विद्रूपताओं से लड़ने के लिए तैयार है। नागार्जुन के उपन्यासों में नारी की पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक भूमिका को सरल व्याख्यात्मक रूप में वर्णित किया गया है। इसमें नारी की सरलता-दुरूहता ऊपर-नीचे होकर सन्तुलन बनाती है, जो गृहस्थी में जीवन को एक नवीन स्थायित्व प्रदान करती है। यही जागरूकता नारी-विमर्श की बिन्दु है।

पंचम अध्याय में 'नागर्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन की प्रमुख समस्याएँ' वर्णित हैं जिसमें नारी जीवन की पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक समस्याएँ मुख्य हैं। जीवन की इन प्रमुख समस्याओं का तार्किक विवेचन किया गया है । जिसमें विवश नारी का घुटन से बाहर निकलने के अथक प्रयास का वर्णन तो है ही साथ ही

उससे उत्पन्न आक्रोश, उसकी चेतना का साकार बिम्ब बन पड़ा है। इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में नारी ही विमर्श की बिन्दु रही है।

शोध-प्रबन्ध के उपसंहार के अन्तर्गत् उपर्युक्त अध्यायों से प्राप्त निष्कर्षों का समाहार एवं समाकलन किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पूज्य गुरुवर डॉ. सुशील कुमार शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग के सफल निर्देशन में पूर्ण हुआ है । उनके स्नेहिल, अनुशासित और विद्वतापूर्ण निर्देशन के द्वारा ही यह शोध-कार्य सम्पन्न हो सका है। उन्होंने मुझे समय-समय पर जो सुझाव दिए इसके लिए मैं उनके भव्य-व्यक्तित्व के समक्ष सविनय नत हूँ । मैं डॉ. दिनेश कुमार चौबे, डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय एवं श्री भरत प्रसाद त्रिपाठी के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मुझे प्रेरित कर मेरा मनोबल बढ़ाया । मैं अपनी माताजी श्रीमती नियतिदास एवं पूज्य पिताजी श्री टुकन कुमार दास एवं सासु माँ श्रीमती मनीषा दास को प्रणाम करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस योग्य बनाया । भाई प्रसेनजित दास एवं भाभी वन्दना दास की मैं आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे हर पल सहयोग प्रदान किया । मैं अपनी पुत्री श्रेयसी दास को मौन सहयोग के लिए आशीष देती हूँ, जिसने मेरे कार्य और अपनी बाल बोधता के बीच कभी भी विकटता नहीं आने दी ।

मैं नियन्त पुरकायस्थ (उपकुल सचिव, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय) तथा पति श्री सुमन्त दास की आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य को पूरा करने में हमेशा अपना सहयोग प्रदान किया ।

अन्त में, मैं सभी मित्र, परिवार के सदस्यों एवं शुभचिन्तकों का आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया है।

नमी दास
अनुसंधित्सु

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन :	I - V
प्रथम अध्याय : नागार्जुन और उनका उपन्यास-साहित्य	1 - 71
1. क नागार्जुन का जीवन-परिचय	
1. क. I जन्म	
1. क. II शिक्षा-दीक्षा	
1. क. III विवाह	
1. क. IV गार्हस्थ्य-जीवन	
1. क. V देहावसान	
1. ख नागार्जुन का उपन्यास-साहित्य	
1. ख. I रतिनाथ की चाची	
1. ख. II बलचनमा	
1. ख. III नयी पौध	
1. ख. IV दुखमोचन	
1. ख. V बाबा बटेसरनाथ	
1. ख. VI उग्रतारा	
1. ख. VII वरुण के बेटे	
1. ख. VIII कुम्भीपाक	
1. ख. IX जमनिया का बाबा	
1. ख. X पारो	
द्वितीय अध्याय : नारी एवं नारी-विमर्श	72 - 151
2. क नारी	
2. क. I नारी का आविर्भाव	
2. क. II नारी के पर्यायवाची शब्द	
2. क. III नारी के विविध रूप	
2. क. IV नारी का महत्त्व	
2. ख नारी-विमर्श	
2. ख. I नारी-विमर्श का अर्थ एवं परिभाषा	
2. ख. II नारी-विमर्श का उद्‌भव और विकास	
2. ख. III भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी-विमर्श	
2. ख. IV पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य में नारी-विमर्श	

तृतीय अध्याय : नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी-पात्र 152-201
3. क व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी-पात्र
3. ख वर्ग चरित्र के रूप में नारी-पात्र
3. ख. I उच्चवर्ग के नारी-पात्र
3. ख. II मध्यवर्ग के नारी-पात्र
3. ख. III निम्नवर्ग के नारी-पात्र
3. ख. IV ग्रामीण नारी-पात्र
3. ख. V शहरी नारी-पात्र
3. ख. VI शिक्षित नारी-पात्र
3. ख. VII अशिक्षित नारी-पात्र
चतुर्थ अध्याय : नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी की भूमिका 202-251
4. क. नारी की पारिवारिक भूमिका
4. ख. नारी की सामाजिक भूमिका
4. ग. नारी की धार्मिक भूमिका
4. घ. नारी की आर्थिक भूमिका
4. ङ. कामकाजी नारी की भूमिका
पंचम अध्याय : नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन की प्रमुख समस्याएँ 252-305
5. क. पारिवारिक समस्याएँ
5. ख. सामाजिक समस्याएँ
5. ग. धार्मिक समस्याएँ
5. घ. आर्थिक समस्याएँ

उपसंहार 306-314

संदर्भ ग्रंथ-सूची 315-318

प्रथम अध्याय

नागार्जुन और उनका उपन्यास-साहित्य

प्रथम अध्याय

नागार्जुन और उनका उपन्यास-साहित्य

1. क नागार्जुन का जीवन-परिचय

प्राख्यात कथाकार नागार्जुन मिथिला की धरती पर अवतरित हुए । उनके जीवन प्रसंग में उनकी विविधताओं के दर्शन होते हैं । उनके संदर्भ में जन्म की तिथि निश्चित न होने के कारण विद्वत समाज में अनेक प्रकार के अनुमानित काल प्राप्त होते हैं । वैसे उनके जीवन-परिचय के संदर्भ में जन्म और स्थान के बारे में भले ही अनेक तर्क दिए जाते हैं, किन्तु ज्ञात और प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर हम उनके जीवन-परिचय के बारे में उनकी कृतियों से तथा उनसे संबन्धित व्यक्तियों द्वारा उल्लेखित काल के आधार पर उनके जीवन-परिचय को शोधात्मक परिधि में बाँध सकते हैं ।

यथार्थ की भूमि पर ग्रामीण आदर्श का दर्शन कराने वाले विद्यापति की संगीतात्मक धारा और कालिदास जैसे कवियों की साहित्य गौरवता से ओत-प्रोत बाबा नागार्जुन का साहित्यिक जीवन, तुलसीदास की विविधता, निराला की महाप्राणत्वता और मुक्तिबोध की यथार्थ तीक्ष्ण दृष्टि की सर्जकता से ओतप्रोत था । संगति और सहानुभूति के साथ समाज का उभरता चित्र जो नागार्जुन के स्वानुभूत सत्य का चित्र साहित्यों में प्राप्त होता है, उतना ही सत्य उनका जीवन था और उतना ही यथार्थ उनका जीवन परिचय है ।

हिन्दी साहित्य में जहाँ उन्हें प्रगतिशील हिन्दी उपन्यासकार कहा जाता है, तो वहीं मैथिली साहित्य की गौरवपूर्ण ऊँचाई प्रदान करने वाला भी । उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के बाद साहित्य सृजन के क्षेत्र में प्रगतिवादी विचारधारा रखने के चलते स्वनाम धन्य बाबा नागार्जुन प्रखर प्रतिभा का परिचय देते हुए हिन्दी में मिथिला की जीती-जागती तस्वीर प्रस्तुत करते हैं।

1. क। जन्म :

उपन्यासकार बाबा नागार्जुन के जन्म से सन्दर्भित विद्वानों के मध्य विविध तर्क उभरकर सामने आते हैं । नागार्जुन का जन्म भी वैसी ही विचित्राओं से भरा हुआ है, जितना उनका व्यक्तित्व 'विचारधारा और रचना कर्म' । विद्वानों ने बाबा नागार्जुन की जन्म तिथि के निर्धारण में अपने-अपने मत प्रकट किए हैं । डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार 1910 ई. माना गया किन्तु डॉ. सुशीला व्यापारी के अनुसार सन् 1890 ई. माना गया है। सर्वमान्य 1911 ई. जेष्ठ मास की पूर्णिमा को ही उनका जन्म निर्धारित है। इनका जन्म गाँव तरौनी में हुआ ऐसा माना जाता है । वास्तव में उनका जन्म उनके पैतृक ग्राम में न होकर ननिहाल में हुआ था, जो 'सतलखा' नाम से प्रसिद्ध है। जिसका पोस्ट मधुबनी और जिला दरभंगा है। उनका पैतृक गाँव तरौनी उनके ननिहाल 'सतलखा' शहर से लगभग 24-25 कि.मी. उत्तर-पूर्व में अवस्थित है। सतलखा ग्राम और तनौनी ग्राम दोनों जिला दरभंगा मिथिला भूखण्ड का ही एक अंग है । नागार्जुन का जन्म ग्रामीण परिवेश में निम्न मध्यवर्गीय मैथिली ब्राह्मण परिवार में हुआ, उनका गोत्र 'वत्स' और कुल की साखा 'पालिवाड़ समील' माना जाता है । उनके पिता का नाम 'गोकुल मिश्र' तथा माता का नाम 'उमा देवी' था । गोकुल मिश्र के कई संताने हुईं किन्तु कोई जीवित नहीं बच सकी । इससे उदास होकर उनके पिता ने धार्मिक मान्यताओं के आधार पर 'वैद्यनाथ शिवधाम' में पुत्र प्राप्ति हेतु कठिन तपस्या और घोर अनुष्ठान करते हुए कुछ समय व्यतीत किए । शिव के आशीर्वाद के फलस्वरूप बाबा नागार्जुन का जन्म हुआ, लोक मान्यताओं के अनुसार चलते हुए उनके माता-पिता ने इनका नाम 'ठक्कन मिसिर' रख दिया, ताकि ये लम्बी उमर तक जीवित रह सकें । मिथिलांचल में प्रचलित और व्याप्त लोकाचार के अनुसार एक विश्वास है कि उल्टे-सीधे नाम रखने से उसी नाम से शिशु को पुकारने से शिशु दीर्घायु होता है ।

उनकी माता उमा देवी एक सुशील ग्रामीण महिला थी, सरल हृदय, ईमानदारी की प्रतीक परिश्रम से कभी न घबराने वाली, किन्तु रूढ़िवादी थी । नियति की कठोरता का शिकार होकर उमा देवी शिशु ठक्कन को छोड़कर चल बसी । 4 साल से कम उम्र में मातृहीन होकर रोता बिलखता शिशु जीवन जीने की कला और संघर्ष करना सीखने लगा । माँ की स्मृति अभाव मात्र शेष रह गयी, जिससे मातृत्व का कोई स्नेहिल पृष्ट दृष्टि पटल में न आ सका और न ही मानस पटल में उभर सका । माता की मृत्यु के बाद बालक ठक्कन अर्थात बाबा नागार्जुन का पालन-पोषण उनके पिता गोकुल मिश्र ने ही किया । अब माता-पिता दोनों रूप में गोकुल मिश्र ही उपस्थित थे । अपने परिवार में जनाभाव होने के चलते गोकुल मिश्र को सारी जिम्मेदारी अपने कंधे पर उठानी पड़ी । कठोर तपस्या के उपरान्त 'वैद्यनाथ शिव' के आशीर्वाद से छठे पुत्र के रूप में बालक ठक्कन का नाम बैद्यनाथ ही रखा गया । पत्नी की मृत्यु के चलते गोकुलनाथ मिश्र के चिड़चिड़े स्वभाव का शिकार शिशु वैद्यनाथ को ही होना पड़ा, जिसके चलते पिता के द्वारा पालित पुत्र कठोर अनुशासन और क्रूरतापूर्ण जीवन जीने के लिए मजबूर था, जिसके चलते मन में अश्रद्धा, घृणा और आक्रोश की भावनाएँ घर करती गयीं।

अपने परिवार में किसी दूसरी औरत के न होने से पट्टीदारी की चाची की देख रेख में पलता बालक 'वैद्यनाथ पिता की कठोरता से मर्माहत हुआ, जिससे बचपन अत्यन्त ही असन्तुलित और खीझपूर्ण हो गया । कठोर बचपन के चलते वैद्यनाथ के मन में धृष्टता और क्रान्तिकारी भावनाएँ पलने लगीं, जो बाद में चलकर उनकी कृतियों में प्राप्त होती हैं । साम्यवादी और प्रगतिशील विचारधाराएँ इसी का परिणाम है, किन्तु चाची की देख रेख से प्रभावित 'वैद्यनाथ मिश्र' नागार्जुन अपनी कृतियों में नारी के विशिष्ट रूपों के प्रभाव का चित्रण करते हैं । बालक वैद्यनाथ के जन्म की साम्यता उनकी कृति 'रतिनाथ की चाची' के मुख्य पात्र 'रतिनाथ' से की जाती है। बचपन की इस संघर्ष साम्यता को लेकर 'रतिनाथ की चाची'

का 'रतिनाथ' मानो स्वयं वैद्यनाथ ही होता है। जन्म के कुछ ही वर्ष बाद माँ को खोकर वैद्यनाथ पिता के कड़े अनुशासन और क्रूरता से लड़कपन की स्वर्णिम संभावनाओं को खो बैठता है । पिता के प्रति हृदय में आज्ञाकारी बालक की तरह प्रतिष्ठा न प्राप्त करने के चलते मानसिक अन्तर्द्वन्द की झेलता पिता-पुत्र का यह सम्बन्ध पुत्र को क्रान्तिकारी बना देता है । मातृ अभाव में छिनता बचपन शुष्क और उग्र हो उठता है, किन्तु पिता के कड़े अनुशासन के चलते वह घुटन के बाद में चलकर विस्फोटात्मक साहित्य का रूप धारण करता है ।

1. क ।। शिक्षा-दीक्षा :

बालक वैद्यनाथ मिश्र मातृहीन तो थे ही, पिता के पौरोहित्य कर्म से प्रभावित उनका पारिवारिक जीवन पितृ स्नेह से भी वंचित हो गया । पिता घर से बाहर पुरोहिती करने निकल पड़ते और उसी से जीविकोपार्जन करते । इसलिए उचित शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध न हो सका । पिता, पुत्र वैद्यनाथ को भी इसी पौरोहित्य कर्म में लगाकर पुरोहित बनाना चाहते थे, इसलिए वे वैद्यनाथ को संस्कृत वांङ्मय के श्लोक कठोरता पूर्वक रटाते थे । गाँव की पाठशाला से प्रथमा की परीक्षा पास करने के बाद आगे अध्ययन जारी रखने की विकट समस्या उत्पन्न होकर सामने आयी । आखिर पढ़ाई हो तो कैसे ? वैसे गाँव में एक और भी विद्यालय तो था लेकिन अंग्रेजी के गुलाम भारत में तत्कालीन परिवेशानुसार उसमें अंग्रेजी की शिक्षा-दीक्षा दी जाती थी । लेकिन उसका खर्च वैद्यनाथ जैसे विद्यार्थी के लिए उनके पारिवारिक परिवेश में बहुत ही महँगा था । इसलिए वह महँगा खर्च न तो स्वयं वैद्यनाथ को ही स्वीकार्य था और न ही उनके पिता में इस खर्च को उठा पाने का सामर्थ्य ही था । इस तरह स्थिति स्पष्ट हो जाती है । पिता की असमर्थता ने बालक वैद्यनाथ के अध्ययन का रास्ता संस्कृत श्लोकों और अमरकोश की तरफ मोड़ दिया । किन्तु देव-वसात किसी स्वजन की प्रेरणा से उन्हें पढ़ने के लिए सिर्फ प्रोत्साहन ही नहीं मिला बल्कि संबल भी प्राप्त हुआ । 'पचगछिया' नामक स्थान में शिक्षक के रूप में कार्यरत वे स्वजन वैद्यनाथ को उचित शिक्षा

का प्रबन्ध कराने में जुट गये, जिसका पूर्ण लाभ वैद्यनाथ को प्राप्त हुआ । अंग्रेजी शासन काल में जमींदारों का वर्चस्व था । किसी जमींदार ने प्रभावित होकर वैद्यनाथ (नागार्जुन) को बहुत मदद की । जिसके चलते वे वहीं से मध्यमा की परीक्षा भी पास कर सके ।

तत्कालीन सामाजिक परिवेश में रूढ़ियों व्याप्त थीं और रूढ़िवादी विचारधाराओं का साम्राज्य था । मिथिला के ग्रामीण परिवेश में मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवारों में तमाम रूढ़ियाँ व्याप्त थी, जिनमें छुआछूत से लेकर जाति-पाति के भेद और धार्मिक ढकोसले व्याप्त थे । किन्तु नागार्जुन का बचपन मातृहीन होने से और पिता के पौरोहित्य कर्म में लिप्त होने के चलते निम्न जाति के हम उम्र लड़कों के साथ बीता था । परम्परागत दृष्टि से संस्कृत पढ़ने वाले पिता गोकुलनाथ के पुत्र वैद्यनाथ को संस्कृत परिवेश ही मिला और अंग्रेजी शिक्षा के प्रति अस्वीकार्यता, क्योंकि वे लोग अंग्रेजी शिक्षा को धर्म विरूद्ध मानते थे । समय और बदलते समाज उस परम्परावादी परिवेश में मैथिल परम्परावादियों को आकृष्ट नहीं कर सका और उनके दृष्टिकोण में अंग्रेजी पढ़ने का अर्थ विशिष्ट बनकर समाज भ्रष्ट होना ही था । अंग्रेजी से प्राप्त शिक्षा से वकील बनकर मुकद्दमेवाजी के पैतरे उन्हें पाप कर्म लगते किन्तु मछली खाने में थोड़ी भी हिचक नहीं थी, वैसे तो लहसून-प्याज के विरोधी थे किन्तु किसी भी शुभ कार्य के सम्पन्न होने पर मछली खाने से नहीं घबराते ।

धर्मावलंबी के मध्य व्याप्त रूढ़िवादी विचारधाराओं के चलते अंग्रेजी शिक्षा के प्रति कठमुल्लावादी विचारधारा ही व्याप्त रही । इसलिए इस तरह का परिवेश शिक्षा के मामले में आज भी पिछड़ेपन का उदाहरण है । किन्तु संयोगवश मैथिल समाज अब इस परम्परावादी विचारधारा से ऊपर उठकर पुरानी धारणा को ध्वस्त करते हुए शैक्षिक प्रकाश पथ पर अग्रसर है । मध्यमा की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वैद्यनाथ मिश्र की प्रखर बुद्धि में ज्ञानार्जन की तीव्र इच्छा जागृत हुई । विद्या की भूख दिन-प्रतिदिन बढ़ती गयी और ज्ञानार्जन की प्यास उन्हें अध्ययन के लिए जागरूक करती गयी । किन्तु घोर सामाजिक वैषम्यों का शिकार

किशोरावस्था पारिवारिक आर्थिक विपन्नता के चलते पुनः अध्ययन का मार्ग अवरूद्ध करता हुआ लगा, फिर वही समस्या आ खड़ी हुई आखिर पढ़े तो कैसे ? किन्तु ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा के लिए भाग्य भी भला क्यों न खड़ा हो । वैद्यनाथ मिश्र पुनः अपने एक सम्बन्धी की सहायता से और उन्हीं की प्रेरणा से प्ररित होकर 'संस्कृत शास्त्री' की पढ़ाई के लिए बनारस पहुँच ही गये । पुण्यभूमि काशी में इन्हें मैथिल परिवेश के दरभंगा महाराज की एक महारानी की कृपा वृष्टि प्राप्त हो गयी । महारानी के ही संरक्षण में रहकर उन्हीं के द्वारा संचालित धर्मशाला में वैद्यनाथ मिश्र अपने मिथिलांचल के कुछ छात्रों के साथ विद्या अध्ययन हेतु वहीं रहने लगे । शास्त्री की पढ़ाई के दौरान अध्ययन और अधिवास का खर्च महारानी द्वारा प्रदत्त वृत्ति से निकल जाया करता था । काशी के छात्रावास में रह रहे वैद्यनाथ (नागार्जुन) जहाँ शिक्षा के प्रति समर्पित थे, संकल्पित थे, वहीं उनके हृदय में अपार कारुणिक संवेदना थी । मैथिल समाज में उपेक्षित नारियों के प्रति पुरुष वर्चस्ववादिता का साम्राज्य देखकर नागार्जुन का हृदय नारी करुणा के प्रति सजग था ।

'बाल सभा' जो पं. बलदेव मिश्र द्वारा संचालित थी, जिसकी सम्पूर्ण आर्थिक व्यय की व्यवस्था, देख-रेख, संरक्षा और सुरक्षा, दरभंगा महारानी की ओर से ही होती थी। बाल वर्धनी सभा' का मुख्य उद्देश्य बालिकाओं के कल्याण हेतु था जिसमें अन्य सामाजिक उद्देश्य भी निहित थे । जिसमें लगातार भाग लेकर और सहभागिता दिखाकर नागार्जुन ने महारानी की दयालुता और सहृदयता का लाभ भी प्राप्त किया और साथ ही साथ उनकी कृपा दृष्टि भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती गयी । जिस के चलते अपनी शिक्षा को आगे बढ़ाने में वैद्यनाथ (नागार्जुन) को काफी सहयोग प्राप्त हुआ । इस प्रकार अध्ययन करते हुए वैद्यनाथ मिश्र (नागार्जुन) ने शास्त्री की परीक्षा भी पास कर ली । 'बालवर्धनी सभा' के संचालक पं. बलदेव मिश्र भी मिथिला के ही मूल निवासी थे और काशी विद्यापीठ में अध्यापन कार्य किया करते थे । नागार्जुन ने वाराणसी में 'पालि' तथा 'प्राकृत' भाषाओं का अध्ययन किया । विविध धार्मिक

और सांस्कृतिक परिवेश में चल रहा उनका वाराणसी का वह जीवन पालि-प्राकृत भाषा के अध्ययन से और ही अन्तरग्राही हो गया । बौद्ध धर्म के प्रति आस्था और उसी क्षमता वाले सिद्धान्तों का ज्ञान जो साम्यवाद में भी प्राप्त होता है नागार्जुन को अपनी तरफ आकृष्ट करने लगा । बौद्ध धर्म में नारी भिक्षुणियों का व्यक्तित्व भी उन्हें प्रभावित करता रहा । तत्कालीन काशी के परिवेश में भारत के कोने-कोने से विविध वय की विधवाएँ काशी प्रवास हेतु पाप शमन के लिए निवास करती थीं । धार्मिक, सांस्कृतिक विविधता के साथ-साथ काशी की परम्परागत नारी ने नागार्जुन के हृदय पर गहरी छाप छोड़ी ।

वाराणसी से शास्त्री शिक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे 'काव्य तीर्थ' की उपाधि प्राप्त करने के लिए कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज में गये । वहाँ पर इनके कोई रिस्तेदार या संबन्धी रहते थे जिनका सम्पर्क व्यापारी वर्ग से था और वे स्वयं एक मारवाड़ी सेठ के यहाँ नित्य पूजा कर्म किया करते थे और उनकी भी यही इच्छा थी कि अपने खानदानी पेशा को अपनाकर नागार्जुन भी पौरिहत्य कर्म में लग जाएँ किन्तु नागार्जुन की प्रज्ञात्मक बुद्धि कौशलता और महानतम उद्देश्य जो उन्हें खींचकर कलकत्ते ले गया था इस कर्म को स्वीकार न कर सका । 'काव्य तीर्थ' में नामांकन कराने के पश्चात् उन्होंने वहाँ के प्राचार्य एस. एन. गुप्त के पास छात्रवृत्ति के लिए आवेदन किया था, किन्तु छात्रवृत्ति स्वीकृति की विलम्बता को देखते हुए इन्होंने अन्तरावीक्षा के दिन संस्कृत भाषा में एक प्रभावशाली कविता लिखकर किसी माध्यम से प्राचार्य महोदय तक पहुँचवाने में सफल हो गये, इनकी कविता को देखकर प्राचार्य एस. एन. गुप्त अत्यन्त ही प्रभावित हुए और उस काव्य कृति को हाथ में लिए हुए स्वयं ही उस विद्यार्थी को ढूँढ़ने कक्षा में चले आए । काफी खोजबीन के बाद भी यह किसकी कविता है वे न जान सके, किन्तु अपने सहयोगी 'सकल नारायण शर्मा' की बुद्धि चातुरी से नागार्जुन को पकड़ने में सफल हो गये । उन्होंने प्राचार्य से कहा "धरे गेलो सर, धरे गोले", इस प्रकार नागार्जुन की इस विलक्षण प्रतिभा से प्रभावित होकर प्राचार्य एस. एन. गुप्त ने छात्रवृत्ति के लिए नागार्जुन

का चयन कर लिया।[1]

इस प्रकार वैद्यनाथ (नागार्जुन) की प्रतिभा और साहित्य सृजन की क्षमता जो बनारस में उनकी सहयोगी थे ही कलकत्ते में भी शिक्षा अर्जन करने के लिए सहयोगी बनी। इन्होंने प्राकृत के साथ-साथ बांगला भाषा का भी गहन अध्ययन दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया, विद्यार्थी जीवन का कुशल परिश्रम 'बंगला भाषा' पर अधिकार प्राप्त करने में सफल हुआ, कलकत्ता पहुँचने पर वैद्यनाथ ने बंगला का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया, इतना की उसमें काव्य रचना कर सकें ।

1. क. III विवाह :

सामाजिक परिवेश में विवाह परम्परा मैथिल समाज के लिए धूम-धाम के साथ सम्पन्न होने वाले पारिवारिक यज्ञ के रूप में मानी जाती थी । विवाह की समय स्थिति निश्चित नहीं होती थी, बच्चे का पिता बड़े लगन ओर निष्ठा के साथ कम से कम उम्र में अपने पुत्र का विवाह कर देना चाहता था । वैद्यनाथ मिश्र के साथ भी वैसा ही हुआ, एक सम्पन्न परिवार की सभ्य सुशील कन्या अपराजिता के साथ 18 वर्ष की उम्र में वैद्यनाथ का विवाह हुआ । अपराजिता से विवाह बन्धन में बंधने के पश्चात् सन् 1933 ई. में नागार्जुन का गौना हुआ, इस प्रकार अपराजिता अपने ससुराल तरौनी ग्राम में सन् 1933 में आयीं । पत्नी के प्रति वैद्यनाथ का गहरा प्रेम था और पत्नी के सेवा व्रत से प्रभावित वैद्यनाथ (नागार्जुन) उन्हें यथोचित सम्मान भी दिया करते थे, किन्तु सामाजिक विद्रुपता के परिचायक उनके पिता सारे दुर्गुणों से सम्पन्न थे, इसलिए नागार्जुन का पिता के प्रति अश्रद्धा शुरू से ही थी । पिता के कलुसित मानसिकता के चलते वह अश्रद्धा-भाव गहरी वेदना बनकर उमड़ती-घुमड़ती रही और वे गाँव घर छोड़कर भ्रमण पर निकल पड़े । यायावरी प्रवृत्ति के कारण इन्होंने भारत के विभिन्न जगहों का तो भ्रमण किया ही, तिब्बत और लंका आदि देशों में भी गये, इन्हीं यायावरी वृत्ति के कारण उनके वैवाहिक जीवन में उथल-पुथल मचा रहा, जिसके चलते वे पत्नी और

परिवार को यथोचित प्रेम और स्नेह नहीं दे सके । अनुपस्थिति के चलते पूर्ण निष्ठाभाव से चाहते हुए भी वैवाहिक सम्बन्धों के निर्वाह में असंतोष व्याप्त रहा । कारण था पिता का उग्र एवं कलुसित विचारधारा तथा भ्रष्ट दृष्टिकोण जो तत्कालीन मैथिली समाज की वैषम्यता के प्रति संकेत करता है। नारी के प्रति बुरी दृष्टि और उसकी बेचारगी का फायदा उठाना जो नागार्जुन के पिता के रग-रग में व्याप्त था; नागार्जुन को पारिवारिक मोह से विरक्त करता चला गया और उन्होंने 1937 में जो घर छोड़ा तो 1941 ई. तक घर वापस नहीं आए । वैवाहिक जीवन के प्रति नागार्जुन की कोई विरक्ति नहीं थी और न ही वे पति धर्म पालन में असक्षम थे। किन्तु पिता के व्यवहार से खिन्न होकर वे मिथिला को प्रणाम कर निकल पड़े थे । सिन्ध काठियाबाड़, भावोहर, पटियाला के साथ-साथ वे लंका और तिब्बत में भी भ्रमण करते रहे । आवोहर में पहुँचकर आर्य समाजी व्यक्तित्व केशबानन्द के सम्पर्क में आने के कारण भ्रमण की इच्छा चार गुनी हो गयी । आर्य समाजी दर्शन से प्रभावित होकर भी वे वैवाहिक सम्बन्ध और पत्नी को याद करते रहे और पिता को दण्ड देने की इच्छा से मानसिक और हार्दिक कष्ट पहुँचाने के लिए अज्ञात रूप से इधर-उधर भ्रमण करते रहे, लेकिन उस समय भी विवाह बन्धन में बधे पत्नी की चिन्ता हमेशा सताती रही और प्रवास के दौरान मिथिला की याद भी सताती रही । बाद में सात-आठ वर्षों के दौरान भागलपुर जेल से छुटने पर उनके सम्बन्धियों ने उन्हे पकड़कर तरौनी ग्राम लाया ।

इस प्रकार भ्रमण करने के दौरान भी पत्नी और परिवार की चिन्ता बनी रहती थी जिसका उल्लेख उन्होंने अपने साहित्य में विभिन्न प्रसंगों में संकलित रूप में किया है। उनकी पत्नी अपराजिता देवी ग्रामीण परिवेश में जीवन निर्वाह करने वाली थीं । उन्हें शहर की जिन्दगी कभी रास नहीं आई, इसलिए वह वापस ग्राम तरौनी चली आयीं । इस प्रकार वैद्यनाथ का पिता के प्रति अश्रद्धा भले हो या उनके प्रति अनास्था और आक्रोश व्याप्त हो किन्तु अपनी पत्नी अपराजिता देवी और बच्चों के प्रति स्नेह भाव बना रहा । उन सभी लोगों

के देखभाल की चिंता भी सताती रहती थी ।

1. क. IV गार्हस्थ्य-जीवन :

नागार्जुन का गार्हस्थ्य जीवन विविध उथल-पुथल से भरा हुआ तो था ही, सामाजिक वैषम्यता और तत्कालीन परिवेश से प्रभावित होकर नयी-नयी रोचकताएँ पैदा करता रहा । कारण था पिता की कलुषित मानसिकता और तत्कालीन मैथिल समाज की विद्रूपता क्योंकि विवाह बन्धन में बंधने के बाद ही वे पिता के व्यवहार से घर के प्रति विरक्त होने लगे, जिसका उल्लेख उन्होंने स्वयं कृष्णा सोबती को दिए गए साक्षात्कार में कहा है कि इस विरक्ति का मुख्य कारण है कि "पिता उनकी भाभी पर आसक्त थे, रूप की पिता को इतनी ललक थी कि वे विधवा भाभी को न छोड़ सके । 'नागार्जुन' के शब्दों में – 'यह घटना मेरी विरक्ति की मूल कारण थी । मौका लगते ही घर से भाग निकला ।'"[2]

इन सामाजिक और पारिवारिक विद्रुपताओं से मन को गहरा आघात पहुँचा और नागार्जुन ने गृह त्याग कर दिया । सात-आठ वर्षो तक भटकने के बावजूद भी बौद्धधर्म से प्रभावित होकर भी बहुत सारे सामाजिक पारिवारिक दन्श झेलते हुए भी गार्हस्थ्य जीवन का तत्परता से निर्वाह करना नागार्जुन जैसे क्रान्तिकारी और संकल्पित व्यक्ति से ही सम्भव था । घर-परिवार और पत्नी के प्रति गहरा लगाव, उनमें जीवन जीने के प्रति जागरूकता उत्पन्न की। गुलाम भारत की मानसिकता के बीच मैथिल समाज में विविध रूढ़ियों से लड़ते हुए उन्होंने सफल गार्हस्थ्य जीवन जिया । उनके चार पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं । उपेक्षा एवं धनाभाव के कारण वे अपनी संतान को उच्च शिक्षा नहीं दे सके । माना की उनकी संताने उच्च शिक्षा से बंचित रह गयी, किन्तु गार्हस्थ्य जीवन के निर्वाह में पत्नी और परिवार के लिए वे हमेशा कृत संकल्पित, कर्मनिष्ठ और सजग रहे ।

नागार्जुन के जीवन में आर्थिक विपन्नता हमेशा बरकरार रही । पैतृक सम्पत्ति भी इतनी नहीं थी जिसके माध्यम से इस विपन्नता से उबरा जा सके । जिसके चलते उनके

गार्हस्थ्य जीवन में गरीबी, धनाभाव और भूख की आतुरता हमेशा बरकरार रही । साहित्य सेवी होने के कारण इसका उल्लेख वे अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र करते रहे – "मैं दरिद्र हूँ" जैसे पंक्तियों का उल्लेख यह दर्शाता है कि उनकी आर्थिक विपन्नता चरम सीमा पर थी और यह क्रम पुश्त-दर-पुश्त से चलता रहा, तभी तो 'पुश्त-पुश्त की यह दरिद्रता' जैसी पंक्तियाँ उनकी काव्य कृतियों में धड़ल्ले से प्रयुक्त हुई । उनके गार्हस्थ्य जीवन को विपन्नता का सबसे बड़ा कारण उनके आलसी पिता का स्वभाव रहा जो स्वयं तो नशे में धुत्त रहते ही थे और चाहते थे कि पुत्र उपार्जन करके उन्हें बुढ़ापे में आराम ही आराम दें । गरीबी इतनी चरम पर थी की उन्हें पौरोहित्य कर्म से लेकर गाड़ियों मे किताब तक बेचनी पड़ती थी ।

उनके पुत्र 'शोभाकान्त' नागार्जुन के गृहस्थ जीवन का यथार्थ चित्रण करते हुए लिखते है – "बाबूजी के जीवन के तीन रूप सन्यासी, गृहस्थ और रचनाकार को जब मैं देखता हूँ तो सोचता हूँ कि यदि वे चाहते तो तीनों में ही सामान्य से विशिष्ट और सुविधा भोगी तो वह बन ही सकते थे" और इसी तरह एक जगह और कहते हैं – "बाबूजी अपने पारिवारिक दायित्व निर्वहन के बारे में शत-प्रतिशत प्रगतिशील प्रगतिशील सर्वहारा थे अपने किसी भी पुत्र अथवा पुत्रियों के शादी विवाह में एक पैसों की लेन-देन भी नहीं की और न किसी सामान की आधुनिकता और प्रगतिशीलता की असली पहचान उनके सामाजिक जीवन में बराबर दिखती है ।"[3]

संघर्षशील जीवन व्यतीत करने के बाबजूद भी उनके जीवन की विपन्नता बराबर बनी रही, गृहस्थी के प्रारम्भ से ही बेटे की बिमारी और उसका इलाज प्रकाशकों से की गयी मनुहार का वर्णन उनके पुत्र शोभाकान्त जी बड़े यथार्थ रूप से करते हुए कहते हैं – "बेटा बच गया विकलांग होकर ही सही प्रकाशक ने पचास सौ रुपये और दिए या नहीं पता नहीं, यह समय है नागार्जुन के उपन्यासकार बनने का बाजूजी मूलतः कवि रहे हैं । वे कहा करते थे कि आर्थिक बोझ जब असह्य हो जाता है तो उपन्यास लिखना पड़ता है ।"[4]

गार्हस्थ्य जीवन की इस यात्रा में तमाम झंझावातों को झेलने के बाद भी नागार्जुन जी का साहित्य सेवा उनके गार्हस्थ्य जीवन का ही एक अंश था, जिससे वे गाहें-बगाहें, धनार्जन के लिए भी प्रयोग करते थे । इसलिए सन् 1966 में छोटी बेटी 'उर्मिला' का विवाह करने के लिए उन्हें सरकार को अपनी पुस्तकें भी बेचनी पड़ीं, जिसके खरीद के बदले सरकार ने उन्हें धन मुहैया कराया जिसका उपयोग वे उर्मिला के विवाह में कर सके । जीवन के प्रति उनका सामान्य दृष्टिकोण था और वे कहा करते थे – "मुझे सुविधा भोगी सम्पन्न बनने की बजाय सामान्य आदमी बनना आसान लगता है और सुविधाजनक भी ।" जिसके सन्दर्भ में उनके पुत्र 'शोभाकान्त जी' कहते हैं – "अब सोचता हूँ आज के इस भागम-भागी आर्थिक युग में शायद मेरे लिए यह वाक्य एक मंत्र की तरह है ।"[5]

गार्हस्थ्य जीवन की आर्थिक विपन्नता ने ईश्वर के प्रति विश्वास को ही तोड़ दिया था और वे पुर्णतः ईश्वरीय आस्था से दूर होते चले गए । उनके पुत्र 'शोभाकान्त जी' लिखते हैं – "मुझे नहीं याद है कि कभी मैंने बाबूजी को माला के दानों पर उंगली फेरते हुए देखा हो । कभी भी उनके मुँह से किसी भी स्थिति में हे ! भगवान मुझे सुनायी नहीं पड़ा ।" भगवान के बदले वे अपनी माँ का नाम अवश्य लिया करते थे । शोभाकान्त जी लिखते हैं – "बहुत बिमार हालत में यह अवश्य सुना था कहाँ गयी ओ सतलखा वाली, मेरी दादी 'सतलखा' नामक गाँव की थीं, मेरे बाबा उसे सतलखा वाली कहा करते थे । अपनी माँ को वे मृत्यु से कुछ पहले याद करते रहे ।" जीवन संघर्ष से मर्माहत होकर वे अनिश्वरवादी हो गये थे जिसके संदर्भ में 'शोभाकान्त' कहते हैं –"राहुल ने एक बार बाबूजी से पूछा तुम्हें भगवान याद आते हैं कभी नागार्जुन ? नागार्जुन चुप रहे । कुछ देर बाद राहुल ने यह बात दोहराई । नागार्जुन खामोश ही रहे, पेपर पर नजर गड़ाए, जब तिवारी राहुल ने यही पूछा तो बाबूजी जोर से बोल पड़े लगता है आपके दिमाग में उस शैतान ने अस्तित्व बना लिया है ।"[6]

जीवन में यथार्थ भूमि पर जीने वाले नागार्जुन को परिवार की आवश्यकताओं और

आर्थिक मजबूरियों का ध्यान हमेशा रहता था । इसलिए यात्रा के समय वे अपनी आवश्यकता की सारी सामग्री कंधे से लटकते हुए झोले में ही रख लिया करते थे । जो भौतिक जीवन ढाई मास में दो चार दिनों के लिए आता था, एक प्रिय सखी की भूमिका निभाता और स्वयं चला जाता । इस दौरान वे स्नान कम करते 'आजमापेक्स' की गोलियाँ लेते और गरम पानी का सेवन करते थे ।"[7]

सहज और सरल व्यक्तित्व के धनी नागार्जुन अपनी कृतियों में मिथिला से सम्बन्धित खाद्य और भोज्य पदार्थों का बड़ा ही सरल उल्लेख किया है जिससे उनके सरल गार्हस्थ्य जीवन का परिचय मिलता है। बीमार होने पर भी वे बर्जित पदार्थों का सेवन करने से भी नहीं चुकते । जैसे दमा होने पर भी दही, चिउड़ा खा जाते, अमरूद का सेवन कर बैठते। हास्य-विनोदी स्वभाव वाले बाबा नागार्जुन खाद्य पदार्थों के साथ सेवन किए जाने वाले विशेष चटनी, मिर्च इत्यादि को "अन्न ढक़ेलना" नाम से सम्बोधित किया करते थे ।

1986 के बाद इनके स्वास्थ्य में काफी गिरावट आने लगी कभी दमा के प्रकोप से प्रभावित होते तो कभी रक्त अल्पता के कारण 'कोमा' में चले जाते, किन्तु जीवन जीने के लिए संघर्ष करते रहे। पत्नी की मृत्यु के बाद मूक आँखों से लगातार आँसू भी गिरते रहे ओर पत्नी के जीवन संघर्षों को याद कर यह अवशेष व्यक्त करते रहे कि वह मुझसे पहले इस संसार से चली गयी । किन्तु सहज स्वभाव से अपनी पौत्री 'श्रद्धा' के विवाह में अपनी पुत्रबधू को सास का अभाव भी खलने नहीं दिया । विवाह की सारी रस्मों को एक बुढ़ी ब्राह्मणी की तरह निर्देशित करते रहे ।

इस प्रकार सारी विपन्नता और जीवन संघर्ष के बाद भी सरल जीवन जीने में, आस्था रखने वाले 'बाबा नागार्जुन' का गार्हस्थ्य जीवन अभावग्रस्त भले ही रहा हो किन्तु असफल और असंतोषप्रद नहीं ।

1. क. V देहावसान :

नागार्जुन का जीवन काफी अस्वस्थता में ही गुजरता रहा कारण था दमे की बिमारी का कुप्रभाव, स्वाँस बाधा बहुत कष्टकारी स्थिति में पहुँचा देती थी, उनके पुत्र शोभाकान्त जी लिखते हैं कि – "सन् 1986 ई. के बाद मेरे बाबूजी अक्सर अस्वस्थ्य रहने लगे थे । बार-बार रक्त अल्पता के शिकार होकर वार्धक्य के कारण कोमा में आ जाते और उन्हें सघन चिक्त्सा कक्ष में ले जाना पड़ता । गाँव से माँ आती, कुछ क्षण तक उन्हें निहारती और बोल उठती, यह बूढ़ा कीड़ा तब तक नहीं मरेगा जब तक मैं जीवित हूँ",[8] और हुआ वैसा ही । शोभाकान्त जी के माँ की मृत्यु पहले हुई श्राद्ध कर्म नागार्जुन जी के हाथों ही सम्पन्न हुआ ।

पत्नी की मृत्यु के एक ही वर्ष के अन्तराल में नागार्जुन जी का गोलोकवास हो गया । इससे यह साबित होता है कि अपनी पत्नी अपराजिता के प्रति इस लौकिक जीवन में उनका यह अलौकिक प्रेम कितना सफल और सार्थक था । सार्थकता स्वतः सिद्ध है कि पत्नी के देहावसान के कुछ ही दिनों के बाद आजीवन दमे से जूझते रहने के बावजूद भी, तभी इस मातृभूमि को अन्तिम प्रणाम किए जब उनकी जीवन संगीनी उनके लिए मार्ग प्रसस्त करती हुई गोलोकधाम को प्रस्थान कर गयी थी । शारीरिक रूप से कमजोर होकर थके हुए असक्त बाबा नागार्जुन का देहावसान 5 नवम्बर 1998 की सुबह में हुआ, और इस तरह हमने सबसे महत्वपूर्ण चर्चित, ऊर्जावान और क्रान्तिकारी कवि और कथाकार बाबा वैद्यनाथ मिश्र (नागार्जुन) यात्री को खो दिया । उनका पार्थिव शरीर 5 नवम्बर 1998 की सुबह बेला में पंचभूत में बिलीन हो गया । बाबा नागार्जुन के पुत्र शोभाकान्त जी अपने पिता की मृत्यु के अन्तिम क्षणों का वर्णन करते हुए लिखते हैं – "बाबूजी मृत्यु के साथ लगातार 12 वर्षो तक लुका-छिपी खेलते रहे, बार-बार मृत्यु चुपके से आकर हमला करती और जीवन की उत्कृष्ट लालसा लिए नागार्जुन उसे एक धक्का मारकर पिछे हटा देते और नवम्बर 1998 के 10 बजे दिन में मृत्यु

ने चुपचाप मेरे सामने इस जर्जर काया वाले वृद्ध को स्पर्श कर लिया .... बाबूजी कोमा में आ गए । डॉक्टरों ने कहा 72 घण्टे बच गए तो हम इन्हें फिर यम द्वार से वापस ले आएंगे .... पर 4 नवम्बर की शाम से सांस की गति जिस तेजी से बढ़ने लगी तो हम सब बुझी-बुझी आँखों से उन्हें निहारने लगे । रात के बारह बजे के बाद सेकेण्ड डेढ़ सेकेण्ड के लिए सांस टूटती फिर जोर से सांस लेते .... मानो जीवन भीतर से जोर लगा रहा हो .... यह क्रम लगातार छः घण्टे तक चलता रहा । जीने की अदम्य लालसा वाले रचनाकार हार मानने को तैयार नहीं .... मृत्यु पीछे हटने का नाम नहीं लेती .... और 5 नवम्बर के सबेरे 6 बजकर 20 मिनट पर जीवन ने जोर लगाया .... लम्बी सांस और यह उस शरीर के लिए अंन्तिम सांस थीं।''[9]

1. ख. नागार्जुन का उपन्यास-साहित्य :

उपन्यासकार नागार्जुन का रचना संसार – जहाँ विस्तृत है उसमें उपन्यासों का अभूतपूर्व योगदान है। **'रतिनाथ की चाची'** : 1948 में उनका पहला हिन्दी उपन्यास 'रति नाथ की चाची' इलाहाबाद से प्रकाशित होकर आया । यह उपन्यास तब से अब तक हिन्दी का चर्चित उपन्यास रहा है अब तो हम इस उपन्यास में शिशु नागार्जुन से किशोर और युवावस्था के नागार्जुन का जीवन भी तलासते हैं । **'बलचनमा'** यह उपन्यया 1952 में पहली बार इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था । इसमें एक परिश्रमी एवं ईमानदार किसान को अन्याय एवं अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष करता हुआ दिखाया गया है। **'नयी पौध'** यह 1952 में लिखा गया और 1953 में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ । इसमें असंगत विवाह की समस्या को केन्द्र में रखकर जर्जर सामाजिक मान्यताओं का विरोध किया गया है। **'दुखमोचन'** यह उपन्यास 1956 में भारत भूषण अग्रवाल के आग्रह पर रेडियों के लिए लिखा गया था जिसका प्रकाशन 1957 ई. में हुआ, इसका तेरह किस्तों में लखनऊ आकाशवाणी केन्द्र से प्रसारण भी हो चुका है। इसमें सदियों से जड़ सामाजिक बन्धनों से जकड़े हुए गाँवों के जीवन में नयी

UNIVERSITY LIBRARY 103964 Date..........

रोशनी के फैलने का संकेत दिया गया है । **'बाबा बटेसरनाथ'** 1953 ई. के नवम्बर माह में बाबा बटेसरनाथ नामक उपन्यास लिखकर नागार्जुन ने इसे एक रूप दिया और 1954 में यह दिल्ली से प्रकाशित हुआ । इसमें बरगद के पुराने वृक्ष को बचाने के लिए 'जय किसान' और 'जीवन संयुक्त मोर्चा बनाकर अन्याय का विरोध करते हैं । **'उग्रतारा'** 1963 ई. में उग्रतारा का प्रथम प्रकाशन हुआ यह उपन्यास पटना में लिखा गया था । इसे नागार्जुन ने डिक्टेसन देकर लिखाया था । इस उपन्यास में उगनी को कामेश्वर जैसे पुरुष का सहारा मिलता है जिसका दिल बहुत बड़ा है और जो पराया गर्भ ढोने वाली अपनी प्रेमिका को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार कर लेता है। **'वरुण के बेटे'** 1956 ई. में इलाहाबाद के साहित्यिक संकलन 'संकेत' की योजना बनी तो नागार्जुन ने 1956 ई. की जनवरी में इलाहाबाद में रहकर वरुण के बेटे नाम से एक उपन्यास लिखा जिसका पहला प्रकाशन 'संकेत' में हुआ । 1957 में इसका अलग से पुस्तकाकार रूप इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में मछुआ संघ की स्थापना होती है और गढ़पोखर हमारा है का नारा बुलन्द किया जाता है। **'कुम्भीपाक'** कुम्भीपाक का प्रथम प्रकाशन 1960 ई. में है । इस उपन्यास को लिखने की मानसिकता नागार्जुन ने 1957 ई. में बनायी और पटना में लिखना शुरु किया । पटना के भिखना पहाड़ी के जिस मकान में वे रहने लगे थे वह पूरा का पूरा कुम्भीपाक में दिखता है। इस उपन्यास को ये पूरा कर पाए 1959 ई. के अन्त में ; स्थान था कलकत्ता । वहीं से इसका प्रथम प्रकाशन हुआ । कुम्भपाक में भी ऐसे समझदार लोगों के समाज की कल्पना की गयी हैं जहाँ कोई किसी की वेवशी का फायदा नहीं उठाता, कोई किसी को चक्मा नहीं देता । जहाँ पुरुष ज्ञान है तो स्त्री शक्ति । 1972 ई. में चम्पा नाम से इसका पाकेट बुक संस्करण दिल्ली से प्रकाशित हुआ था । चम्पा कुम्भीपाक का एक मुख्य चरित्र है । **'जमनिया का बाबा'** 1967 ई. में जमनिया का बाबा इलाहाबाद में लिखा गया। किसान आन्दोलन के बीच बेतिया बिहार में इन पात्रों से नागार्जुन की टकराहट हो चुकी थी ।

उपन्यास में जिस सन्यासी पर 'मस्तराम' बेत बरसाता है वह उपन्यासकार स्वयं है। पीठ पर बेलों के निसान आजीवन रह गये । **'पारो'** : पारो का प्रकाशन 1975 ई. में हुआ । पारो मूलतः 1946 ई. में मैथिली में लिखा गया था, जो पटना से प्रकाशित हुआ था । मैथिली के सजग पाठकों ने इस उपन्यास को हाथों हाथ लिया इसी उपन्यास के प्रसिद्धि के बाद नागार्जुन ने हिन्दी में उपन्यास लिखने का मन बनाया । 1975 में इसे खड़ी बोली हिन्दी में रूपान्तरित किया गया । इसमें बाल विवाह जैसी कुरीति की बेदी पर अपना पूरा जीवन होम-कर देने वाली युवती की दारूण कथा कही गयी है ।

1. ख । रतिनाथ की चाची

नागार्जुन के औपन्यासिक सृजन में 'रतिनाथ की चाची' पहला सृजन है, जो 1948 में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ । जिसमें ग्रामीण जीवन की समस्याओं के साथ जूझती नारी का स्वरूप प्रदर्शित है। नारी अपने जीवन में अपमान, अत्याचार के विरूद्ध लड़ती है। जिसका संघर्षात्मक रूप समाज में पड़े पुरुष वर्चस्ववादी तत्वों को रास नहीं आती और वे गौरी जैसी विधवा नारी को अपमानित करने से बाज नहीं आते । इस उपन्यास में विधवा गौरी को सामाजिक दंश झेलते हुए जीवन जीने के लिए संघर्ष करने के साथ-साथ अपमान भी सहना पड़ता है। जिसका अत्यन्त ही मार्मिक चित्रण हुआ है, जिसमें सामाजिक यथार्थ का बड़े स्पष्ट शब्दों में वर्णन हुआ है। कथा के केन्द्र में गौरी है, शेष सारी घटनाएँ उसी के इर्द-गिर्द चक्कर लगाती है । विधवा गौरी का पुत्र 'उमानाथ' है और उसकी एक कन्या भी है। गौरी के देवर का नाम है जयनाथ, उसकी पत्नी मर चुकी है, उसका एक पुत्र है रतिनाथ । गौरी को जयनाथ से गर्भ रहता है। वह अपनी माँ के घर जाकर गर्भपात करा आती है किन्तु छोटी सी भूल उसके लिए अभिशाप बन जाता है । घर के सभी सदस्य यहाँ तक की अपने बेटा और बेटी से गौरी की प्रताड़नाएँ मिलती है। स्नेह मिलता है तो मात्र रतिनाथ से उसका अन्तिम संस्कार भी रतिनाथ ही करता है । उसके मन में बार-बार एक ही शंका आती है कि किसने

चाची के जीवन को अभिशाप बना दिया था ? इस प्रश्न का उत्तर उसे कहीं नहीं मिला ।

नारी के प्रति हो रहे अत्याचारों से समाज का जो स्वरूप बनता है वह सम्पूर्ण नारी वर्ग को सचेत करने के लिए संकेत देता है। गौरी की यह त्रासदी सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। उपन्यास में नारी चरित्र के बीच बालक रतिनाथ भी उपस्थित है। समालोचकों के अनुसार नारी संघर्ष के बीच रतिनाथ की उपस्थिति उपन्यासकार के निजी जीवन के कुछ घटना विशेष का समावेश सा लगता है। लेखक ने तत्कालीन समाज के पुरुष वर्चस्ववादी अवधारणा वाले एक वर्ग में पिसती नारी का जीवन संघर्ष दिखाया है। बार-बार दबा कुचला और प्रताड़ित नारी वर्ग आखिर कब तक चुप रहता ? कुलीनता के चक्कर में पड़कर गौरी जैसी नारी चरित्र का विवाह महादरिद्र रोगी सुस्त और दमे के मरीज वैद्यनाथ झा से कर दिया जाता है। जिससे उसका वैवाहिक जीवन अत्यन्त ही असन्तोषजनक हो जाता है। वैद्यनाथ की मृत्यु के बाद गौरी से उत्पन्न एक लड़के और लड़की का दायित्व भी गौरी के ऊपर ही आ पड़ता है। दरिद्रता तो पहले से विद्यमान ही है, वैधव्य और युवा अवस्था की एक छाँव की अतृप्ति के बीच गौरी का जीवन बहुत ही संघर्षमय वातावरण में व्यतीत होता है। समाज के कठोर अनुशासन के बीच इसमें रूढ़ियों और झूठी परम्परा के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त है । वहाँ इस अनमेल विवाह के कारण ग्रामीण जीवन में गौरी जैसी नारियाँ भाग्य को कोसती हुई जीवन भर माँ-बाप के साथ-साथ समाज को भी झूठा ठहराते हुए अन्तिम सांस ले लेती हैं । किन्तु उनके बीच वह आक्रोश वर्चस्ववादियों के लिए गहरी समस्या का रूप धारण कर लेता है।

जिस नारी को अबला और कमजोर समझा जाता है, वह भी अपने अत्याचार को बर्दाश्त करते-करते मुखर हो उठती है । विधवा विवाह एवं विधवा समस्या जो तत्कालीन समाज के नारियों के लिए सबसे बड़ा अभिशाप था, का वर्णन करते हुए 'रतिनाथ की चाची' में विधवा गौरी के जीवन का समस्याएँ हैं । विधवा गौरी स्वस्थ्य और तरूण विधुर जयनाथ की

ओर आकृष्ट होती है जिसके चलते उसकी जयनाथ का गर्भ रह जाता है । जयनाथ मध्यवर्ग के ग्रामीण जीवन के कुलीन ब्राह्मण का प्रतिनिधित्व भले करता हो, किन्तु वासना की पूर्ति के लिए नारी का उपभोग छिपकर करता है। इस तरह के पुरुष जो एक भ्रष्ट समाज को जन्म देते हैं किन्तु उसके परिणाम से घबराकर भाग खड़े होते हैं । जब कि समर्पित नारी कलंकित जीवन जीने के लिए मजबूर हो उठती है। जयनाथ की कामातुर इच्छाओं की तृप्ति विधवा गौरी से होता है, और साथ ही साथ गौरी अपने वैधव्य जीवन में एक कलंक भी ले बैठती है। जयनाथ जैसे पुरुष सामाजिक उत्तरदायित्व से पीछा छुड़ाने में कोई कोर कसर भी नहीं रखते किन्तु संघर्षशील नारी चुप-चाप नहीं बैठी रहती, उसके अन्दर भी इस रूढ़िवादी समाज के प्रति भी वितृष्णा का भाव सहज रूप से उत्पन्न हो उठता है। गौरी की माँ के रूप में अपने समय के पुरुष और परिवार के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए कह उठती है – "दरिद्र कुल में लड़की ब्याहने का ही यह दुष्परिणाम था ।"[10] गौरी की माँ पुरुष वर्चश्व को ललकारती है और उन रूढ़ियों को तोड़ने को कहती है। जिसके चलते कुलीनता के चक्कर में पड़कर गौरी का विवाह दमे के रोगी से किया गया । तत्कालीन समाज में नारी के प्रति तमाम विकृत अवधारणाएँ व्याप्त थीं किन्तु 'रतिनाथ की चाची' में नारी का स्वर मुखर हो उठता है –"कोई क्या कर लेगा हमारा ? बिटिया को मैं प्याज की तरह जमीन में दबाकर नहीं रख सकती । इसके चलते जो कुछ हो, 'मक्खन पाठक' की लड़की नहीं भाग कर पंजाब चली गयी और वहाँ एक सिक्ख के साथ रहती है । मैं अपनी लड़की को झाड़ू से झाड़पीटकर घर निकाला और देश निकाला दे दूँ, सो मुझसे नहीं होगा । मेरे जीते जी गौरी की मुसलमान या सिक्ख के घर जाने को कोई मजबूर नहीं कर सकता ।"[11] यहाँ नारी समाज से लड़ने के लिए पूरे तरह से तैयार है, वह यहाँ अबला नहीं है, वह डरी और सहमी नहीं है, बल्कि पूरे तेवर के साथ समाज के विद्रूपताओं और रूढ़ियों से लड़ने के लिए तैयार है। यहाँ नारी-नारी की दुश्मन नहीं है या परिवार की झूठी मान मर्यादा के लिए समाज के कलंकित लोगों का कलंक

स्वयं पर ओढ़ कर तिल-तिल कर मरने वाली नहीं है, यहाँ नारी घुटन से बाहर निकलकर स्वच्छन्द जीना चाहती है। साधिकार व समाज को बता देना चाहती है कि नारी अब चुप बैठने वाली नहीं है ।

भारतीय समाज में विधवा नारी के प्रति भेद-भाव अवश्य ही समाज के ढोंग ढकोसला के प्रति संकेत कर रहा हो किन्तु अपने शोषण के विरूद्ध नारी आवाज उठाने से नहीं चूकती और वर्चस्ववादी पुरुषों के कुकृतियों एवं दोहरे चरित्र का पर्दाफास भी करती है-- "वैधव्य जीवन की यह विसंगतियाँ हैं, अंधेरे में जो पाप करते हैं उजाले में वही आलोचना भी करते हैं ।"[12] पुरुष के इस दोहरे चरित्र का पर्दाफास कर नारी यह बताना चाहती है कि वह अब अपने अन्दर समझ पैदा कर चुकी है।

जीवन संघर्ष के दौरान गौरी चुप बैठने वाली नहीं है। समाज में नर व नारी दोनों किस प्रकार संघर्षशील व्यक्ति के जीवन का मजाक उड़ाते हैं और मजाक का शिकार व्यक्ति, चुप सा बना रहता है किन्तु गौरी को देखने आयी ओरतों से बिना किसी लाग-लपेट के कहती है – "ओ अभागी औरतो ! मुझे क्या हो गया है यह तुम भली भाँति जानती हो ! तुम स्त्री हो तुम्हें पता है कि इस तरह का संकोच किसी विधवा की मुखाकृति पर कब छाया रहता है, फिर क्यों मेरा दिमाग चाटने आई हो ?"[13] यहाँ नारी समाज के भय से थर-थर काँपती नहीं, हृदय केले के पत्ते की तरह काँपता नहीं उसके समूचे शरीर का लहू पानी-पानी नहीं होता, वह विस्तर पर जाकर लेट नहीं जाती बल्कि वह चोट खायी नागिन की तरह फुफकार उठती है और देखने आयी औरतों को बता देना चाहती है कि हम डरे सहमे नहीं है बल्कि सामाजिक रूढ़ियों के विरूद्ध लड़ते हुए अपने अस्तित्व के लिए निरन्तर संघर्ष करने का दम-खम भी रखती है । लेखक ने नारी के आक्रोश को दबाया नहीं है बल्कि नारी की जागरूकता को समाज के सामने परोसा है। इसिलिए तो जयनाथ से सुशीला कह उठती है – "तुम जिस जाति में, जिस समाज में, पैदा हुए हो, वह जिन्दा नहीं मुर्दा घर है।"[14] लेखक ने

इसमें नारी की चेतना को जागृत किया है और कलुसित मानसिकता से भरे हुए समाज को पहचानने की शक्ति के प्रति संकेत किया है क्योंकि नारी भी अब समाज के कुचक्रों को भली-भाँति पहचानने लगी हैं । 'रतिनाथ की चाची' में चाची बारीक सूत 'चरखा संघ' वालों को बेचती है। बारीक सूत कातने पर चाची को 'अखिल भारतीय सूत प्रतियोगिता' में पदक प्राप्त होता है फिर भी उसे मजदूरी नहीं मिलती, लेकिन वह मन ही मन इन राजनीतिक कुचक्रियों के चाल को भली-भाँति समझ जाती है। उसके मन के अन्दर यह बना है कि उन्हें आखिर मजदूरी क्यों कम मिलती है, जबकि उसे तो पदक प्राप्त है । नागार्जुन ने नारी के मुक्त चेतना का मनोवैज्ञानिक विमर्श प्रस्तुत किया है।

1. ख ll बलचनमा

'बलचनमा' उपन्यास जो 1952 में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ, अपने कथात्मक शैली के लिए सुप्रसिद्ध है । इस उपन्यास में लगता है कि कथावाचाक ही कथानायक हैं या 'बलचनमा' उपन्यास का नायक ही आत्म कहानी कहता चला जाता है । इसमें भी मिथिलांचल के दरभंगा जिले के ग्रामीण परिवेश में जीवन व्यतीत करने वाला 'बलचनमा' का कथा चरित्र है, जो एक अभावग्रस्त तथा साधनहीन, कर्मठ और ईमानदार बालक है । वह परिश्रमी किसान के रूप में कथा के अन्दर चित्रित है। शोषण और दमन के विरूद्ध आवाज उठाने वाले 'बलचनमा' के जीवन निर्माण में उसके दादी और माँ के साधनहीन जीवन की मजबूरियाँ हैं जो एक संघर्षशील नारी के रूप में इस कथा में उभरकर सामने आया है। सोराजी नेताओं के जीवन व्यवहार से परिचित 'बलचनमा' परिस्थितियों से समझौता करने वाला नहीं है । लेखक ने 'बलचनमा' के माध्यम से जमीनदारों के शोषण अत्याचार और अमानवीय दुष्कृत्यों का पर्दाफास किया है।

लेखक ने सिर्फ 'बलचनमा' के संघर्ष को ही नहीं, बल्कि उस पर आधारित जीवन व्यतीत करने वाली दो नारियों के जीवन संघर्ष का भी चित्रण किया है । बचपन में जमीनदारों

के अत्याचार का दृश्य जब सामने उभरकर आता है, पिटते बाप को छुड़ाने के लिए माँ और दादी का बिलखना अगर यथार्थ का चित्रण है, तो वहीं नयी पीढ़ी के प्रति सचेत होना नारी चेतना का खुला परिदृश्य है। बचपन में काम का विरोध करते हुए दादी रूपी नारी कह उठती है 'अभी खाने खेलने के दिन हैं, इसी समय जोत देगी तो कलेजा सूख जाएगा ।''[15] नयी पीढ़ी के प्रति यह सोच नारी विमर्श का नया आयाम है, किन्तु अकेलेपन की जिम्मेदारियों से बोझिल माँ रूपी नारी सजग और सचेत है – ''इस पर माँ क्या बोले भी ? यहीं कि अभी से पेट की फिकिर नहीं करेगा तो आगे बहतरा हो जाएगा ....।''[16]

नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत है। अपनी और अपने संतति की भले-बुरे के बारे में सोच सकती है । इसका सहज उदाहरण प्रस्तुत करते हुए नागार्जुन ने दादी रूपी नारी से सहज भाव से ही सही किन्तु कहलवा तो अवश्य दिया है – ''नहीं सरकार ललुआ की कमाई का निसान है वह खेत । उसे न छीने । क्या कमी है आपको ....।''[17] जमीनदार की झिड़कियों से न डरते हुए 'बलचनमा' की माँ बोल उठती है वह डरती नहीं आखिर उसका भी मुँह जमीनदार के विरूद्ध खुल ही जाता है – ''गिरहथ, यह जमीन घर के नगीच पड़ती हैं । मकई या मड़ुआ जो चाहें छींट दें, बो दें कुछ न कुछ हो ही जाता है । निगाह के सामने रहने से अगोरने का इंतजाम अलग से नहीं करना पड़ता है,'बलचनमा अभी बच्चा है, कौन सँभालेगा ?''[18]

नारी की मजबूरियों का नाजायज फायदा उठाने वाले जमीनदार वर्ग के प्रति नारी का यह आक्रोश, नागार्जुन के उपन्यास में नारी की चेतना और समझ को आवश्यकतावादी पहलुओं के तरफ इंगित करता है, जिसमें नारी अपनी आवश्यकतओं के प्रति सचेत है और अगली पीढ़ी के प्रति अग्रसोची भी ।

'बलचनमा' नामक उपन्यास में नागार्जुन जी ने सामन्तवादी विचारधारा से ग्रस्त जमीनदारों की ऐयासी के विरूद्ध नारी को खड़ा किया है । नारी सचेत हुई है और वह सोचने

के लिए मजबूर हुई है कि अधिकारतः हम यहीं तक सीमित हैं ? क्या हमारा मान मर्यादा नहीं ? भले ही पेट की क्षुधा उसे सब कुछ बर्दाश्त करने के लिए और सहकर चुप हो जाने के लिए मजबूर कर दें किन्तु उसकी चेतना सुप्त नहीं हैं, वह जागृत हैं तभी तो 'बलचनमा' की माँ छोटे मालिक के दृष्टि को भाँप कर इस जीवन जीने के प्रति खिन्न हो उठती है, क्योंकि खेती के साथ जब छोटे मालिक (जमीनदार) अपनी काम पिपासा शांत करना चाहते हैं तो 'बलचनमा' की माँ कह उठती है – "बबुआ 'बलचनमा' मर जाना लाख गुना अच्छा है ! मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं ....।"[19]

यहाँ नारी अत्याचारों से पीड़ित होकर उब भले गयी है किन्तु वह शोषण के विरूद्ध कोई भी कदम उठाने के लिए तैयार है। वह यूँ ही शोषिता बनकर जीना नहीं चाहती, चाहें क्यों न उसे अपने जीवन की समाप्ति ही कर देनी पड़े ।

नागार्जुन के औपन्यासिक नारी चरित्रों में सहज भाव से चेतना जागृत है, जो अपने आन-मान और मर्यादा के लिए सचेत तो है ही, समाज को कड़े विरोधों के साथ बता भी देना चाहती है कि नारी कमजोर भले है, मजदूर भले हैं किन्तु हारकर पस्त होने वाली नहीं है ।

'बलचनमा' का क्रान्तिकारी रूप और राजनीति में दक्ष होना रहे नारी शोषण के विरूद्ध प्रतिशोध की भावना का परिणाम है । नारी की सजगता में साथ देने का सही अवसर पहचानकर 'बलचनमा' स्त्री के प्रति सहानुभूति का भाव लेकर राजनीति में कूद पड़ता है।

'बलचनमा' के तत्कालीन सामाजिक परिवेश में नारी-पुरुष, बेटा-बेटी का भेद-भाव चरमोत्कर्ष पर था, किन्तु नागार्जुन के पात्र चुप नहीं बैठते । नारी के अधिकारों की माँग के प्रति सचेत 'बलचनमा' 'भेद-भाव' का कट्टर विरोधी है, तभी तो वह सम्पूर्ण वर्ग विशेष को धिक्कारते हुए कहता है – "हमारे यहाँ बड़ी जाति वालो में माँ-बाप के दिल लड़कों के लिए

और होते हैं और लड़कियों के लिए और । घर-गिरहस्थी, जमीन-जजात, माल-जाल, रुपया-पैसा, कैंचा-कौड़ी, लत्ता-कपड़ा, दौलत का चाहें अम्बार लगा हो, मगर धी-बेटी के लिए उस ओर निगाह उठाना भी गुनाह समझा जाता है ।''[20]

'बलचनमा' का यह भाव परिदृश्य नारी के अधिकारों को समुचित माँग का आग्रह हैं, यहाँ कोई नारी किसी नारी के लिए मुखर नहीं होती, किन्तु अपढ़ ग्रामीण भी इस भेद-भाव के विरूद्ध है । नागार्जुन की यह स्त्री चेतना उनके औपन्यासिक भूमि को उर्वरी तो बनाती ही है साथ ही समाज को सोचने के लिए बाध्य करती है, कि पुरुष भी नारी के साथ किए गए सामाजिक भेद-भाव के विरूद्ध है।

1. ख. III नयी पौध

इलाहाबाद से 1953 में प्रकाशित 'नयी पौध' उपन्यास 'नवतुरिया' का हिन्दी अनुवाद है। बेमेल विवाह पे आधारित नारी संघर्ष का चित्रण है, जिस वर्चस्व को तोड़ने के लिए नारी के साथ पुरुष भी कदम से कदम मिलाकर चल रहा है । खोखा पं. नामक व्यक्ति अपनी विधवा बेटी की पुत्री विसेसरी की सादी के लिए एक दूल्हा लाता है, जिसकी उम्र साठ वर्ष है । वह बहुत बड़ा खेतिहर है ओर वह पाँचवी बार दूल्हा बनकर आया है । विसेसरी के इस अनमेल विवाह से ही नारी जीवन के संघर्ष का रूप सामने उभरकर आता है। सौराठ नामक स्थान पर शादी करने वाले उम्मीदवारों की भीड़ लगती है जहाँ स्वार्थ सिद्धि के लिए कम उम्र की लड़कियों का विवाह बड़े-बूढ़े से जबर्दश्ती कर दिया जाता है और उसके बदले पुत्री के अभिभावक को अच्छी धन राशि प्राप्त होती है । 'नयी पौध' उपन्यास में 'घटकराज', 'पटुकधारी' यह काम करवाने में माहिर हैं । खोखा पण्डित इन्हीं बिचौलियों के माध्यम से अपनी चौदह पन्द्रह वर्ष की पितृहीन, सुन्दर एवं प्राथमिक शिक्षा प्राप्त नतिनी (बेटी की पुत्री) विसेसरी के लिए पाँच बेटों के बाप सम्पन्न ब्राह्मण कुलीन जमीनदार, जिसकी उम्र साठ वर्ष है,

उसका नाम है चतुरानन्द चौधरी, उससे 100 रुपये लेकर विसेसरी के लिए दूल्हा बनाकर ले आता है। इसके बाद शुरू होता है, इस अनमेल विवाह के प्रति 'नारी समाज' का वैरोधिक अन्तर्द्वन्द्व – "माँ बेटी को अर्थपूर्ण दृष्टि से देखने लगी । अनमेल ब्याह के भयंकर परिणामों की कल्पना से उसकी रग-रग दहक उठी, रोंगटे खड़े हो गए । बेटी को खींचकर माँ ने धड़कते सीने से सटा लिया, विसेसरी का किशोर कलेवर रामेश्वरी के अधेड़ बाँहों के घेरे में कस गया ।"[21]

माँ के अन्दर की नारी अपने अक्षम दिनों के चलते मायके वालों से डरी सहमी भले हैं । किन्तु उसके नारी मन में अपनी पुत्री के इस अनमेल विवाह के प्रति क्षोभ अवश्य हैं, किन्तु नई पीढ़ी की विसेसरी की आन्तरिक चेतना बोल उठती है। वह इन सारी घटनाओं से बेखबर नहीं है, उसकी अन्तः चेतना कह उठती है – "कि नाना आज एक कसाई को ला रहे हैं, धूम-धाम से अपनी नातिन का जिबह कराएंगे................। जबसे उसने दूल्हे की बात सुनी है तबसे उसकी कलेजी जल भून रही है।"[22]

अनमेल विवाह के प्रति विसेसरी की माँ की आन्तरिक चेतना चित्कार कर उठती है, वह सोचती है – "लड़की के जीवन को धूल में मिलाने का उसे क्या अधिकार है, बाबू (पिता) को यह हो क्या गया है ? दूल्हे को आने तो दो, उस बुड्ढा के माथे पर अंगारे न डाल दूँ, तो रामेसरी मेरा नाम नहीं । एक बुड्ढा मेरी लड़की का सींध भरेगा, मुँह झुलसा दूँगी भरदुए का ।"[23]

सामाजिक वैषम्यों के प्रति यह विद्रोह केवल रामेश्वरी और विसेसरी तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण गाँव में यह चर्चा व्याप्त है कि खोखा पण्डित अपनी नतिनी का विवाह एक बुड्ढे से रचा रहा है। नारी चेतना का यह स्वरूप अकेले नारी वर्ग का ही नहीं है, बल्कि पुरुष भी शसक्त रूप से सहयोगी हैं, तभी तो माहेश्वर यह सारी बात अपनी भाभी को

बताता है तो वह बोलती है – ''देखो बाबू मारपीट नहीं करना ।'' माहेश्वर ''खेत नहीं है भाभी, एक लड़की के जीवन का सवाल है, हम नाहक मारपीट नहीं करेंगे ।''[24]

वामपंथी पार्टी इस अनमेल विवाह से चैतन्य हो उठती है । इसका सशक्त उदाहरण नागार्जुन के इस उपन्यास में उपलब्ध है – ''पहला आदमी खंजन थी जिसके मुँह से बिसेसरी की यह मत मालूम हुई और तब बेचारी को जैसे साँप सूँघ गया । घायल हिरनी सी दौड़कर वह बूलों के घर गयी और भाभी की गोद में बेसुध गिर पड़ी अपनी नौकरानी भेजकर भामी ने फौरन दिगम्बर और माहे को बुलवाया, बुलों मोजूद था ही । विसेसरी उस गँवई 'बमपार्टी' की नियमित सदस्या थी, पिछले छः महीने से । .... आज दोपहर तक माहे और दिगम्बर भाभी के पास बैठे थे, यह तय करके ही उठेथे कि विससेरी का विवाह उस बूढ़े से कदापि न होने देंगे ।''[25]

नारी अधिकारों के प्रति यह चेतना, जिसमें पुरुष भी सम्मिलित है, तत्कालीन समाज की रूढ़ियों को ध्वस्त करने में लगा है ; निश्चित ही नागार्जुन के नारी चेतना के प्रति स्नेह का ही दर्शन है ।

विसेसरी जब बूढ़े से विवाह होने की बात से व्यथित है ; तो 'बमपार्टी' के तरफ से पत्र के द्वारा संदेश प्राप्त होता है ।

''प्रिय विसेसरी,

घबड़ाना नहीं । हमने तुमको जो वचन दिया है, उसे पूरी तरह हम निभाएंगे, तुम जरा भी मत घबड़ाओं । तुम्हारी मदद की अभी तो कोई जरूरत नहीं है, आगे भी जरूरत नहीं पड़ेगी, ऐसी आशा है। सबसे बड़ी सहायता तुम हम लोगों की यहीं कर सकती हो कि अपने दिल को कड़ा किए रहना ।[26]

नारी जागरूक है, उसके साथ-साथ पुरुष भी चैतन्य है । घर की बहुएँ भी इस विवाह के विरोध में हैं – ''मझली बहू भी दूल्हा देखकर झवाँ गयी थी ।'' रामेश्वरी भी आँगन

की हलचल से घबड़ा उठती हैं – "आ तो नहीं गया, वह कसाई हे भगवान ।" सभी तैयारी पूरी हो चुकी है रामेश्वरी अपने आप बुदबुदायी – "दूल्हे की सकल सुरत न याद आ जाए इसी से वह कुछ न कुछ बुदबुदाती रही ।"[27]

सजग नारी का आक्रोश चर्मोत्कर्ष पर है, इस अनमेल विवाह के प्रति सजग नारी चेतना यह दर्शाती है कि नारी में समाज के रूढ़ियों के प्रति लड़ने की क्षमता अभी भी विद्यमान है ।

'बमपार्टी' की सक्रियता से अनमेल विवाह रोकने का प्रक्रम चल पड़ता है। जिसमें विसेसरी के घरवाले भी आन्तरिक भावनात्मक रूप से समर्थन प्रदान करते हैं । इस समय भाईयों को चुप पाकर टुनाई भी समझ जाता है कि यह दुल्हा किसी को पसन्द नहीं है । वह क्रान्तिकारी नेता माहे के पास पहुँचकर विवाह रोकने के प्रक्रम में लग जाता है । माहे कहता है – "अभी विसेसरी गयी है, आम-महुआ के पेड़ पूजने, लौट आए तो कहना खूब पानी पीले और मूँह में उँगली डाल-डाल के कै करे ।"[28] इस प्रकार यह खबर मुखिया और खोखा पण्डित के पास पहुँचती है, तो वे घबरा उठते हैं । साठ वर्ष के बुड्ढे दुल्हे का भांजा भी सोचने लगता है – "मामा जी के माथे पर ब्याह का यह कौन सा भूत सवार है, यह इनको चौपट करेगा एक न एक दिन ।"[29] फिर उसे याद आई दिवंगत मामियाँ, एक-एक करके याद आई ।

इस प्रकार पूरा ग्रामीण परिवेश ही इस विवाह के विरोध में लगा हुआ था, और 'बमपाटी' के सदस्य बड़ी सक्रियता के साथ दूल्हे के समक्ष उपस्थित हो जाते हैं, घोड़े को दिखाते हुए कहते हैं – "लिजिए यह आपकी सवारी आयी, आप फौरन चल दीजिए .... पाँच लड़कों का बाप, साठ वर्ष की उमर और दूल्हे की यह साज सिंगार । छी: .... छी: .... !!! .... दिगम्बर ने कड़ाई से कहा बच्चन बाबू, यह बाबू साहब जितनी देर लगाएंगे, अशान्ति उतनी ही बढ़ेगी, आप यह गाठ बाँध लीजिए कि गाँव का एक-एक

नौजवान पिटते-पिटते बिछ जाएगा, ब्याह नहीं होने देगा .... विसेसरी जैसी तो इनकी नतिनी पोती होंगी ।''[30]

नारी के कल्याण के प्रति पुरुष वर्ग का आगे आना नागार्जुन के नारी विमर्शक प्रवृत्ति को पुष्टता प्रदान करता है और साथ ही साथ नारी सशक्तिकरण का जीता जागता उदाहरण है। विसेसरी जैसे ही समाज से प्रताड़ित और सामंती वर्चस्व की शिकार मल्लिका की बहन शकुन्तला सत्रह साल की थी, अनब्याही होने के चलते अधेड़ औरतें पूछ बैठती है कि दिगम्बर कब ब्याह करोगे बहन का तो दिगम्बर पलट कर जबाब देता – ''क्या जल्दी पड़ी है अभी चाची ? आदमी का बचपन तो बीस साल की उम्र तक चलता है। चार दिन और खा लेगी, खेल लेगी, तब तक अपना कुछ सीख साख लेगी ही ।''[31]

नारी के प्रति यह दृष्टि जिसमें शकुन्तला की पढ़ायी-लिखाई भी सम्पन्न होती है, जो प्रथमा कोर्स के साथ-साथ थोड़ी बहुत अंग्रेजी भी सीख रही है । तत्कालीन पुरुष वर्चस्ववादी समाज को ध्वस्त करता है। लेखक की नारी विषयक प्रखर चेतना कितनी ही विसेसरी को डूबने से बचाने का सन्देश प्रदान करता है । विसेसरी तो बूढ़े दूल्हे की पत्नी बनने से तो बच जाती है, लेकिन उसका विवाह न होना गाँव में समस्या की तरह माना जाता है। किन्तु 'बमपाटी' के विद्रोही युवक क्रान्तिकारी रूप से इस समस्या का समाधान बड़ी दृढ़ता के साथ ढूँढ़ लेते हैं । 'बमपाटी' के सक्रिय नेता दिगम्बर अपने नौजवान के साथ वाचस्पति से विसेसरी का विवाह करवा देता है।

नागार्जुन के इस उपन्यास में नारी चेतना का नवअंकुर जहाँ विसेसरी के रूप में प्रस्फुटित होताहै, तो वहीं अन्त में इस नवांकुर को आगे बढ़ाने वाले दिगम्बर और वाचस्पति रूपी फसल ''नयी पौध' के रूप में उभरकर सामने आते हैं।

1. ख. IV दुखमोचन

दुखमोचन का प्रकाशन 1957 ई. में हुआ । प्रकाशन से पहले इसका रेडियो

प्रसारण भी हो चुका है। नागार्जुन का उपन्यास दुखमोचन, ऐसे पिछड़े गाँव की कहानी है, जहाँ युगों से निश्चल और जड़ पड़ी हुई जिन्दगी नये युग की रौशनी पाकर धीरे-धीरे जाग रही है। यह उपन्यास नागार्जुन की सजग परिवर्तन कारी दृष्टि का परिचायक है । सम्भव है, गाँवों में स्थितियाँ तीव्र गति से न बदल पा रही हों, जिसका यहाँ संकेत किया गया है। पर नागार्जुन की अभिष्ट वही तीव्र और चतुर्दिक सम्भव होने वाला सामाजिक परिवर्तन है, जिसे वह इस उपन्यास में दिखा सके हैं । नागार्जुन की इस वास्तविकता का पता है कि ग्रामीण समाज अलग-अलग जातियों और वर्गों में विभाजित है, उन्हें इसका भी आभास है कि सम्पन्न वर्ग के अपने-अपने स्वार्थ हैं और यह वर्ग सामाजिक परिवर्तन की धारा को निरंतर रोकना चाहता है। किन्तु नागार्जुन की दृष्टि में परिवर्तन का प्रवाह रूकता नहीं है, इसलिए साहस और संकल्प से यदि परिवर्तन की दिशा निश्चित की जाय तो समाज में नयी स्थितियाँ सम्भव हो सकती है। इस परिवर्तन में स्त्री के अधिकार के प्रति पुरुष भी सचेत है, तभी तो राशन-गल्ला बाँटते हुए 'दुखमोचन' से 'बौधू' कहता है कि – "सरकार दू ठो नाम छूट गया है । दुखमोचन के इशारा करने पे 'बौधू' जो नाम लेता है उसमें 'बुधनी' नामक महिला का नाम भी है । 'बौधू' के नजर में 'बुधनी' को भी उतनी ही राशन सामग्री मिलनी चाहिए जितना सबको दिया जाना चाहिए । राम सागर पर और कुंचन पर चमारों की विरादरी में अकाल पीड़ितों का पता लगाने की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी । राम सागर 'बौधू' से दपटकर पूछता है – "कौन बुधनी ?" मोस्तम्मात है, बिमार रहती है बिचारी आगे-पीछे कोई नहीं है उसके, इसको पुष्टि करने के लिए बौधू पुनः बोलता है कि – "चिलबिल सा बेटा है हजूर भूख के मारे नहीं रहा जा सकता है तो हाट-बजार की तरफ निकल जाती है और चार-चार, छः-छः दिन बाद लौटती है ।"[32]

इस उपन्यास में 'दुखमोचन' ही नायक है । वही नयी युग चेतना का संवाहक हैं, वही रूढ़ियों ओर परम्परागत समाज के विरूद्ध संघर्ष करता है । 'दुखमोचन' अपना सब कुछ

दे कर भी गाँव में नया समाज बनाना चाहता है । वह पीड़ितों और दलितों का पक्षधर है और उन सबके साथ है, जो नयी स्वस्थ्य परम्परा बनाने के लिए रूढ़ियों से टकरा रहा है । इस उपन्यास की कंधा के लिए दर्पण पर जिस चेतना का बिम्ब उभरता है, वह एक व्यक्ति की चेतना न होकर व्यापक जन-चेतना है। इस जन जागृति में पुरुष वर्ग की संवेदना, स्त्री की सामाजिक वैषम्यता से उबारने का है, जिसमें विधवाओं के प्रति जो भावात्मक, विमर्श नारी के समझने की भावानुभूति का बीजारोपण करता है, वहीं उसके सुधार के प्रति चिंतन महा बट वृक्ष के समान खड़ा है । 'दुखमोचन' की भावात्मक पीड़ा यही सिद्ध करती है, तभी तो नागार्जुन कहते हैं – "विधवा जीवन की कठिन और लम्बी तपस्या उनकी आँखों के पानी में कड़वापन नहीं भर पायी थी । पिछले कई वर्षों से वह इस परिवार की सेवा कर रही थी । मायके में या ससुराल में अपना कोई था भी तो नहीं । ये तो बस बड़ी ननद के यही तीन लड़के । सुखदेव की स्त्री धनी बाप की इकलौती थी । यहाँ आकर हमेशा के लिए जम जाने में उसे घाटा था । 'दुखमोचन' की औरत पाँच साल पहले हैजा की शिकार हुई थी ।"[33]

इस तरह भाभी के प्रति यह सहानुभूति स्त्रियों के प्रति उनके उचित स्थान को दिला देने का संकेत करता है। 'दुखमोचन' उपन्यास का प्रतिपाद्य है कि 'टमला कोइली' इस गाँव का नाम है जिसके परिचय में कहा गया है – "टमला कोइली छोटा गाँव नहीं था, पाँच हजार से ऊपर की जनसंख्या वाली एक भारी बस्ती थी । दरसल यह छोटी-छोटी कई बस्तियों का एक समूह था । इस गाँव के साथ एक और विशेषता जुड़ी हुई थी कि एक और डिस्ट्रिक बार्ड की पक्की सड़क थी तो दूसरी ओर मीटर गेज की रेलवे लाइन ।"[34] तात्पर्य यह कि आने-जाने के साधनों से जुड़ा था यह गाँव और इस माध्यम से यहाँ नये विचारों का आना सम्भव था । दूर देश से आए संदेश यात्रियों इत्यादि के माध्यम से स्त्री समाज के सुधार के प्रति, नयी जागरूकता के प्रति चेतना उत्पन्न करने में सक्षम थे ।

'दुखमोचन' को पहले उसकी मानवीय करूणा में सजीव दिखाया गया है । राम

सागर की माँ के मरने पर जब सुखी लकड़ी नहीं मिलती तो उसे अपने काठ के तख्ते याद आते हैं जो तख्तपोशों की तैयारी के लिए चीरे गये थे । स्त्री के प्रति यह करूणा नागार्जुन के उपन्यास में एक विमर्श लेकर खड़ा है । राम सागर के माँ की लाश जलाने के लिए नये तख्त देने के साथ-साथ 'दुखमोचन' का अपनी विधवा भाभी के प्रति या मामी के प्रति जो सम्मान और सत्कार है, वह स्त्रियों को रूढ़ियों और बंधन से बाहर निकालने का सजग प्रयास है ।

नागार्जुन ने बीच-बीच में ग्रामीण समाज व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन की ओर संकेत भी किया है । जहाँ गाँव की बर्बाद फसलों का चित्र भी अंकित हैं –''मडुवा और मकई की आधी फसले बर्बाद हो गयी थी । भादो में होने वाले 'आउस' और 'गम्हड़ी' धानों को भी बाढ़ ने काफी नुकसान पहुँचाया था । अधिकतर खेत मजदूर रोजी की तलाश में अपना-अपना इलाका छोड़कर पूरब-पश्चिम जाने वाली गाड़ियों पर सवार हो चुके थे ।''[35]

ग्रामीण परिवेश में जाने वाली स्त्रियाँ भी अपने नेक नियति और सामाजिकता के लिए कितनी सचेत हैं, इसका उदाहरण हरखू की माँ है जो अकाल पिड़ित राहत कोश से लिए गए अन्न को इसलिए वापस कर देती है, क्योंकि उसके घर पच्चीस रुपए का मनिआर्डर आ जाता है –''बुढ़िया बोली सरकार पच्चीस रुपया मनिआर्डर आया है आज, अब मैं हाट-बाजार से अनाज खरीद लाऊँगी .... दुहाई मालिक की, दुहाई सरकारों की । यह गेहूँ किसी दुसरे को दे दीजिएगा मालिक । यह अनाज वापस रख लीजिए । अब इस वक्त में झूठ कैसे कहूँ की हमारे घर में कुछ नहीं है, पच्चीस रुपया है हाथ पर, दो पौने दो मन गेहूँ हुआ सरकार, तो झूठ-मूट कैसे कहूँ कि छटाक भर भी दाना नहीं है मेरे घर ।''[36]

स्त्री का इतना सजग होना और इतना ईमानदार होना यह दर्शाता है कि नागार्जुन निश्चित रूप से स्त्री जन-जागृति के प्रति आवाज बुलन्द कर समाज को यह बताना चाहते हैं कि स्त्रियाँ अपनी सजगता से समाज को बता दीं, कि समझ और ईमानदारी कि सूझ-बूझ

हममें भी वर्तमान है ।

इस उपन्यास में नागार्जुन ने स्त्री समाज के लिए रूढ़ियों से लड़ने का संदेश दिया है । उन विद्रूपताओं से जूझने का नया कौशल प्रदान किया है। तत्कालीन समाज में व्याप्त विधवा विवाह जैसी समस्या के लिए समाधान को ढूँढ़ निकाला है । 'दुखमोचन' उपन्यास की माया का विवाह कुलीन मगर दरिद्र परिवार में हुआ था। 'माया' का पति गाँव में आयी बाढ़ की विभिषिका का शिकार हो जाता है। बूढ़ी गंडक की उफान को पार करते हुए वह नाव पलटने के चलते मारा जाता है । माया ससुराल नहीं जाती है, वहाँ वृद्धा सास थी, एक देवर था, जो लम्पट और आवारा था, वहाँ निर्वाह करना बड़ा मुश्किल था, इन सबसे पूर्व परिचित -माया' की 'भाभी' आग्रह करके 'माया' को मायके में ही रोक लेती है, वह मायके में ही जम जाती है, किन्तु युवावस्था में ही विधवा होने के कारण ही 'माया' 'कपिल' नामक व्यक्ति के सम्पर्क में आती है । जिसके पत्नी की मृत्यु पहले ही हो चुकी होती है । माया और कपिल का प्रेम सम्बन्ध प्रगाढ़ होता है, वे अपनी जीवन नैया को पार लगाने के लिए विवाह बन्धन में बंधने के प्रयास करते हैं । माया और कपिल का यह प्रयास स्त्री चेतना के रूप में उभरकर सामने आया है, किन्तु इसके लिए विरोध भी कम नहीं झेलना पड़ता । तत्कालीन भारतीय समाज में विधवा का विवाह होना अत्यन्त ही बुरा माना जाता, और उसके विरोधी की सामने आ खड़े होते, वैसे ही 'नित्यानन्द बाबू' और 'टेकनाथ' 'माया' और कपिल के विवाह का विरोध करते हैं, वे कहते हैं कि माया और कपिल का विवाह गाँव की प्रतिष्ठा से खिलवाड़ करने जैसा है । 'नित्या बाबू' इसके विरूद्ध बोल उठते हैं –"अब यह गाँव भले आदमियों के रहने लायक कहाँ रह गया है, क्योंकि जाति-पाँति और धर्म-कर्म पर संकट ही लगता चला जा रहा है .... कल के छोकरे बूढ़ों की नाक में कीट बाँध रहे हैं, मुझे पहले पता होता कि आगे चलकर 'दुखमोचन' खुराफाती धूमकेतु निकलेगा, तो मैं इसे हमेशा के लिए सुला देता ।"[37]

स्त्रियों के जीवन के प्रति नागार्जुन के पात्रों में चेतना व्याप्त है, तभी तो सारे समाज का विरोध वर्दाश्त करते हुए भी लाख प्रताड़नाओं के बाद भी 'दुखमोचन' विधुर कपिल एवं विधवा माया दोनों का विवाह करवा देते हैं । स्त्री चेतना की जागरूकता में सहयोग प्रदान किया । वर्चस्ववादी एवं ढकियानुसी प्रवृत्ति के पुरुष कह उठते हैं रम ! राम । घोर कलियुग आ गया, जो कहीं नहीं हुआ है, वह हमका कोइली गाँव में हुआ है, किन्तु यह नारी जीवन के प्रति दूराग्रह था जो माया नामक विधवा नारी के विवाह के क्रान्तिकारी घटना से कलुसित मानसिक विचारधारा का प्रतीक है, किन्तु विद्रोही युवक वर्ग स्त्री चेतना के प्रति जागरूक है, तभी तो वे कहते हैं – "यह ठीक ही हुआ था, विधवा लड़की ने रड़ुआ लड़के से सम्बन्ध कर लिया तो क्या बुरा किया ? इधर-उधर भटकती और भ्रष्ट होती तो गाँव कुल का नाम डुबाती। वह अच्छा होता कि यह अच्छा हुआ ।"[38]

स्त्रियों के जीवन के संदर्भ में नयी चेतना जागृत करना और क्रान्तिकारी घटना का समावेश यह दर्शाता है कि स्त्रियों को जागरूक करने में पुरुष वर्ग भी पीछे नहीं हैं । स्त्री चेतना का सशक्त उदाहरण 'दुखमोचन' के उस अंश में प्राप्त होता है जब गाँव में रास्ते बनाने के समय स्त्रियाँ मिलकर सामाजिक सरोकार में सहयोग प्रदान करती हैं जिसका विमर्श दृश्य इस प्रकार है – "राम सागर की स्त्री और माया ने भारी जीवट का परिचय दिया, पड़ोस के गाँव से जितने भी जवान आए, उनके लिए एक बार नास्ता ओर दोनों जून खाना बनाने का भार उन्हीं दोनों ने उठाया । 'चमकी' अपर्णा और पद्‌मा आदि भी हाथ बटाती थी, लेकिन खास जबावदेही उन्हीं दोनों की थी । सुग्गी बुआ होती तो काफी मदद पहुँचाती, इन कार्यों में मगर नतिनी के लड़के का कनछेदन था वह मेहमानी में गयी हुई थीं ।"[39]

इस प्रकार सामाजिक सरोकार में स्त्रियों का लगना 'दुखमोचन' उपन्यास के नारी विषयक चेतना सफलतम बिन्दु के तरफ प्रकाश डालता है जो स्त्रियों में भी जागरूकता उत्पन्न कर क्रान्तिकारी विचारधाराओं के सम्पर्क में आने का संकेत हैं । अपने अधिकारों के प्रति ही

सचेत नहीं है, बल्कि नारी अपने कर्तव्य के प्रति भी जागरूक है। इस क्रान्तिकारी अवधारणा के साथ नारी समाज के लिए एक बहुत बड़ा विमर्श लेकर खड़ा होते हैं जो वास्तव में नारियों के प्रति उच्चादर्श की स्थापना करता है ।

1. ख. V बाबा बटेसरनाथ

दिल्ली से 1954 में प्रकाशित 'बाबा बटेसरनाथ' में 'रूपावली' नामक गाँव के ग्रामीण परिदृश्य का वर्णन है। यह उपन्यास नये मूल्यों की प्रतिष्ठा के संकल्प पर आधारित है। ये नये मूल्य समाजवादी जीवन व्यवस्था के सूचक हैं । अकारण नहीं है कि उपन्यास का अन्त अक्षरों में अंकित तीन शब्दों से होता है । स्वाधीनता, शान्ति और प्रगति । सिन्दूरी रंग का होने वाला सिन्दूर निश्चित तौर पर हमारी भारतीय परम्परा में स्त्रियों के सुहाग का प्रतीक है और समाज में बिना स्त्रियों के न तो कभी राजनैतिक संघर्ष सफल हुआ है और ना ही सामाजिक संघर्ष । आजकल तो आर्थिक उपार्जन में भी स्त्री की अहम भूमिका है।

इस उपन्यास के केन्द्र में कोई मानव चरित्र नहीं, बल्कि वृक्ष विशेष है । आरम्भिक वाक्य के द्वारा नागार्जुन ने इस उपन्यास में एक वृक्ष का परिचय इस प्रकार दिया है – "घने पत्तों गूथी टहनियों और आड़ी-तिरछी डालों वाला वह शान्तिनिकेतन था ही ऐसा, कि हर तरह के लोग आ-आकर उसका आश्रय लेते ।"[40] उपन्यासकार के अनुसार विभिन्न वर्गों और मनोदशाओं के लोग इस बट वृक्ष की छाया में आते, "खुशी में पागल आदमी भी यहाँ आता तथा विपत्ति ग्रस्त लोग भी, चोर भी यहाँ पहुँचते और कंजूस भी, लड़के-लड़कियाँ भी पहुँचते तो, बहुएँ भी, प्रेमी-प्रेमिका पहुंचते तो गरीब-किसान भी । जहाँ धर्म शास्त्री उपस्थित होते, वहाँ अछूत वर्ग के लोग भी, वहाँ सुहागिन औरतें भी पहुँचती, वहीं विधवाएँ भी, सभी वटेसर बाबा के पास पहुँचते ।"

तत्कालीन परिवेश में पुरुषों के साथ स्त्रियों का आना दिखाकर नागार्जुन जी ने समाज में स्त्री सहभागिता का नारा बुलन्द किया है, क्योंकि यहाँ पे लड़कों के साथ लड़कियाँ

भी हैं, बहुएँ भी हैं और साथ-साथ प्रेमी युगल को निसन्देह ही नागार्जुन की यह व्यक्ति एकत्रिकरण की अवधारणा जिसमें महिलाएँ भी शामिल हैं, नारियों के प्रति एक सहज सोच का परिणाम है। रूढ़िवादी सोच में चलने वाली मनुष्य के बीच यहाँ स्त्रियों का घोर विरोध समाज के सामने उपस्थित हैं, वहीं नागार्जुन जी अपने इस उपन्यास में बहू-बेटियों और विधवाओं इत्यादि को एकत्रित कर सारी रूढ़ियों को ध्वस्त कर नारी चेतना के संदर्भ में नया विमर्श उत्पन्न किया है ।

एक दिन जय किसन यादव इस बरगद के पेड़ तले आ बैठता है और उसके समक्ष एक लम्बा अतीत उपस्थित हो जाता है – "इस बरगद को उसके परदादा ने सौपा था। सौ वर्ष से ऊपर की बात है, 34 के भूकम्प में इस पेड़ को टेढ़ा कर दिया । आधी जड़ धरती से बाहर हो गयी, इस स्थिति में भी पिछले 18 वर्षों से यह बंकिम वृक्षराज सकुशल विद्यमान है । जीवन शक्ति तनिक भी क्षिण नहीं हुई है।"[41]

इस उपन्यास में नागार्जुन जी ने किसानों पे किए गए जमीनदारों के अत्याचारों के समाप्ति की घोषणा की है। किन्तु जाते-जाते वे अपना प्रभाव छोड़ने से नहीं चूकते । विविध काल्पनिक शक्तियों के माध्यम से नागार्जुन जी ने बाबा के परिचय का प्रारम्भ किया है – "बेटा मैं न तो भूत हूँ न प्रेत। मैं इस बरगद का मानव रूप हूँ । जिस वनस्पतिराज की फलियों के बीज से मेरी उत्पत्ति हुई, उन्हें वनदेवी ने प्रसन्न होकर यह बरदान दिया था कि तुम्हारी सन्ततियाँ मनुष्य ह्रदय की बाते अनायास समझ लेगी और अपनी इच्छा के मुताविक जब चाहे तब मनुष्य के रूप धारण कर सकेंगी, तो मैं ठहरा इच्छा रूपधारी ।"[42]

वनदेवी की कल्पना और उनके द्वारा दिया गया बरदान उपन्यासकार का शक्ति के प्रति आस्था ही है। स्त्री स्वरूप वनदेवी की यह परिकल्पना चाहे हम इसको अंधविश्वास ही क्यों न मान लें, किन्तु यह हमारी लोक संस्कृति से जुड़ा हुआ है। स्त्रीवादी चेतना का गहरा प्रतिबिम्ब है।

प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करते हुए हर जगह प्रकृति सुन्दरी का मनमोहक रूप उपस्थित करने वाले उपन्यासकार सामाजिक और सार्वजनिक सरोकारों में स्त्रियों के योगदान की भी चर्चा करते हैं – "यहाँ से दो कोस पर दक्षिण की ओर शिव जी का एक पुराना मन्दिर था । सुना है कि उसी मन्दिर के पास पीछे नया मन्दिर किसी श्रद्धालु विधवा ने बनबा दिया है ।"[43] श्रद्धालु विधवा द्वारा निर्मित इस मन्दिर के माध्यम से धार्मिक आस्था के साथ-साथ सामाजिक सरोकार में स्त्रियों के योगदान का महत्व छिपा हुआ है।

इस उपन्यास में बटवृक्ष के खरीद फरोख्त की बातें चलती है, जिसे सुनकर मानवरूपधारी बटवृक्ष को काफी ग्लानि महसूस होती है। इस पर उसे अपने पुराने दिनों की याद आती है, जब जयकिसुन के परदादा ने जब थाले से दलान की ओरियानी में रखा था तो मैं भादों की धूप से स्वयं को सुरक्षित महसूस कर रहा था । उन दिनों को याद कर वह कहता है – "तेरी परदादी ने दौड़कर दूध से मुझे वहीं नहलाया अपने हाथों से । पीछे मेरे तने पर भिगोए चावलों की, पीसी हुई पीठी की थापें पड़ी । अधेड़ महिला की हुलास भरी हथेली का वह प्रथम स्पर्श मैं अब तक नहीं भूल सका हूँ । उस परस में माँ का नेह छोर या बड़ी बहन की ममता थी, दादी और नानी के आशीर्वाद थे और क्या नहीं था उसमें, सब कुछ था बेटा, और पीठी की घावों पर तेरी परदादी ने थोड़ा-थोड़ा सिन्दूर भी लगा दिया ।"[44]

वृक्ष की संवेदना के माध्यम से उपन्यासकार का स्त्री वर्ग के प्रति भाव संवेदना यह दर्शाती है कि क्रूर काल के रूप में व्याप्त रूढिगत विचारधाराओं में भी नारी कहीं हो वह हमेशा मातृत्व ममता, बहन का स्नेह और दादी-नानी के आशीष के रूप में उपस्थित रहती है। सम्बन्धों के प्रति भावनात्मक निर्वाह में जो प्रगाढ़ता दिखाई देती है वह उपन्यासकार का स्त्री स्वरूप के गरिमा के प्रति द्योतन है ।

नारी जाति के त्याग और तपस्या, स्नेह, ममता इत्यादि का समावेश कर नागार्जुन जी ने दर्शाया है कि इसी स्नेह सिक्तता में सृजन की पराकाष्ठा निहित है तभी तो बटवृक्ष

कहता है – "चौदह-चौदह, सोलह-सोलह साल की लड़कियाँ उचक-उचक कर बाड़ के अन्दर हाथ डालती । अपनी खुरदरी हथेलियाँ वह मेरे तन पर फेरा करती, कड़ी उँगलियों से पत्ते लहराती और छूती, प्रेम और स्नेह भरी उनकी वह कड़ी परस मेरे लिए संजीवनी सुधा थी । नया दूसा फूट निकलता तो मुझे खुद उतनी खुशी नहीं होती, जितनी की बस्ती रूपौली, की उन अल्हण चरवहिनियों को ....।"[45]

सृजन में स्त्री वर्ग का सहयोग त्याग तपस्या और उनके मधुर स्पर्श का कितना योगदान होता है यह एक वृक्ष के माध्यम से उपन्यासकार ने समाज के सामने परोसा है। सोलह वर्ष की किशोरियों के स्पर्श से बट वृक्ष की भाव विह्वलता का वर्णन नारी महत्ता के प्रति बरबस आकृष्ट करता है। नयी फुनगियाँ नये विचार धाराओं के प्रकाश की तरफ संकेत करती हैं और उन नयी फुनगियों को देखकर उन चरवाहिनों का प्रसन्न होना नारी विषयक नयी विचारधाराओं के आगमन के प्रति प्रसन्नता है । किन्तु कष्ट की बात है कि अभावग्रस्त जीवन जीने वाली इन छोकड़ियों का वर्णन – "मैला चिकट, दसियों पैबन्द लगा, घुटनों तक का कपड़ा, इन छोकरियों का पहनावा हुआ करता था । सिर पर बालों के सूखे गुच्छे, धेवलों जैसे लगता, गले में नीले काँच के बारीक दानों की एकाध लरी । बाहों में, घुटनों पर, हाथों पर और पेट पर गुदना – "किसी के न भी होता .... अब तो खैर गुदना की रिवाज नाम भर की रह गयी है, लेकिन उन दिनों यह आम रिवाज थी । तेरी परदादी का तो समूचा बदन गुदनों से भरा था ।"[46]

तत्कालीन समाज में स्त्री विषयक यह दृष्टि दर्शाती है कि नारी का लोक बहुत विस्तृत है, उसके स्नेहिल स्पर्श से जहाँ बटवृक्ष में नवस्फूर्ति की चेतना जागृत होती है तो वहीं मैले कुचैले कपड़ों में किशोरियों के अभावग्रस्त जीवन का संकेत भी प्राप्त होता है। लोक रिवाज में पलती आयी पुरानी पीढ़ी की स्त्रियाँ किस प्रकार उससे दूर खड़ी नजर आती है यह हर उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है – "आश्चर्य से जैकिसुन की आँखें बड़ी-बड़ी हो गई ।

उसकी माँ के बदन में गुदना के तो ही निशान थे । लेकिन बाबा तो यह सौ साल पुरानी बात बता रहा था न ? जैकिसुन की अपनी औरत का गेहुँआ शरीर याद आया जिसमें गुदना का एक भी निशान नहीं था । ''[47]

इस उपन्यास के बरगद बाबा ने महाजनी शोषण का अत्यन्त दर्दनाक किस्सा भी सुनाया है तो वहीं भारतीय शासन व्यवस्था और प्रशासन पर ब्रिटीश साम्राज्यवादियों और गोरों के बर्बरता पूर्वक अधिकार का वर्णन भी । इसीलिए लेखक कहते हैं – ''कि वह महारानी विक्टोरिया का जमाना था ।''[48] इस तरह स्त्री शासिका के द्वारा गुलाम भारत में उसके मातहतों द्वारा विभिन्न प्रकार के अत्याचार किए जाते थे । जिसकी शिकार स्त्रियाँ भी हुआ करती थी ।

कर्तव्यनिष्ठ और युग के प्रति सचेत अग्रसोची महिला के रूप में जैकिसुन की दादी का वर्णन करते हुए बरगद बाबा कहता है –''तेरी दादी चतुर खेतिहर की बेटी थीं । उपज का हाल खस्ता देखकर पूस में ही उसने अपनी दो भैसें बेच डाली थीं, अब एक थी जौ मटर, मसूर, चने जैसे अनाज काफी भर रखे थे पाँच कट्ठा खेत में पन्द्रह मन अल्हुआ उपजा था और यह सब तेरी दादी ने कार्तिक और फागुन के दर्मियान ही कर लिया था, माघ का महीना आया तो तीन कट्ठा वाली दूसरी जमीन में वह अल्हुआ रोपवा चुकी थी । तेरा दादा सुधंग आदमी था, वह हँसता रहा अपनी घरवाली पर – ''जैसी जिसकी खानदान वैसे उसके लक्षण, मेरे बाप दादा भोगिन्दर थे और तेरे पुरिखा दलिद्दर, सो बिना अल्हुआ के रूपौली में जी लगेगा तेरा ?''

इस पर तेरी दादी निसांस छोड़कर बोली थी –''देखते हो ना ? इस बाद फागुन में ही कैसी मनहुसी छा गयी है । रात को काला कौआ चीखता रहता है कर्र-कर्र, दिन के समय गीदड़ हुआँ-हुआँ करता है .... अबकी कारी अकाल पड़ेगा देख लेगा, घर में सकरकन्द पड़ा रहेगा तो अकाल खेप ले जाएगें किसी तरह .... ।''[49] और सचमुच

सकरकन्द में तेरे दादा और दादी की बड़ी मदद की थी, लेकिन अकाल की उन दिनों में ।

इस लम्बे कथन में बट्टवृक्ष के माध्यम से उपन्यासकार ने समाज में नारी के जागृत स्वरूप का वर्णन किया हैं जो अपनी बुद्धिमत्ता से अकाल के उनदिनों में अग्रसोची बुद्धि प्रज्ञा से अर्जित एवं उपार्जित सम्पत्ति से अकाल के दिनों में जीविका का पूर्ति करती है।

'बाबा बटेसर नाथ' में नागार्जुन जी ने ब्रिटीश साम्राज्यवादियों के अमानुसिक अत्याचार एवं व्यवहार का वर्णन किया है तथा उनकी सामन्तशाही विचारों के उल्लेख में आम जनता की त्रासदी भी वर्णित है ।

इन्हीं त्रासद क्षणों के बीच स्त्रियों का अपने सगे सम्बन्धियों से हास्य व्यंग्य के लहजे में बाते करना स्त्री विनोदी प्रवृत्तियों के प्रति सामाजिक संदेश व्यक्त करना जैसे है, क्योंकि तनाव को कम करने के लिए स्त्रियों के हँसी ठट्ठे पुरुष के मन में नयी स्फूर्ति का संचार करता है इस तरह यहाँ भी मनोवैज्ञानिक रूप से स्त्री सम्पूर्ण समाज को सहानुभूति प्रदान कर स्वयं उसमें सम्मिलित होती है। तभी तो जैकिसुन की माँ कहती है – "मैं कहाँ मानूँगी की जेल के अन्दर तुम लोगों का ओजन बढ़ गया है, ऐसा कहीं हुआ है ?"

"चलो इस बार हम दोनों जेल चले जाएँ, जैकिसुन की माँ" दया ने मुस्कुराकर कहा –"न बढ़ जाय ओजन तो तुम फिर मुझसे बताना ।"

"चुप रहो बाबू, मैं तुमसे नहीं पूछ रही हूँ।" "तो, अब और किससे पूछोगी ?"

जैकिसुन की माँ दयानाथ के प्रति तुनककर बोली – "मेरा बस चले तो इसी बखत बुड्ढे को गिलफदार कराके जहल भेज दूँ .... "देवर-भाभी की इस नोक-झोंक में अपने को विजयी समझकर बाबू दयानाथ राम ने छँटी खिचड़ी मूँछों पर बार-बार हाथ फेरा ।"[50]

इस संवाद के माध्यम से विनोदी स्वभाव के दयानाथ अपने भाभी से हास-विनोद करके जेल की यात्राओं का सारा दुःख भूल जाता है किन्तु इनमें समाज में नारी के अस्तित्व की महानता के प्रति संकेत है, जो स्वयं हास-परिहास का बिन्दु बनकर भी लोगों में प्रसन्नता

का मन्त्र फूँकती हैं । स्त्री का यह अनुपम त्याग समाज को उन बिन्दुओं पे दृष्टि डालने के लिए प्रेरित करता है, जहाँ सिर्फ दूसरों के इच्छा प्रसन्नता में स्वयं को सम्मिलित करने के लिए नारी हर क्षण खड़ी रहती है। इस प्रकार यह अनुभूति समाज के सामने एक बहुत बड़ा विमर्श लेकर खड़ा है।

1. ख. VI उग्रतारा

नागार्जुन का उपन्यास 'उग्रतारा' जिसमें नारी संघर्ष की विविध दृश्यावलियाँ अपनी विशिष्टता के साथ उभरकर सामने आयी है । वस्तुतः यह एक प्रेम कथा है जिसे स्त्री समाज के मूल्य के बोध के साथ ग्रहण किया गया है। 'उग्रतारा' इस उपन्यास की नायिका है। जिसे एक छोटा सा नाम उगनी दिया गया है । कामेश्वर इस उपन्यास का नायक है। वह अनेक रूढ़ियों के विरूद्ध उगनी को जिस स्थिति में स्वीकारता है, उसका बहुत रोमांचक वर्णन नागार्जुन ने प्रस्तुत किया है । उगनी का अतीत यह है कि वह युवावस्था में ही विधवा हुई और अनेक यातनामयी परिस्थितियों से गुजर कर अधेड़ सिपाही भभिखन सिंह तक पहुँची । बीच की कथा यह है कि वह और कामेश्वर परस्पर आकृष्ट हुए थे और कामेश्वर जब उसे नये जीवन के आरम्भ के लिए ले जाना चाहता था, तो दोनों अभियोग के शिकार हुए । दोनों को अलग-अलग सजा मिली, उगनी को कम समय के लिए और कामेश्वर को अधिक समय के लिए । जेल की सीकचों के भीतर रहते हुए उगनी पर भभीखन सिंह ने अधिकार जमाया, फिर एक ऐसा दिन आया जब कामेश्वर जेल से छूट गया था और अब भी उगनी के खोज में था । उगनी के लिए वह प्रकट हुआ एक फेरी वाले की शक्ल में । उगनी यह सोच कर डर रही थी कि अब जब वह भभीखन सिंह का पाप ढो रही है और उसके अन्दर चार महीने का शिशु पल रहा है, कामेश्वर उसे किस प्रकार ग्रहण करेगा, पर वास्तविकता यही है कि कामेश्वर आया है उसका उद्धार ही करने । नागार्जुन ने कामेश्वर के मन में उत्पन्न संकल्प को इस प्रकार व्यक्त किया है – ''कामेश्वर ने सोचा, कितनी मुसीबत झेलनी पड़ी है इसे क्या बुरा किया ? उस मुछन्दर अधेड़ से शादी करके यहाँ बैठ गयी, ठीक ही तो किया ओर मैं जो कुछ

करने वाला हूँ, तो वह ठीक नहीं होगा क्या ? मैं उगनी को उस नरक से बाहर निकाल ले जाऊँगा। यह चेहरा फिर उसी तरह खिलखिलाता रहेगा ।''[51]

नारी के जीवन संघर्ष में कैसे-कैसे क्षण आते हैं जिनका सामना करना सामान्य व्यक्तित्व के बस के बाहर की चीज होती है। अपार स्नेह और स्निग्धता से जूड़े सम्बन्ध ; परिस्थितियों के अनुसार किस प्रकार टूट जाते हैं ? और नारी सब कुछ बर्दाश्त कर लेती है। पुनः वह उसी मोड़ पर आ खड़ी होती है जहाँ उसका अतीत सामने दिखाई देता है । किन्तु इस विभिषिका की शिकार नारी किस प्रकार होती है, कि वह कामेश्वर से बिछुड़कर पुनः कामेश्वर को ही सामने पाती है । तो उसे अपना अतीत आँखों के सामने घूमता नजर आता है। तीन महीने के बाद जब लड़की निकलती है तो एक पुलिस वाला जिसकी पचास-पचपन साल तक शादी नहीं हुई है - दातुन करते हुए पूछता है – कि वह क्या करेगी अब वह कहाँ जाएगी, तो वह माथा - ठोकता हुआ कहता है - ''हाय, हाय ! इतनी अच्छी लक्ष्मी के मुँह से यह बात निकल रही है, तू शादी करेगी ।''[52]

परिस्थितियों की मारी नारी की त्रासदी की शुरूआत यहीं से होती है । समाज के प्रति सारी संवेदना लेकर बैठा - उपन्यासकार कथा में नारी के भावनात्मक तह तक पहुँचने का प्रयास करता है, जिससे नारी की असहाय स्थिति और मजबूरी में किया गया समझौता सिर्फ एक समय की मार है । भभीखन सिंह के साथ शादी करने के बावजूद भी 'उगनी' का मन कामेश्वर सिंह के प्रति ही लगा रहता है । कामेश्वर सिंह एक दिन फेरी वाले के रूप में रतनपुर के ड्रिस्ट्रिक्ट जेल के सिपाहियों के निवास स्थान पर पहुँचता है उगनी उसे देखकर आश्चर्य चकित हो जाती है और कामेश्वर सिंह उगनी को छुड़ाने में सफल होता है। कामेश्वर उगनी से नयी विधि के द्वारा विवाह सम्पन्न करता है, क्योंकि कामेश्वर नारी को मुक्ति दिलाने वाला इंसान है, ना कि उसकी बुरी परिस्थितियों से लाभ उठाने वाला । नये युग की नयी सोच में उपन्यासकार ने जो नयापन भरा है, वह समाज की स्त्री चेतना के प्रति नया अध्याय

सा है। पुरुष के द्वारा शोषित नारी उहापोह की जिन्दगी से बाहर निकलती है।

कामेश्वर की भाभी नये युग की शिक्षित नारी है । वह कामेश्वर और उगनी का विवाह कराकर नारी के हक में, नारी के द्वारा किये गये सहयोग के साथ, नारी समाज को एक बहुत बड़ा विमर्श प्रदान करती है। नर्मदेश्वर के पिस्तौल निकालने पर मारे जाने वाले व्यक्तियों की तरफ उँगली उठाकर उसकी भाभी बोलती है – "पिस्तौल का क्या करोगे, छिछोरे मन का इलाज कारतूस की पेटियों से नहीं होगा । स्त्री-पुरुषों में समान रूप से समझदारी पैदा होगी और मनोरंजन के कई और साधन निकल आएंगे तभी व्यभिचार घटेगा । देहात में खाते-पीते परिवारों में अधेड़ भारी मुसीबत पैदा करते हैं । उगनी जैसी लड़कियों के लिए ज्यादा संकट है डरपोक नौजवानों की छिछली सहानुभूति, इन संकटों का मुकाबला हम पिस्तौल से नहीं कर सकते ।"[53]

जागृत नारी का यह स्वर समाज को ललकारकर कहता है । अपनी अस्मिता की रक्षा करना तो वह जानती ही है उन्हें यह ज्ञात भी है कि उनकी अस्मिता से खेलने वाले वर्ग विशेष की पहचान उन्हें हैं । किन्तु ये पूर्णरूप से सजग है, नारी चैतन्य है और सहज भाव से मुकाबला करने के लिए तैनात भी । कामेश्वर के साथ विवाह के उपरान्त उगनी को बार-बार सिपाही की याद आती है। उगनी भभीखन सिंह के पास एक पत्र लिखती है । पत्र में भभीखन सिंह के लिए कोई अनादर व्यक्त नहीं हुआ है । बस अपने निर्णय और अपने अस्मिता की सूचना दे दी गयी है, जो कुछ इस प्रकार है ।

"आदरणीय सिपाही जी,

मेरे अपराधों को आप कभी माफ नहीं करेंगे यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। x x x x x आपकी संतान समय पर बाहर आएगी । असाढ़ में उसका जन्म जरूर होगा, आप रत्ती भर भी चिन्ता न करें । मैं उसको कहीं फेंक नहीं आऊँगी । पाल-पोस कर सयाना बनाऊँगी ।

मैंने अपना सबकुछ जिसे सौंप दिया था, उसी के साथ गाँव से निकली थी । जिसके साथ गाँव से निकली थी, मुझे आपके क्वार्टर से निकाल लाया है। उस आदमी का दिल बहुत बड़ा है । पराए गर्भ को ढोने वाली अपनी प्रेमिका को फिर से बिना किसी हिचक के उसने स्वीकार कर लिया है। उसने मुझसे शादी कर ली है ।

वह इतना उदार है कि आपका बच्चा आसानी से आप तक पहुँचा देगा मगर मैं वैसा नहीं होने दूँगी । सिपाही जी बच्चे पर आपका हक बहुत थोड़ा रहेगा, मेरा हक तीन-चौथाई से भी अधिक ।

बड़ा होगा तो मैं खुद ही उसे आपके पास भेजूँगी, अपने पिता से मिल आएगा । स्कूल कॉलेज में पढ़ेगा, पिता की जगह आपका ही नाम दर्ज करवाया जाएगा । आप विश्वास रखे, सिपाही जी मैं जिन लोगों के बीच रहने आई हूँ, वे बिल्कुल ही नये ढंग के लोग हैं । उनमें से कोई भी मेरे इन विचारों का बुरा नहीं मानेगा ।

असाढ़ के बाद अगर आपका जी करे तो अपने बच्चे को देख जाइएगा । दूसरी बार पत्र लिखूँगी, उसमें यहाँ का पता रहेगा ।

आपकी छाया में आठ महीने रही हूँ मन ही मन आपको पिता और चाचा मानती रही हूँ और आगे भी वैसा ही मानती रहूँगी । मैं मजबूर थी इसीलिए आपको धोखा दिया । सिपाही जी आप मुझे सारा जीवन याद रहेंगे ।[54]

नारी की यह मूल्यात्मक चेतना मात्र उसकी बौद्धिक चेतना को ही नहीं दर्शाती बल्कि असीम त्याग और स्निग्ध प्रेम के प्रति समर्पण का द्योतन करता है।

एक ओर जहाँ सहज स्वभाव वाली उगनी में नारी का विमर्शात्मक स्वरूप शान्त रूप में सामने आता है तो वहीं कामेश्वर की भाभी का उग्र रूप द्रष्टव्य है – "भाभी ने दोनों को आमने-सामने बैठा दिया, दोनों एक दूसरे की ओर रूख किए बैठे थे लेकिन समझ में नहीं

आ रहा था कि भाभी यह क्या कर रही है । कामेश्वर ने हँसकर पूछा –"कौन सी कसरत करवा रही हो भाभी ? बता भी तो दो, उगनी गम्भीर हो रही थी, उसने भाभी की ओर देखा । सिन्दूर भरी कटोरी सामने रखकर भाभी बोली, आज यह विधिपूरी होगी, मैं पुरोहित हूँ लो चुटकी में सिन्दूर लो और उग्रतारा की सींध भर दो बाबू ! उठो ।"

उगनी के जीवन में "आज ऐसी घटना घटी थी जिसकी कल्पना का आभास भी उगनी को नहीं था। आज एक पुरुष ने गर्भिणी नारी के सीमांत में सिन्दूर भरा था, धोखे में ? नहीं जान बूझकर ! उसके होशों-हवास दुरूस्त थे, विवेक सजग था, आवेग या आवेश चेतना हावी नहीं था सभी बातें उसे मालूम थीं ।"[55]

कामेश्वर की भाभी का यह रूप वर्चस्ववादियों के लिए अत्यन्त ही चुनौतीपूर्ण है। इसमें अत्यन्त जागृत नारी का व्यक्तित्व झलकता है, जिसमें मात्र व्यक्ति विशेष से ही लड़ने की क्षमता नहीं है बल्कि सम्पूर्ण परिवेश और समाज से जूझने के साथ-साथ उन्हें चैलेन्ज करने की भी क्षमता है । स्वयं उगनी का चरित्र भी स्त्री के मानक भाव परिवेश से संकुलित है । उसके साथ मजबूरी भले हो, किन्तु वह किसी भी परिस्थिति से समझौता करने के लिए तैयार नहीं, चाहे उसे आश्रय के रूप में भभीखन सिंह को अपने सम्बल के लिए अपनाना ही क्यों न पड़ा हो । उगनी के मन में एक मानसिक अन्तर्द्वन्द्व हमेशा चलता रहता है, जो स्त्रित्व बोध को झकझोंर कर रख देता है, जो भभीखन सिंह के द्वारा किए गए छल और स्त्री के मजबूरी का नाजायज फायदा उठाने के रूप में दृष्टव्य है । आगे – "यह भी बलात्कार ही था । ठीक है – भभीखन सिंह ने वैदिक विधियों से शादी की थी । ठीक है, आधे घंटे तक अग्नि में आहुतियाँ डाली गई थीं, ठीक है, हवन के धुएँ ने बहुतों की आँखे आनन्द के आँसूओं से गीली कर दी थी । ठीक है, तोला भर सिन्दूर माँग के बीचो-बीच कई दिनों तक जमा रहा । सब कुछ ठीक है, लेकिन स्त्री-पुरुष के बीच उम्र का इतना बड़ा फासला किस तरह मखौल उड़ा रहा था विवाह के संस्कारों का । बाबू भभीखन सिंह को कानूनी तौर पर इस बलात्कार का

हक हासिल हुआ । अब उगनी उनकी संतान को अपने लहू से पुष्ट बनाएगी ।"[56]

इस प्रकार हम देखते हैं नागार्जुन के उपन्यास 'उग्रतारा' में मुसीवत झेलती नारी का जो विशेष रूप सामने उपस्थित होता है सारे रूढ़ियों से परे नयी स्त्री विमर्श के रूप में उपस्थित हैं, जहाँ नारी का सामाजिक विद्रूपताओं के विरूद्ध लड़ने की क्षमताओं का समावेश है, वहीं नारी दृष्टि की चेतनात्मक बुद्धि कौशल का प्रज्ञात्मक स्वरूप विवेचन है, चाहे आधार कुछ हो संघर्ष का क्षेत्र जो भी हो किन्तु अपने लक्ष्य के प्रति नारी हमेशा सजग है।

1. ख. VII वरुण के बेटे

'वरुण के बेटे' का प्रकाशन इलाहाबाद से हुआ था । यह मल्लाहों के जीवन परिवेश पर केन्द्रित है । इनके सामाजिक जीवन में जो परिवर्तन हो रहे हैं उन पर नागार्जुन की सजग दृष्टि है । मछलियाँ उनके लिए आहार भी है और पूरे जीवन को चलाने वाली आय का प्रमुख स्रोत भी । इस इलाके का प्रख्यात जलाशय 'गढ़-पोखर' है, जो उनके लिए मुख्य जीवनधारा बना हुआ है। भोला और खुरखुन अपनी शक्ति पहचनाते हैं साथ ही वे आने वाले समय के संकट से भी अपरिचित नहीं है । उनकी छोटी सीमित जिन्दगी में जीने के जो साधन दिखाई देते हैं, वही उनका कुल यर्थाथ है। नागार्जुन लिखते हैं – "खुरखुन का समूचा संसार ही मानों तेरह फुट लम्बे और नौ फुट चौड़े घर में अटा पड़ा था । भीतें बीस साल पुरानी, फिर भी मजबूत थी ।"[57] नागार्जुन ने इस ग्रामीण अंचल का एक विशेष सन्दर्भ चुना है। मलाही - गोढियारी से मील भर पूरब के धनहा चौर का उल्लेख करते हुए वे संकेत करते हैं– "कोसी का जहरीला असर इन देहातों को वीरान बना चुका था । बाढ़, अकाल, मलेरिया के मारे लोग तबाह थे । कोसी जब पूरब की तरफ बीस-तीस कोस परे थी, उन दिनों धनहा चौर की चंदन-चिकनी-माटी सोना उगलती थी । अब तो गाँव उजाड़ पड़े थे ।" यह धन्हा चौर न होता तो इन मछुआरों की जिन्दगी कठिन हो जाती ।

नागार्जुन इस परिवेश के पूरे यथार्थ पर अपनी दृष्टि टिकाए रहते हैं । इस

परिवेश में जाल बुनते या धागा बाँटते अर्धनग्न बूढ़े हैं, टिकिया सुलगाती बुढ़िया है, कछाड़ों में केंकुड़े या कछुए खोजते नंग-धड़ंग लड़के हैं, जलते चुल्हों पर काली हाँडियाँ हैं, हल्दी, लाल मिर्च पिसती सयानी लड़कियाँ हैं । इसी परिवेश में एक खुरखुन की बड़ी लड़की 'मधुरी' है जो अपने ही वर्ग के 'मंगल' से स्नेह सम्बन्ध जोड़े हुए है । स्थिति यह है कि मंगल की बहू आने वाली है और मधुरी को भी अपने पति के घर जाना है । यही संकेत है कि एक अन्य लड़का चुल्हाई मधुरी के लिए सब कुछ करने को तैयार है, पर नागार्जुन लिखते हैं कि परम्परा से बंधे हुए समाज में ये छोटी-छोटी कोमल इच्छाएँ एक अलग ही अर्थ रखती है । सब जानते हैं कि इतने परिचित दायरे में विवाह उनकी नियति नहीं है।

मछुओं के पारिवारिक, सामाजिक जीवन का यथार्थ अंकित करने के बाद नागार्जुन 'देपुरा' के मैथिल जमींदारों का उल्लेख करते हैं – गढ़पोखर और उससे पश्चिम कोस भर का इलाका जिनके अधिकार में रहा है, वे तिरछुल के खानदानी शासक थे । अब जमीनदारी उन्मूलन कानून के अनुसार उनका अधिकार समाप्त हो गया था । पर इसी कानून ने उन्हें कुछ ऐसी छूट भी दे रखी थी कि वे पोखरों चारागाहों तक को चुपके-चुपके बेंच रहे थे । गरोखर (गढ़-पोखर) के भिंडों पर आम-जामुन, कटहल-मौलसिरी, नीम, पाकड़ के पुराने पेड़ थे, जो धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे थे । मोहन माझी का सपना था कि गढ़-पोखर का जीर्णोद्धार होगा तब मलाही - गोढ़ियारी के ग्रामंचल मछली पालन व्यवसाय का आधुनिकतम केन्द्र हो जाएँगे । मोहन माझी सपने ही नहीं देखता था, उसमें सपनों को यथार्थ में बदलने का साहस भी था । वह स्वाधीनता संग्राम में हिस्सा ले चुका था, जेल काट चुका था , किसान-सभा का थाना सभापति था । जब उन्हें गढ़-पोखर खतरे में दिखाई देने लगा तो उन्होंने अपनी जमात के एक बूढ़े गोनड़ के साथ संकल्प किया – "यह पानी सदा से हमारा है । किसी भी हालत में हम उसे नहीं छोड़ सकते । पानी और माटी न कभी बिके हैं न कभी बिकेंगे । गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं वह तो हमारे शरीर का लहू है ।"[58]

उधर सतधरा के जमीनदार गढ़-पोखर को नये सिरे से बन्दोबस्ती देकर ज्यादा रकम बटोरना चाहते थे । उन्होंने मछुओं के यहाँ समन भिजवा दिया । यह उनमें उत्तेजना का नया कारण था । मोहन माझी जानता था कि यह मछुओं को पानी से बेदखल करने की चाल थी । मोहन माझी ने मछुओं को समझाना चाहा कि वे किसान सभा का सदस्य बनें । मछुओं को पहले यह बात समझ में नहीं आ रही थी कि वे किसान तो हैं नहीं, किसान-सभा उनके लिए क्यों करेगी ? मोहन माझी के लिए यह समझाना असान था कि किसान सभा सभी शोषितों का समवेत संगठन है।

एक स्तर पर यह संघर्ष कथा चलती है दूसरे स्तर पर छोटी-छोटी प्रेम कथाएँ चलती है । वह प्रसंग मार्मिक है जब माधुरी मंगल को समझाती है, कि वह घर आयी सुशीला-तरूणी गृहलक्ष्मी से ही बंध कर रहे और धूल-मिट्टी के बचकाने खेल भूल जाए । यह एक प्रगतिशील लेखक की महज भारतीय दृष्टि है जो प्रेम को सामाजिकता के दायरे में देखती है। माधुरी का यह प्रश्न इसी दिशा में संकेत है – "हमारा प्रेमनगर कहीं समाज से अलग या संसार के बाहर आबाद हुआ है ।"[59]

संघर्ष की स्थिति दूर नहीं है । सतघरा वाले बाबू साहब, अंचलाधिकारी दरोगा, पुलिस के जवान, अर्दली ड्राइवर सब के साथ आ धमकते हैं । पर मछुओं के पास वे दस्तावेज है, जिससे उनका अधिकार प्रकट होता है । संयोग यह है कि इनमें जो अंचलाधिकारी है, वह युवा है, यादव बिरादरी का है और सामाजिक संघर्ष की वास्तविकता से परिचित है । उसी की उपस्थिति के चलते संघर्ष चल जाता है और मछुए अशक्त होते हैं कि यों ही उनका अधिकार मिलता रहेगा ।

संघर्ष की दूसरी स्थिति तब आती है, जब बाढ़ का प्रकोप फैलता है । भागकर लोग रेलवे की बाँध पर आ जुटे हैं । मछुओं ने इसमे काम संभाल लिया है । मधुरी एक तरह से उनका नेतृत्त्व कर रही है । वे रेल के डिब्बों में बिमारों की व्यवस्था करते हैं तभी उन्हें

आदेश मिलता है कि वे डिब्बे खाली कर दें अन्यथा मिलिट्री आकर खाली कराएगी । यहाँ फिर उनका सत्याग्रह काम आता है । नागार्जुन यह भी दिखाते हैं कि देपुरा के जमीनदार अपने स्वार्थ के लिए किस तरह मछुओं में फूट पैदा करते हैं । वे गंगा साहनी को फोड़ लेते हैं पर संघर्ष से उन्हें संगठित होने की नयी दिशा मिलती है । उनका अपना नया मछुआ संघ भी मजबूत होता है । सतघरा के जमीनदार फिर अपने षड्यंत्र से गढ़पोखर के अन्दर जाल डालना अवैध घोषित कर देते हैं जब तक अदालत फैसला न दे । मछुआ संघ वाले अपने अधिकार के बारे में सजग है । वह तय कर चुके है कि किसी भी स्थिति में घुटने नहीं टेकेंगे। वे जानते है कि सतघरा वालों का नया प्रभुत्व गैर कानूनी है । अब वे उन्हें घुसने न देंगे । वे अपनी ओर से ही गिरफ्तारियाँ देते हैं । यहाँ भी माधुरी उनका नेतृत्व कर रही है । उनहें विश्वास है कि वे अपने अधिकारों की लड़ाई में विजयी होंगे ।

'वरुण के बेटे' उपन्यास के कथा क्रम में स्त्री संसार का प्रतिनिधित्व करने वाली माधुरी है, जिसके इर्द-गिर्द कथाक्रम घूमता है । प्रेम-प्रसंगों की बनाबट में जहाँ कथाकार स्त्री के भावनात्मक विमर्शों को परोसता है वहीं उनके संघर्षों और विवशताओं को भी दर्शाता है। मधुरी की पिता मधुरी को माँ से बोलता है – ''मधुरी की अम्मा कड़ाके की भूख लगी है री और पेट पर हाथ फेर कर उसका ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करता है कि मुझे भूख लगी है । वह उठी, और वह पीठ के बल उसी सूखे पुआलों वाली उसी दरवेशी गलीचे पर लेट गया, थकान थी, जाड़ा था चिन्ता थी, बोझ था, नींद के तो मानो पर ही तोड़ दिए हैं । पलकों को मानो तन्द्रा की याद तक नहीं थी । मधुरी अबकी होली के दिन अठारहवें में प्रवेश करेगी । दूल्हा एकलौता है, घर का, उसके माँ-बाप अपनी बहू को मायके नहीं रहने देना चाहते । माघ या फागून तक लड़की को जैसे तैसे बिदा करना होगा । पाव-डेढ़ एक भुजिया चावल चंगेरी में लाकर मधुरी की अम्मा ने सामने रख दिया ।''[60]

सयानी हुई बेटी के प्रति पिता की चिन्ता युग की स्वाभाविक वैषम्यता का दर्शन

कराती है। जिसमें स्त्री के प्रति समाज का जो अव्यवस्थित परम्परागत सामाजिक दहेज व्यवस्था है उसके खतरे का संकेत स्वतः सिद्ध हो जाता है । केवट समुदाय की मधुरी जिसके बहन और भाई हैं, जो अत्यन्त ही जिद्दी किस्म के हैं । अपनी क्षुधा की पूर्ति के लिए मंगुरी मछली मांगते हैं किन्तु जिम्मेदार होने के चलते मधुरी के पूरे परिवार की चिन्ता है, वह मन में सोचती है कि– ''तीन तो आधा सेर होंगी मिलाकर ।

– तो क्या होगा दिदिया ?''

बाप रे पाँच आना पैसा कुछ नहीं है तेरे लेखे ?

अपने से छोटी बहन को मधुरी ने डॉटकर कहा और आँखे फाड़-फाड़कर उसकी ओर देखने लगी।

तोरा मान लेगी बात तो भाई भी मान जाएगा और वह मान लेगा तो अपने से छोटी को मना लेगा । इसी से माधुरी सिर्फ बहन को डाँट रही थी । एक मंगुरी तो आखिर मिल ही रही थी उन्हें ।

तीरा गुमसुम नाखून खोटती रही।

मधुरी ने भाई को लक्ष्य करके एक मछली फेंक दी – ले जा ।

तीरा रूठकर कछार की ओर चली गई ।''

नारी की यह चिन्ता जो अपने परिवार के प्रति बनी हुई है, मधुरी के माध्यम से नागार्जुन का नयी पीढ़ी के प्रति सचेत होना, मितव्ययी होना और स्थिर जिम्मेदारी का निर्वाह करना दर्शाता है। अभावग्रस्त जिन्दगी जीने वाली नारी जहाँ जीविका के प्रति इतनी सचेत है, वहीं उसका मानसिक अन्तर्द्वन्द्व अपने प्रेम के प्रति समर्पित सा और बेचैन सा है तभी तो – ''माधुरी ने अबतक चूल्हा नहीं सुलगाया था, जाने क्यों मंगल का मुखड़ा उसकी चेतना को आज बार-बार उकसा रहा था । बहुत-बहुत याद आ रही थी मंगल की । हाथ-पैर हिलाने-डुलाने को जी नहीं करता था । जी यही करता था कि बैठ जाए और बैठी-बैठी मंगल

के बारे में सोचती रहे, बस सोचती ही रहे ....।"[61]

सारी सामाजिक रूढ़ियों को किनारे करते हुए इस तरह का अन्तर्द्वन्द्व नारी के भाव जगत का विमर्श प्रस्तुत करता है । जिसमें नारी सजग होकर जीना चाहती है और अपने पसन्द के अनुसार भाव व्यवहार में रहना चाहती है । जबकि रूढ़िगत समाज में ये सब चीजे छुपती कहाँ हैं –"माधुरी अठारह साल की हो चुकी थी, मलाही-गोढ़ियारी के युवक अपने गाँव की चार-पाँच सुन्दरियों में उसका गणना करने लगे थे । मंगल और चुल्हाई के साथ माधुरी के स्नेह सम्पर्क की अफवाहें दो - एक बार उड़ी थी फिर आहिस्ते-आहिस्ते दब गई थीं। अब मंगल की बहू गौना कराकर लिवाई जा रही थी और माधुरी का भी गौना तय हो चुका था।"[62]

शील और संकोच से भरे स्त्री के रूप में माधुरी का चित्रण है, तो वहीं एक तरफ बड़ी-बूढ़ी औरतों का नयी पीढ़ी के प्रति सरल व्यवहार का सशक्त उदाहरण भी प्रस्तुत है – "बुढ़िया बोली, बहू आएगी, मेहमा आएंगे, मंगल की माँ अकेले क्या-क्या करेगी ? तुझको अभी से सब कुछ समझा बूझाकर रखना है, नहीं तो बखत पर मुँह बा देगी ! हाँ ।"[63]

'वरुण के बेटे' में नारियों के क्रान्तिकारी रूप का भी दर्शन होता है – "लेकिन माधुरी से नहीं रहा गया । वह बेंच से उठकर फिर आगे आ गई और पुलिस - भान के पिछले छोर पर खड़ी हो गई । बाएँ हाथ से उसने ऊपर लटकती जंजीर को थाम लिया और दाहिना हाथ घुमा-घुमाकर नारे लगाने लगी । लोग दुगुने-चौगुने जोश में जवाबी नारे देने लगे –

"इन्किलाब जिन्दाबाद"

"मछुआ संघ, जिन्दाबाद .... हक की लड़ाई .... जीतेंगे । .... गढ़पोखर हमारा है, हमारा है"– पुलिस मोटर चल पड़ी मगर नारे लगते रहे ।"[64]

इस प्रकार मछुआरों की जिन्दगी पर आधारित इस उपन्यास में मछुआरों के परिवेश में पलने वाली नारियों के अन्दर सहज चेतना के विकास को देखा है । श्रम शक्ति के अलावा चाहे अभावों में कितनी ही जिन्दगी रही हो माधुरी का क्रान्तिकारी रूप यह दर्शाता है

कि किसी भी स्थिति में पुरुष का सहयोग करने में नारी कहीं भी पीछे नहीं हैं । थाने पे गये मछुआरों के बीच माधुरी का विद्रोही रूप यह दर्शाता है कि नारी चेतना का विस्तृत समावेश इन उपन्यासों में निहित है, और साथ ही साथ नारी समाज के लिए यह एक क्रान्तिकारी विमर्श है।

1. ख. VIII कुम्भीपाक

1960 में कलकत्ते से प्रकाशित 'कुम्भीपाक' नामक उपन्यास का कथानक आधुनिक या समकालीन जीवन के उस नरक से सम्मिलित है, जिसमें मध्यवर्गीय ढाँचे के भीतर स्त्रियाँ विशेष रूप से शोषण का शिकार होती है । वे खरीदी और बेची जाती है, वे अपना स्वाभिमान और अस्मत लुटाने के लिए विवश की जाती है और उन्हें मुक्ति का मार्ग दिखायी नहीं देता । उपन्यास के आरम्भ में छः किरायेदारों के सह-अस्तित्व का यथार्थ है। वे सभी धूप के लिए तरसते हैं और कहने की आवश्यकता नहीं कि वे खुले जीवन के लिए भी तरसते हैं । एक सरल दिनचर्या के भीतर सीमटे हुए वे उस नरक को लगातार घटित होते देखते हैं, जिनमें नारी जीवन की मूल्य क्षय् की प्रकिया अविराम चल रही है । उपन्यास के आरम्भ में ही चार महीने से टिके एक परिवार की रहस्य गाथा का संकेत है जिसमें तीन प्राणी हैं एक अधेड़ औरत एक अधेड़ मर्द और एक सोलह साल की लड़की। महिला बड़े अस्पताल में चिकित्सा के लिए आयी है ; लड़की परिचर्या के लिए उसमें बुआ भतिजी का सम्बंध आयी है। पड़ोस में एक कम्पाउन्डर की बीबी है जो इस लड़की 'भुवन' के सर्म्पक में आकर उसका वास्तविक अतीत जान लेती है। कम्पाउन्डर की बीबी में एक सस्तापन है, उसमें एक तरह की विलासिता भी है, किन्तु साथ ही एक गहरी हार्दिकता भी, धीरे-धीरे यह रहस्य खुलता है कि इस वर्ग में लड़कियाँ खरीदी और बेची जाती है, इस पड़ो में एक तिलकधारी दास है जो किसी तथाकथित साली और दो जवान बेटियों के साथ किसी के इलाज के सिलसिले में मौजूद हैं, वास्तवकिता यह है कि लड़कियाँ समाज के उच्चवर्गीय नेतृत्व के मनोरंजन के लिए

उपलब्ध करायी जाती है। इसी कथा में एक महीम और उनकी मामी का सन्दर्भ है, जो रहस्यमय है । बाद में पता चलता है कि मामी के जीवन में कुछ हादसे हो चुके हैं, उनकी क्वाँरी लड़की अवैध संतान को जन्म देने वाली थी, जिसे किसी प्रकार नष्ट कर दिया गया और यातनाएँ दी गयी मामी को । जिन्हें महीम जी शहर ले आए और उन्हें विलास की तुक्ष सामग्री की तरह रखा । इसी बीच 'भुवन' की किसी के साथ जाने की बात तय होती है । यहाँ स्पष्ट कर दिया जाय की 'भुवन' पहले की 'इन्दिरा' है जो अनेक कुचक्रों से चलकर यहाँ तक पहुँची है । कम्पाउन्डर की बीवी ही यहाँ इंदिरा की रक्षा करती है। आगे चलकर 'रंजना' 'इन्दिरा' को अपना लेती है और उसे नया जीवन देती है। यह और आगे चलकर पता चलता है कि 'इन्दिरा' विधवा थी । उसकी पति की मृत्यु किसी हवाई दुर्घटना में हुई थी। एक नगर की सामाजिक जिन्दगी के अनेक विरूप पक्ष इस उपन्यास में उभरते हैं । जहाँ स्त्रियों के शोषण का विविध पहलू उभरकर सामने आता है । सम्बन्धों की विद्रुपता इस हद तक है कि बेटी जिसे चाहती है, माँ भी उसे ही चाहती है । ऐसे अनेक आश्रम है, जो स्त्री शोषण के केन्द्र में बने हुए हैं । इसी में एक आश्रम है 'संजीवन आश्रम' ।

आश्रम का नाम तो 'संजीवन' है जहाँ समाज में प्रताड़ित और अनाथ नारियों को आश्रय दिया जाता है लेकिन आश्रम के अन्दर दिन-रात कुचक्र का जाल बुना जाता है । किन्तु आश्रम के अन्दर कौन सा खेल चलता है वह 'चम्पा' को अच्छी तरह ज्ञात हैं तभी तो 'चम्पा' राय साहब को बताती है – "इस आश्रम शब्द से मैं घबराती हूँ - अब तो ये आश्रम अनैतिकता के अड्डे हैं, स्वार्थियों के अखाड़े हमारी जैसी भूक असहाय बकरियों की ही नहीं आप जैसे आदर्शवादी, धर्मभीरू बैलों की भी बलि इन आश्रमों के अन्दर चढ़ती आयी है, मगर वक्त आ गया है कि इन आश्रमों के ढाँचे हम बदल डालें ।"[65]

सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस शोषण के कुचक्र में नारी का शोषण करने वाली नारियों की कमी नहीं है, एक जगह 'भुवनेश्वरी' सोचती है –" .... बुआ मुझे ठगती

है, यह औरत सौ चुड़ैलों की एक चुड़ैल है जाने कितनी छोकरियों का कीमा बनाया होगा, मुझे भी तलभून कर खा जाएगी । हम क्या हैं, क्या हैं ? रकम बनाने की फैक्ट्री के कल पूर्जे हैं । देखे तो आके कोई ममता का कुँआ बनकर कैसे हमदर्दी उडेल रही हैं इस वक्त ।''[66]

यह समाज ऐसा है, जहाँ कि सामाजिकता में अपनों की खुशी के लिए दूसरों की जिन्दगी बर्बाद करने वालों की कमी नहीं है । जिनका अमानषिक व्यवहार नारी के सम्पूर्ण जीवन को तहस-नहस कर देती है, किन्तु नारी मूक दर्शक बनकर चुप-चाप बैठने वाली नहीं, बल्कि उसकी विद्रोही भवनाएँ कह पड़ती है । कुन्ती के रूप में – ''क्यों औरत बिकती है ? क्यों उनकी डाक बोली जाती है ? क्यों उन्हें बाड़े के अन्दर कैद रखा जाता है ? मुझे और तुझे किसने बर्बाद किया ? बड़े आए बाप-चाचा बनने वाले, इस बुड्ढे की नाक में छल्ला डालकर भुवन तुमने अपनी ही नहीं बल्कि सारी औरत जाति की नाक रख ली ।''[67]

बर्चस्व के प्रति नारी की यह भावना पुरुष वर्ग को सचेत करने के लिए कम नहीं है, और एक शोषित नारी की पीड़ा जो आक्रोश के रूप में दिखायी देती है कहीं भी गलत नहीं है । तभी तो प्रताड़ित और शोषित चम्पा भुवन के सहसिक कारनामे की भूरी-भूरी प्रसंसा करती है और कहती है, भुवन तुमने अच्छा किया जो इस 'कुम्भीपाक' से निकल भागी, मुझे लगता है तुम नयी दुनिया के समझदार लोगों के बीच पहुँच गयी हो । जहाँ के नर-नारी मिल जुलकर आगे बढ़ते हैं । जहाँ कोई किसी की बेबसी का फायदा नहीं उठाता, कोई किसी को चकमा नहीं देता, जहाँ पुरुष बल होगा, तो स्त्री बुद्धि होगी । स्त्री शक्ति होगी तो पुरुष ज्ञान, भुवन तुम निश्चय उस संसार में पहुँच गयी हो ।''[68]

यहाँ नारियों के सहज चेतन और चेतना से प्राप्त सफलता जिसकी उम्मीद थी, जो प्राप्त करने के बाद एक नारी की सद्‌भावना एक नारी के लिए कितनी आनन्ददायक और अनुभूतिपूर्ण है जो समाज के स्त्रियों के सुधार के लिए एक अच्छा विमर्श प्रदान करता है।

नारी संघर्ष की गाथा इस युग में कम नहीं, जो व्यथा बनकर इसमें बह पड़ा है –

"भईया आपने बहुतों का उद्धार किया है, आपका हृदय विशाल है, मैं बचपन से ही आपके स्वभाव को जानती हूँ, किसी कारण अगर अपने परिवार में इस समय इस लड़की को जगह न दे सकें तो कोई दूसरी व्यवस्था करेंगे .... लड़कियों और औरतों की खरीद बिक्री जिनका धन्धा था । ऐसे ही एक राक्षस के चंगुल से आपकी छोटी बहन, उस 'इन्दिरा' को छुड़ा लायी है ....।"[69]

नारी के प्रति नारी का यह सहयोग समाज को एक विमर्श प्रदान करता है । जहाँ सम्पूर्ण महिला वर्ग को एकत्रित होकर इस 'इन्दिरा' जैसे हजारों-लाखों लड़कियों को शोषण और नरक से बाहर निकालने की आवश्यकता है । 'कुम्मीपाक' की प्रमुख पात्राएँ 'भुवन' और 'चम्पा' समाज द्वारा शोषित महिलाएँ है, जिनकी परिस्थितियों का लाभ उठाकर समाज इन्हें नरक में ढकेल देता है । इस नारकीय जीवन की शुरूआत का कारण घोर दरिद्रता है । 'चम्पा' अपने बारे में सोचती है – "शादी के दो साल बाद पति का देहान्त हुआ । माँ और सास के साथ रहना कभी देवर और देवरानी के साथ तरूणाई के शुरू में जीजा ने छू लिया था पहले दिल को फिर देह को।"[70]

यह तो रही चम्पा की जिन्दगी जो नारी के सम्बन्धों के प्रति भी सजग ओर सचेत रहने का विमर्श प्रदान करती है । तो वहीं 'उम्मी' की माँ की जिन्दगी भी कम नारकीय नहीं, वह सोचती है –"जिस व्यक्ति ने इस माँग में सिन्दूर भरा था, अपना कलेजा किसी और डाल में टांगे रहता था मैं उसके लिए मशीन थी, वंशबर्धन यंत्र । .... तीन बच्चे हुए, लड़की है ....।"[71]

पुरुष वर्ग के द्वारा शोषित इन नारियों का अतीत समाज को सावधान होने के लिए कहता है उन स्त्रियों को विचार करने के लिए कहता है जो भावना में बहकर उल्टे-सीधे निर्णय लेकर अपने ही जिन्दगी को बर्बाद कर लेती हैं । इस बर्बादी का सबसे बड़ा उदाहरण उम्मी की माँ की ना समझी है जो स्वयं तो 'महीम' से प्रेम करती ही है, उसकी पुत्री भी

'महीम' से प्रेम करती है, यह जानते हुए भी वह सम्भालते नहीं । महीम से उम्मी की शादी करवाने के बाद भी महीम से मिलने के लोभ का सम्बरण नहीं कर पाती और इस प्रकार तीनों की जिन्दगी अबैध सम्बन्धों के बीच बर्बाद हो जाती है।

सामाजिक विद्रुपताओं का खुलासा करते हुए आश्रम की बुआ कहती हैं – ''बात कूटने से क्या होगा ? जो जहाँ हैं, गर्दन तक कीचड़ में धँसा है । रंडियाँ नहीं होगी तो भी उनका धंधा जिंदा रहेगा । हमने बड़े-बड़े ज्ञानी देखे हैं, वे बातें तो इतनी अच्छी तरह करते हैं कि सुन-सुनकर निहाल हो जाओगी लेकिन .... ।''[72]

समाज में नारियों के शोषण में पुरुष कितना जिम्मेदार है । इनका पर्दाफास तो होता ही है, साथ ही साथ मजबूर स्त्रियों के जीवन में सांसारिकता का विवश स्वरूप किस प्रकार उभरकर सामने आता है इसका उद्घाटन भी है, तभी तो चम्पा कहती है – ''मर्द और औरत एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते । एक की बोली दूसरे के लिए शहद है, एक की चितवन दूसरे के लिए बिजली है । उसकी गंध इसके लिए चंदन है । यह छू देगी तो उस ठूँठ से दूसे निकल आएंगे ।''[73]

जीवन के विभिन्न पहलुओं से जूझती नारी एक तरफ जहाँ सामाजिकता के अन्तर्द्वन्द्व से बाहर निकलती है तो दूसरी तरफ लाचार होकर उसी समाज के व्यक्तियों द्वारा पुनः शिकार होती है, जिसका जिम्मेदार पूरी सामाजिकता है । स्त्रियों का यह आक्रोश सर्वथा जायज है जो सम्पूर्ण नारी वर्ग को सम्भालने के लिए एक संदेश प्रदान करता है। कुन्ती कहती है – ''मेरे लिए भी शर्मा जी से कहो न ? तंग आ गयी हूँ । इस आश्रम से गंगा जी में छलांग लगाए बिना क्या छूटकारा नहीं मिलेगा दीदी ।''[74]

'कुम्भीपाक' में स्त्रियों का यह विद्रोही स्वर यूँ ही नहीं बुलन्द होता, कोई न कोई वर्ग उसके प्रति 'जिम्मेदार अवश्य है – ''हम बड़ी जात वालों ने महिलाओं को पंगु बना रखा है। जीवन का सारा सत्त निचोड़ कर सिट्ठी बनाकर छोड़ दिया है । .... अपवाद हो

सकते हैं, लेकिन वह तो दूसरी बात हुई न ? कालेज से निकलते ही लड़कियाँ बहू बन जाएँ और लेटी-लेटी सारा दिन उपन्यास पढ़ती रहें । रेडियों सुनती रहे तो वह आत्मविश्वास कहाँ से आएगा । श्रम, प्रज्ञा, सहयोग, विवेक और सुरूचि सभी आवश्यक हैं । चम्पा, जीवन में इन पाँचो का समन्वय करना होगा । यह पुरूषों की बपौती नहीं है, स्त्रियों का भी साझा है इसमें।''[75]

नारियों को इस दयनीय स्थिति में पहुँचाने वाले इस वर्गो की स्वीकृति भले ही सहज और स्वाभाविक हो, किन्तु अपमान और लांछना का घूँट पीती, अपने शरीर और सम्मान को बेचती, इन शोषिताओं को 'कुम्भीपाक' का रास्ता दिखा देना जितना सरल है, वहाँ से निकालकर उन्हें इस समाज में स्थान दिला पाना, उचित सम्मान दिला पाना क्या सम्भव है ? यह प्रश्न नारी अस्मिता को पुनः स्थापित करने के लिए इस बर्चस्ववादी समाज को झकझोर कर रख देता है ।

इस प्रकार नागार्जुन के इस उपन्यास में नारी चेतना के विविध संकेत बिन्दुओं को रखा गया है। जिसके सहज विमर्श के साथ शायद हम तस्वीर बदलने में सफल हो जाएँ इस तरह साहित्य के लिए यह एक बहुत बड़ा विमर्श है ।

1. ख. IX जमनिया का बाबा

1968 में इलाहाबाद से प्रकाशित इस उपन्यास का एक और नाम है - 'इमरतिया' । वैसे यह लिखा गया था 1967 में । नागार्जुन के इस उपन्यास में जमीनदार कथा की शोषण नीति से लेकर साधु सन्त और मठाधीसों की व्यभिचार युक्त जिन्दगी का सत्य चित्रण है । जहाँ नारी शोषित है, फिर भी मौन है, पीड़ित है, फिर भी साथ है । घुटन भरी जिन्दगी जीती है फिर भी धर्म के नाम पर ढकोसला करती है और इसके पीछे वह विवश होकर जीती है। उन्हीं साधु-सन्त जटा-जूटधारी मठाधीसों के द्वारा और उन मठाधीसों का सहयोग करते हैं । पूँजीपति, भूस्वामी और राजनीतिज्ञ जहाँ जमीनदारों के द्वारा शोषित

असहाय किसान वर्ग है, तो वहीं धर्म के नाम पे लूटने वाले मठाधीश भी । जहाँ विविध पार्टियों के राष्ट्रीय प्रेम दिखते हैं, तो वही जमीनदारों के ठगी और शोषण भी और हर बिन्दु में शोषित है नारी। मठ के आड़ में नारियों का शोषण धार्मिक ढोंग-ढकोसले में विश्वास के चलते होता है। उपन्यासकार का प्रमुख लक्ष्य है, जमनिया के मठ में हो रहे दुराचार का पर्दाफास करना। जिसका एक ही लक्ष्य है, मठो के भीतर के भ्रष्टाचार को खंगारना । उपन्यास के अनुसार यह मठ कोई परम्परागत धार्मिक पीठ नहीं है। जबकि जमीनदारी उन्मूलन के समय लूटे गये धन को बचाने के लिए और भूमि को सुरक्षा के लिए भ्रष्ट जमीनदारों ने इस मठ की स्थापना की और यही मठ आगे चलकर नारियों के शोषण का केन्द्र बन जाता है। जिसमें नारी की ममता भी आहत होती है । उसका विश्वास भी टूटता है और साथ ही साथ छद्म युक्त जीवन जीने के लिए मजबूर हो उठती है। मठ की मानसिकता की एक झलक 'इमरितिया' नामक मुख्य पात्रा के सन्दर्भ में साधुओं के बातचीत के दौरान इस प्रकार सामने आती है –''कितनी उम्र होगी 'इमरितिया की ? होगी यही कोई तीस-बत्तीस की । 'तन्दुरस्ती अच्छी है, लगती नहीं तीस-बत्तीस की । पच्चीस-छब्बीस की लगती है खुराक अच्छी मिले और बाल-बच्चों का झमेला न रहे तो औरतों की उमर अक्सर कम दिखाई देती है । इमरितिया पर कई लोगों की निगाह गड़ी है । देखें किसके नसीब में जाती हैं । मैं नहीं रोकूँगा मुझको रत्ती-भर भी ललक नहीं है इमरितिया के लिए । यों वह रहना चाहे तो जमनिया का मठ हमेशा उसे रखने के लिए तैयार रहेगा।''[76]

मठ का जो मठाधीश है वही जमानिया के बाबा नाम से पुकारा जाता है, जिसका बचपन का नाम करीम बख्श और पिता का नाम खुदा बख्श । यह पेशे से जुलाहा था, अपराधी गतिविधियों के चलते उसे घर छोड़ना पड़ा । पुनः जमनिया के मठ में जमीनदारों की पेशकश पर नेपाल की तराई छोड़कर जमनिया में आकर मठाधीश बना । इसके सहयोगी साथी थे 'मस्तराम' जिसे काल भैरव का अवतार कहते थे भगवती, लालता इत्यादि पात्र भी

इसमें उपस्थित हैं, 'जमनिया का बाबा' मठाधीसों और साधु सन्यासियों के द्वारा धर्म के नाम पर जनता में अन्धविश्वास फैलाकर भोली-भाली स्त्रियों को ठगने वाले मठतंत्र का पर्दाफाश करने वाला उपन्यास है । यह मात्र एक साहित्यिक उपन्यास ही नहीं है बल्कि मठों और मठाधीसों, साधु और सन्यासियों के पाखंडपूर्ण जिन्दगी का खुलाशा भी करता है। जेल के अन्दर 'मस्तराम' की मानसिक विकृति का नमूना इस तरह देखने को मिलता है – "औरते जरा-जरा सी बातों पर परेशान हो उठती हैं । इसमें औरतों का कोई कसूर नहीं है। कूप्पी इतना तो दिल होता है बेचारियों का और सच पूछो तो औरत का यों घबरा उठना मर्दों को बड़ा अच्छा लगता है। घबराएँ नहीं, झिझकें नहीं, संकुचाएँ नहीं, डर के मारे पसीना-पसीना न हो जाए तो फिर औरत ही क्या ?"[77]

इस तरह की मानसिक अवधारणाओं के बीच जीने वाली औरतों के प्रति इस तरह की सोच रखने वाले व्यक्तियों से सचेत रहने की उपन्यासकार ने संकेत किया है। स्त्रियों के सहज स्वभाव के प्रति गृह दृष्टि रखने वाली ढोंगियों के प्रति स्त्री समाज को सजग और सचेत रहने की आवश्यकता का संकेत है। किन्तु यहाँ केवल डरने और घबराने वाली स्त्रियाँ ही नहीं हैं, रानी साहिबा जैसी क्रान्तिकारी महिलाएँ भी उपस्थित हैं जो लिखती है – "मैं भी सत्याग्रह करूँगी, खाना तो छोड़ ही दूँगी पानी भी नहीं लूँगी ।"[78]

लेकिन यह स्वर इन्हीं ढकोसलेबाज मठाधीसों के धार्मिक अन्धविश्वास के प्रति खींचती हुई रानी साहिबा का स्वर है, जो शायद अगर उनके सच्चाइयों से बाकिफ होकर उनके विरूद्ध निकलता तो शायद ये मठाधीश समाज में नारियों का इतना शोषण नहीं कर पाते । किन्तु यह पाखंड ज्यादे दिनों तक नहीं चलता, एक मुकदमें की सजा में जमनीया मठ के बाबा की दाढ़ी-मूछ और जटाएँ मुड़वाकर जब न्यायालय में उसकी असलियत सामने लाया जाता है – तो उसके बाद इसके जीवन की सारी सच्चाई खुलकर सामने आती है और पता चलता है कि यह वही पुराना 'करीम बख्श' है । वह स्वयं स्वीकार करता है – "मैंने बहुत

सोच समझकर जमनिया को अपना अड्डा बनाया । पहली बात तो यह कि मुझे पिछड़ी जातियों से अधिक प्रेम है । साधुओं की जितना आदर ये करती है उतना और कोई नहीं करता, ऊँची जातियों के लोभ-भूखे साधुओं का माखौल उड़ाते है ।''[79] इस प्रकार एक भ्रष्ट मठाधीश अपने अड्डे पर नारियों के शोषण का साम्राज्य स्थापित करता है। इन मठों में दिन-रात स्त्री लोलुप दृष्टि स्त्रियों के अस्मत पर घटने वाली घटनाएँ तो घटती ही रहती है, किन्तु वहाँ की सोच में भी दिन-रात नारी विरोधी गतिविधियाँ ही मिलती है । जैसे – ''इधर पूरब की जिलों में मर्द और औरत एक साथ गाना-बाजा सुनने नहीं जाते हैं, मेले-ठेले में, नहान में, हाट-बजार में स्त्री-पुरुष अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं । छोटी जाति की औरतें खेत-खलिहान में काम कर लेती है यही क्या कम है ।''[80] इस कथन में तत्कालीन समाज के स्त्री विषयक दृष्टि उभरकर सामने आती है । जिसमें स्त्रितत्व चेतना की आवश्यकता पर एक विमर्श प्राप्त होता है।

स्त्री समाज के रूढ़िगत विचारधाराओं के प्रति एक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक सोच प्राप्त होती है, जो 'इमरितिया' के सन्दर्भ में कहा गया है – ''बाल-बच्चे वाली विधवा होती, इमरितिया न होती यह सधुआइन होने से क्या हुआ ? दिल के अन्दर बैठी हुई माँ मसोस-मसोस कर रह जाती होगी । औरत के पास और कोई न हो, बच्चा हो एक । बस, वह भारी से भारी मुसिबत झेल ले जाएगी । सन्तान का सहारा बहुत बड़ा सहारा होता है औरतों के लिए ।''[81]

सहज और स्वाभाविक चिन्तन के मध्य स्त्री के निश्छल मानसिकता का वर्णन उसके स्त्रीत्व बोध का दर्शन कराता है, जिससे वंचित 'इमरितिया' मातृत्व सुख पाने से शायद कहीं अपने को सुखी महसूस करती ।

किन्तु 'इमरितिया' हारने वाली स्त्रियों में से नहीं है। सम्बन्धों के स्वीकृति और विकृति का उसे अच्छी तरह ज्ञान है। तभी तो वह महाराज को बोलती है – ''यह वर्षों साथ

रहेगा, फिर भी सरमाता रहेगा । इसका संकोच नहीं टूटेगा, लाज-संकोच का दायरा तभी मिटता, जबकि मेरे प्रति इसके मन में गाढ़ा अपनापन पैदा होता । मैं इसकी बहन, भाभी, साली, छोटी चाची नहीं हो सकती, फिर यह भी तो नहीं है कि मैं कोई मामूली औरत हूँ । मैं तो जमनिया मठ की सधुआइन हूँ .... कितनी भी घुलना-मिलना चाहूँगी एक हद तक मर्यादा का पालन करना ही पड़ेगा ।''[82]

इस मर्यादा का पालन क्या एक मिथ्या सोच नहीं है ? जब कि व्यभिचार का अड्डा बना जमनिया का मठ सारी मर्यादाओं को लांघ जाता है और उसमें पिसती है स्त्री, उसका स्त्रीत्व, ममता और अस्मिता । यहाँ न केवल औरतों का शारीरिक और मानसिक शोषण होता है, बल्कि अशिक्षित जनता में विभूति (भभूत) और बेतों (डंडे) के प्रयोग से भूत भगाने का ढोंग भी रचाया जाता है। सबसे बड़ी त्रासदी तो नारी जीवन में उस जघन्य अपराध को लेकर होता है जब पशुओं कि बलि के अलावा छः महीने के अबोध शिशुओं तक की बलि दे दी जाती है। 'लक्ष्मी' के छः महीने के बच्चे की बलि इसका ज्वलन्त उदाहरण है – ''बेचारी लक्ष्मी ! तूने जहर खाकर इस नरक से छुटकारा पाया था न ? तेरा छै महीने का बच्चा टुकड़े-टुकड़े करके अग्निकुंड के हवाले कर दिया गया, अपने लाडले को तू बचा न सकी । बाबा को गालियाँ देती-देती पागल हो गई। फिर तुझे तेज बुखार चढ़ा, उसके बाद - तेरा क्या हुआ, किसी को पता नहीं चला, लोगों को इतना भर मालूम है कि जमनिया मठ की एक सधुआईन, लक्ष्मी, अवधूतिन जहर खाकर मर गई ।''[83]

लक्ष्मी की गोद से उसके दुधमुहें बच्चे को छीन लिया जाता है और प्रतिमा के सामने उसकी गर्दन उतार दी जाती है और उस अबोध शिशु के रक्त से उस प्रतिमा का अभिषेक होता है और ढोंगी बाबा और उसके सहयोगी उसी अबोध बालक के रक्त से तिलक भी लगाते हैं । उसे पढ़कर हृदय में करूणा का संचार तो होता ही है । इस जघन्य अपराध से हृदय विदीर्ण हो जाता है और तो और इन नर भक्षियों के अमानवीयता तब पराकाष्ठा पर

होती है, जब लक्ष्मी रूपी नारी के अबोध शिशु के टुकड़े-टुकड़े कर उसे हवन कुंड में डाल दिया जाता है और इस दुर्गन्ध को रोकने के लिए भारी मात्रा में हवन सामग्री उड़ेल दी जाती है ।

किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि अपने अबोध शिशु को देने के बाद भी नारी उसके बलि चढ़ाएँ जाने के परिणामों से अनभिज्ञ कैसे हैं । लक्ष्मी अपने शिशु के बलि चढ़ाए जाने का प्रतिरोध आखिर क्यों नहीं करती है। जबकि उसके सामने ही बलि देने के लिए बच्चे को तैयार किया जाता है उसके बावजूद भी उसकी ममता जागृत नहीं होती । एक स्त्री भला शिशु के प्रति इतनी निर्मम कैसे हो सकती है। अवश्य ही वह अंधविश्वास का शिकार होकर धार्मिक ढोंग-ढकोसलों में पड़कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है।

इस प्रकार नारी वर्ग में एक नयी चेतना की आवश्यकता महसूस होती है जो लक्ष्मी जैसी नारियों को अपने अधिकार के लिए लड़ने को प्रेरित करे । यह निर्मम घटना सम्पूर्ण नारी समाज के लिए विमर्श बनकर खड़ा है ।

जाति धर्म और धर्म परिवर्तन के साथ-साथ स्त्रियों के शोषण के लिए लम्बे-चौड़े क्षेत्र वर्णित हैं । जहाँ केवल जमनिया के मठ में ही चेले और चेलियों के साथ धर्म-पूण्य के आड़ में स्मगलिंग, स्त्री देह व्यापार और नर हत्या जैसे कुकृत्य तो होते ही हैं, बल्कि ऋषिकेश के स्वामी एकनाथ जी या कनफटा बाबा भी इसमें पूर्ण रूप से लिप्त हैं – ''जड़ी-बूटियों की तरह कनफटा बाबा औरतों को भी कूटता-छानता होगा । उन्हें भी गलता-सिझाता होगा, उनका कई अर्क निकालता होगा .... गौरी तो थी ही छिनाल, वह साल-साल में दो-तीन मर्द बदलती थी । वह उन मर्दो का बुरी तरह पीछा करती थी जो डील-डौल के तगड़े होते थे .... ।''[84]

मध्यकालीन धार्मिक स्थलों ओर मठों के शोषणवादी नीतियों का अनुपालनकर्ता जमनिया का मठ, यह दर्शाता है कि जहाँ शोषण में स्त्री ही निशाना है और उस शोषण की

शिकार हुई स्त्री के विरूद्ध स्त्री को ही खड़ा किया गया है। मध्यकाल की दासी प्रथा के अनुसार जमनिया के मठ में भी स्त्रियों का शोषण होता है और अपने कूकृत्य पर पर्दा डालने के लिए उन्हीं स्त्रियों का इस्तेमाल भी किया जाता है । लक्ष्मी के बच्चे की बलि से डरा सहमा जमनिया का मठ गौरी नामक दासी का इस्तेमाल करता है और थानेदार को पढ़ाने में सफल हो जाता है और अन्त में भगवती गौरी को साथ लेकर थानेदार की सेवा में उपस्थित हो जाता है।

स्त्री के साथ किए गए जघन्य अपराध को रोकने के लिए स्त्री का ही इस्तेमाल किया जाना अंधविश्वासी समाज में स्त्रियों के प्रति चेतना जागृत करने की आवश्यकता की तरफ ध्यान दिलाता हैं । लक्ष्मी जैसी सब कुछ बर्दाश्त कर चूप रह जाने वाली औरत और गौरी जैसी विकृत मानसिकता की स्त्री इस समाज में अपने अधिकारों के प्रति कितनी सचेत है ? और आज उसकी कितनी आवश्यकता है ? जो नारी जगत में चेतना जागृत कर सके ? यह प्रश्न एक अच्छा विमर्श प्रदान करता है।

1. ख. X पारो

1975 में प्रकाशित यह उपन्यास पहले 1946 में मैथिली भाषा में लिखा गया था, जिसका प्रकाशन पटना से हुआ था । हिन्दी रूपान्तरण किया था 'कुलानन्द मिश्र' ने । और हिन्दी में इसका प्रकाशन पहली बार 'सम्भावना प्रकाशन' 'हापुड़' से हुआ । इस उपन्यास में भी अनमेल विवाह से उत्पन्न त्रासदी का वर्णन है, जिसकी शिकार पार्वती नामक कन्या होती है । अनमेल विवाह के दुष्परिणाम को दिखाते हुए नागार्जुन ने पितृहीन 'पारो' की जीवन त्रासदी का चित्रण किया है । मिथिला की प्रसिद्ध सौराठ व्यवस्था में जहाँ विवाह के लिए मेला लगता है। इसी रीतिरिवाज और प्रथा के अन्तर्गत विवाह के इच्छुक वर आते हैं, सुन्दर कन्या की तलाश करते हुए । घटकराजों का एक वर्ग विशेष लड़का और लड़की मिलाने के लिए दलाली लेता था और उसी दलाली से अपनी जीविका चलाता था । ये घटकराज' नागार्जुन के

'उग्रतारा' नामक उपन्यास में भी उपस्थित है जो उगनी की जिन्दगी बर्बाद करना चाहते हैं, किन्तु सफल नही होते । 'रतिनाथ की चाची' में भी ये 'घटकराज' अपनी सफल भूमिका में हैं, किन्तु नवयुवकों द्वारा असफल कर दिए जाते हैं । किन्तु पितृहीन 'पारो' घटकराज झा के तीर की निशाना बनती है और एक अधेड़ व्यक्ति चुल्हाई चौधरी से ब्याह दी जाती है। लम्पट-लूच झा की इस घटकैती के एवज में दो मन चावल के साथ पन्द्रह रुपये नगद और एक धोती मिल जाती है । पितृहीन होने के चलते पार्वती (पारो) मजबूरी में इस सम्बन्ध को स्वीकार करने के लिए विवश हो जाती है। एक नारी होते हुए उसकी माँ पारो की विवशता के प्रति पसीजती नहीं, बल्कि अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त हो प्रसन्न होती है।

पिता के श्राद्ध कर्म के बाद देहली पर खड़ी पारो, बिरजू भईया को बिदा करने के लिए तैयार है । गाँव लौटने के इसी तैयारी में बिरजू के दरवाजे से निकलने पर पारो की माँ पारो को देखकर जल-भून उठती है और कहती है – "पैरो में क्या जाँता बधें हैं । छुच्छी कहीं की । अब कौन बचा है, जिसे खाओगी । देखो तो, नूनू को जाते समय पैर छूकर प्रणाम भी करेगी, इतना भी नहीं इससे बनता । झाड़ू मारो करमजली को ....।"[85]

माँ के द्वारा यही व्यवहार उसे अलमेल विवाह से अपनी त्रासदी का दंश झेलने के लिए विवश करता है। लूच झा की मदद से पारो का विवाह चुल्हाई चौधरी के साथ हो जाता है किन्तु क्या वह चौधरी को एक पति के रूप में स्वीकार कर पाती है ....? पितृहीन होने के चलते पारो सारे पारिवारिक संघर्षों का जिम्मेदार स्वयं को महसूस करती है। तभी तो वह ममेरे भाई बिरजू से कहती है – "क्यों बोझ बढ़ाए चले जा रहे हैं, बिरजू भैया । एक जनम में जो किया उसका फल आप देख ही रहे हैं, और अब आप बड़े भाई होकर तब से हाथ जोड़े एक ही पैर से जो खड़े है, सो यह पाप तो सातो जन्म में भी मुझसे पचाया-पार नहीं लगेगा, हे भगवान !"[86]

परिवार पर प्रकृति की मार से आहत पारो इस विवाह से भी संतुष्ट नहीं है । तभी

तो वह अपने ममेरे भाई बिरजू से कहती है – "जिन्हें आप लोग चौधरी कहते हैं, उनसे मेरा सम्बन्ध ही क्या है ? पति-पत्नी का सम्बन्ध ? नहीं ? हरगिज नहीं ।"[87]

कुप्रथाओं की शिकार नारी अनमेल विवाह की त्रासद जीवन को जीने के लिए मजबूर है जहाँ उसकी सारी आकांक्षाएँ भर चुकी है । सारे उल्लास ठण्ढे पड़ चुके हैं और जीवन जीने का कोई उद्देश्य नहीं रह गया । नारी जीवन का यह त्रासद रूप समाज को विमर्शित करता है तो वहीं नारियों को अपने अन्दर परिस्थितियों से स्वयं लड़ने का संकेत प्रदान करता है । जब तक स्त्री स्वयं अपने जीवन और भविष्य के सन्दर्भ में निर्णय नहीं लेगी, तब तक परिस्थितियाँ उसके हक से बाहर रहेगी । अतः स्वतः अपने भविष्य के निर्माण के लिए नारी में निर्णय क्षमता का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है । अपने अधिकारों के माँग के लिए संघर्ष करना आवश्यक है क्योंकि इस तरह की नारकीय जीवन जीने से अच्छा है कि संघर्ष करके अपने अधिकार को प्राप्त किया जाय । इस उपन्यास में जिस समाज का चित्रण है उसमें लड़कियों की पीड़ा और वेदना को समझने की शक्ति और संवेदना बिल्कुल कुन्द हो गयी सी लगती है । कोई ऐसी तस्वीर नहीं है जो समाज में नारी का स्पष्ट चित्र उकेर सके क्योंकि वह स्वयं में ही घुट-घुट कर जीने की आदी हो गयी है और जीवन सम्बन्धों के प्रति उसमें एक वितृष्णा का भाव मिलता है जैसे - पार्वती कहती है – "देवता ! दानव है ऐसा आदमी ! इस तरह के जन्तु से अलग रहने में ही खैरियत है ।"[88]

वैसे अत्याचारों के प्रति सजग नारी अपने पति के व्यवहार से संतुष्ठ नहीं है। और जिसमें परमेश्वर की छवि होनी चाहिए, उस व्यक्ति को वह राक्षस से भी ऊपर के कोटि में रखती है । परन्तु यही नारी, नारी जीवन के प्रति इतनी हतोत्साहित है या यूँ कहें कि नारी जन्म को ही वह महानरक मानती है और कहती है – "हे भगवान ! लाख दण्ड दे मगर फिर औरत बनाकर इस देश में जनम नहीं दें ।"[89]

बिरजू के स्नेह स्निग्धता से प्रभावित होकर वह सामाजिक रूढ़ियों में होने वाले

अज्ञात व्यक्ति से विवाह बन्धन की तुलना करती है और कह उठती है – "भाई-बहन ही में यदि शादी होती तो कितना अच्छा होता । जहाँ-तहाँ के एक अनजान को जो लोग उठा लाते हैं, इसमें क्या अक्लमंदी है ?"[90]

पारो की इस सरल स्त्री स्वभाव का चित्र अंकित करते हुए नागार्जुन नारी संवेदना की सारी भूमि एकत्रित कर लेते हैं । यहाँ करूणा का मैदान इतना विस्तृत हो जाता है, जिसमें केवल वेदना और पीड़ा की दौड़ ही दिखलाई पड़ती है । पारो के संन्दर्भ में नागार्जुन कहते है – "वस्तुतः मैं कहाँ जानता यह शब्द ? कहाँ से जानता वेदना का पहला रूप कैसा तरल होता है ? फिर वह किस तरह धनीभूत होती है, फिर वह धनीभूत वेदना संताप से किस तरह धीरे-धीरे द्रवित होती रहती है ?"[91]

तत्कालीन समाज में व्याप्त नारी विषयक अवधारणा इतनी विद्रूप अवस्था में थी कि स्त्री को उसके अधिकार से तो वंचित रखा ही जाता, स्वयं के जीवन से सन्दर्भित निर्णय लेने में भी मनाही थी । जिसके साथ उसे जीवन व्यतीत करना है, उसके सन्दर्भ में भी उसे कुछ ज्ञात नहीं हो पाता था तभी तो अतीत की घटनाओं के सन्दर्भ में सोचता बिरजू और उसके अन्तर मन में सारी पुरानी बातें उमड़ कर आती है । वह बाकई में विचार करने योग्य है – "पुरब की ओर से एक वर की बात है, वर द्वितीय है, अवस्था पैतीस की पढ़ायी-लिखाई मामूली जमीन जायदाद पर्याप्त, दरवाजे पर चार-चार बखार घर में दबदबा सौतेली माँ का ही हैं । उस ओर से केवल एक सौतेली बहन ही है, उस बेचारी का कपाल भी द्विरागमन के बाद ही जल गया, ससुराल में कभी किसी बात की नहीं है, फिर भी माँ के पास ही रहती है .... चुल्हाई चौधरी नाम है। सोनमनि चौधरी के लड़के है, ममहर ककरौड़, माँ का ममहर पिलुखबाड़, बहनोयी थे सौराठ के, सौतेली माँ है सुखसेना की .... हे ! जगज्जननी ! आप ही का केवल भरोसा है, पारो की नाव बीच धार में झिझिर-कौना खेल रही है । हे महामाया ! अब आप ही से पार लगे तो लगे ।"[92]

समाज में व्याप्त प्रथाओं के अनुसार चलने वाली पारो की माँ उन्हीं दूराग्रहों से ग्रसित है, जिनसे नारी विकास के प्रति थोड़ी भी चेतना नहीं होती । सारा जीवन उन्हीं रूढ़िगत परम्पराओं के चलते वक्त बर्बाद हो जाता है, किन्तु अपनी जिम्मेदारी के निर्वाह के लिए पारो की माँ जैसी पुरानी पीढ़ी, पारो जैसी नयी पीढ़ी के लिए कोई विचार ही प्रस्तुत नहीं करती । कोई परामर्श लेना उचित नहीं समझती, किसी निर्णय में सरीख होने देना नहीं चाहती ।

रूढ़ियों में जकड़ा समाज नारियों में व्याप्त अशिक्षा सारी वैज्ञानिकता से दूर अज्ञानता के अंधकार में धसा हुआ है। अस्पताल का नाम सुनकर बिरजू की नानी बोल उठती है – "री दइया, रे दइया ! चिरान में तो जान ही निकल गई होगी । सुनती है कि शीशी सुँघाकर बेहोश कर देते हैं ।"[93]

उपन्यासकार की नारी, मात्र कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि वह स्वानुभूत सत्य है, जिसके दौरान समाज को पूर्व अवधारणाओं के मध्य जीती नारियों के विकास के सन्दर्भ में चिन्तन करने की आवश्यकता है । यह नारी समाज के लिए, उपन्यासकार का, समाज को दिया गया सबसे बड़ा विमर्श है ।

भले ही कूप-मंडूक समाज के बीच नारी पात्र कुप्रथाओं के अनुपालन में उल्टे-सीधे निर्णय ले रहे हों, किन्तु जागृत नयी पीढ़ी में उन विचारधाराओं के विरोध का दमखम है । ममहर से बिरजू के वापस आने के बाद उसे देखकर हेहूआ की माँ कहती है – "एहे, बिरजू तो फूटकर जबान हो गए हैं, काकी इनकी इस बार शादी कर देती तो ठीक था ।"[94]

पुरानी पीढ़ी की रूढ़िवादी अवधारणाओं का निर्वाहक होने के कारण बिरजू की माँ तो इसका कोई जबाब नहीं देती, किन्तु नयी पीढ़ी की नारी चेतना सजग होकर जागृत हो उठती है और बिरजू की बहन 'अपर्णा' हेहूआ की माँ के इस कथन का बिरोध करते हुए कहती है – "अरी ओ, वह क्या औरत है ? शादी अभी दो वर्ष नहीं भी होगी, तो क्या

होगा ?"[95]

अपर्णा के इस जबाब से बिरजू तत्कालीन परिवेश और देश के बारे में चिन्तन करने लगता है और अन्दाजा लगाता है कि – "अपने देश की क्वारी लड़कियाँ तेरहवाँ-चौदहवाँ चढ़ते-चढ़ते सूझ-बूझ में बुढ़ियों का कान काटने लगती है । बाप का लटका चेहरा भाई की सुन्न आँखे, उनके होश ठिकाने लगाए रखती है। अच्छा या बुरा जिस किसी के पाले पड़ी कि निश्चित हुई । कुँवारियों के लिए शादी एक तरह की वैतरणी है। डर केवल इसी किनारे है । प्राण की रक्षा ....।"[96]

स्त्री जगत को पुरानी पिढ़ियाँ अपने को अत्यन्त जिम्मेदार समझते हुए नयी पीढ़ी के हर काम में कोई न कोई दोष निकालने के लिए निगाहें गड़ाएँ बैठी हैं और उन्हें अकर्मण्य और गैर जिम्मेदार करार देते हुए कहती हैं – "आजकल की बहू-बेटियाँ गप्प हाँकने में काफी बहादुर मगर तकली या तकुआ छूते ही, उँगलियाँ टटाने ऐंठने लगती हैं। गाने में भी ऐसी ही गोबर । बटगमनी या मलार गाते माथा दुखने लगता है ।"[97]

नयी पीढ़ी के स्त्रियों में गिरते मूल्यों का दर्शन होता ही है साथ ही विरासत की संस्कृति के निर्वाह में भी उनका गैर जिम्मेदाराना रवैया ही व्याप्त है । जिसके माध्यम से उपन्यासकार ने नयी पीढ़ी के प्रति एक सजगता का विमर्श प्रदान किया है ।

राजनीतिक सरोकारी लाल भैया सोसलीष्ट हैं जो ग्रामीण परिवेश में जीवन व्यतीत करने वाली महिलाओं के जीवन स्तर को सुधारने में लगे हुए हैं किन्तु इनकी रूढ़िवादि विचारधाराओं के चलते वे कहते हैं – "हुँह इधर की औरते भी क्या औरते कहलाने लायक है ?" और राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने वाली सुप्रख्यात महिलाओं का नाम लेते हुए कहते हैं – "दिखलावें तो इस इलाके में कोई सरोजनी नायडू, बिजयलक्ष्मी, पण्डित - कमला देवी चट्टोपाध्याय .... सुनने वाले सुना करते लाल भैया की बाते ।"[98]

इस प्रकार नारियों में चेतना जागृत करने के लिए, उन्हें नयी पीढ़ी का सहयोगी

घोषित करने के लिए, सारी सामाजिक विद्रुपताओं के विरूद्ध लड़ने के लिए, स्वयं की रक्षा करने के लिए और अपने भविष्य के प्रति सचेत होकर स्वयं के बारे में निर्णय लेने की क्षमता का विकास देखने वाले उपन्यासकार नागार्जुन ने अपने उपन्यास साहित्य में एक सशक्त नारी-विमर्श की प्रतिस्थापना की है । इनके उपन्यासों में उचित मातृत्व की माँग, उचित स्त्रीत्व की माँग और उचित सम्बन्धों के निर्वाह में नारी की सजगता की आवश्यकता पर बल दिया गया है, जो सम्पूर्णतः नारी-विमर्श के रूप में समाज के सामने नारी भाव प्रश्न के साथ खड़ा है ।

संदर्भ :

1. नागार्जुन का रचना संसार : विजय बहादुर सिंह, पृ. 18
2. कृष्ण सोबती को दिए गए साक्षात्कार : आलोचना, अंक - 56, पृ. 230
3. नागार्जुन साहित्य : विविध दृष्टिकोण, पृ. 9
4. वही, पृ. 7
5. वही, पृ. 9
6. वही, पृ. 12
7. मेरे बाबूजी : शोभकान्त, पृ. 35
8. वही, पृ. 13
9. वही,, पृ. 14
10.रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 27
11.वही, पृ. 29
12.वही, पृ. 28
13.वही, पृ. 35
14.वही, पृ. 50
15.बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 128
16. वही, पृ. 128
17.वही, पृ. 135
18.वही, पृ.135
19.वही, पृ. 174
20.वही, पृ. 158
21.नयी पौध : नागार्जुन, पृ. 160
22.वही, पृ. 167
23. वही, पृ. 155
24.वही, पृ. 173
25.वही, पृ. 174
26.वही, पृ. 166
27.वही, पृ. 180
28.वही, पृ. 183
29.वही, पृ. 186
30.वही, पृ. 189
31.वही, पृ. 35
32दुखमोचन : नागार्जुन, पृ. 130

33.दुखमोचन : नागार्जुन, पृ. 26
34.वही, पृ. 23
35.वही, पृ. 42
36.वही, पृ.50
37.वही, पृ.35
38.वही, पृ. 35
39.वही, पृ. 49
40.बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, पृ. 147
41.वही, पृ. 50
42.वही, पृ. 156
43.वही, पृ. 159
44.वही, पृ. 164
45.वही, पृ. 165
46.वही, पृ. 78
47. वही, पृ.179
48.वही, पृ. 179
49.वही, पृ. 133
50.वही, पृ. 110
51.उग्रतारा : नागार्जुन, पृ. 112
52.वही, पृ. 17
53. वही, पृ.170
54.वही, पृ. 54
55.वही, पृ. 120
56.वही, पृ. 150
57.वरुण के बेटे : नागार्जुन, पृ. 150
58.वही, पृ.77
59.वही, पृ. 150
60.वही, पृ. 55
61.वही, पृ. 60
62.वही, पृ. 161
63.वही, पृ. 124
64.कुम्भीपाक : नागार्जुन, पृ. 105
65. वही, पृ. 156

66.कुम्भीपाक : नागार्जुन, पृ. 178
67.वही, पृ. 51
68.वही, पृ. 105
69.वही, पृ. 105
70.वही, पृ. 89
71.वही, पृ. 78
72.वही, पृ. 171
73.वही, पृ. 104
74.वही, पृ. 108
75.वही, पृ. 79
76.जमनिया का बाबा : नागार्जुन, 185
77.वही, पृ. 191
78.वही, पृ. 80
79.वही, पृ. 106
80.वही, पृ. 109
81.वही, पृ. 20
82.वही, पृ. 127
83.वही, पृ. 30
84.वही, पृ. 130
85.पारो : नागार्जुन, पृ. 31
86.वही, पृ. 84
87.वही, पृ. 59
88.वही, पृ. 184
89.वही, पृ. 64
90.वही, पृ. 85
91.वही, पृ.136
92.वही, पृ. 136
93.वही, पृ. 134
94.वही, पृ. 43
95.वही, पृ. 44
96. वही, पृ. 146
97.वही, पृ. 54
98.वही, पृ. 56

द्वितीय अध्याय

नारी एवं नारी-विमर्श

द्वितीय अध्याय

नारी एवं नारी-विमर्श

2. क. नारी :

नारी शब्द का अर्थ नर जातीया स्त्री है। जो 'नृ' में ऋकारान्त होने के कारण 'ऋन्नेक्यो' ङीप् से ङीप् प्राप्त था और नर शब्द से जाति लक्षण ङीप् । नारी (नर जातीया स्त्री) यहाँ 'नृ' शब्द से प्रकृत गण सूत्र से ङीप् प्रत्यय और ऋकार का आर वृद्धि होकर रूप सिद्ध हुआ । नर शब्द से भी प्रकृत गण सूत्र से ङीन् प्रत्यय और अकार को 'उरणरपरः' से वृद्धि तथा अन्त्य अकार का 'यश्योती च' से लोप होकर पूवोक्त 'नारी' रूप ही बना । मानक हिन्दी शब्दकोष के अनुसार नारी शब्द का अर्थ - औरत, स्त्री है यहाँ स्त्री या नारी शब्द ही अभिष्ट है।

नारी शब्द प्रचलित 'नृ' शब्द या मूलतः नर में स्त्री प्रत्यय लगने से निष्पन्न होता है। जिसका प्रयोग नर जातीया स्त्री के लिए होता है । शाब्दिक रूप से नर का विलोम भी नारी होता है। सांस्कृतिक रूप से नारी को सृष्टि के सृष्टा के रूप में जानते हैं । नारी शब्द का प्रयोग धार्मिक रूप से देवी शक्ति के रूप में भी होता है। नारी शब्द अपने अन्दर अर्थों का विस्तार संजाल निहित किए हुए है । जिसका प्रयोग हम भाव के विभिन्न रूपों के अनुसार किया करते हैं, वही नारी कहीं देवी, आदि शक्ति, जग धात्री आदि विविध सम्बोधनों से जानी जाती है। सम्बन्धों में नारी शब्द माँ, पत्नी, पुत्री, बहन, प्रेमिका आदि रूपों में प्राप्त होती है । नर के विपरीत लिंगी इस रूप को स्त्रीत्व बोध का भण्डार भी कहते हैं । भावों में नारी श्रद्धा का रूप है :

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत-नाग-नग-तल में
पीयूस स्त्रोत सी बहा करो,

जीवन के सुन्दर समतल में'',[1]

नारी के प्रति यह उदात्त कवित्त्व भाव काव्य भावना का सुन्दर नारीत्व बोध है। जिसमें नारी को उत्तम प्रवृत्ति का परिचायक माना गया है। विश्वास की भूमि पर नारी त्याग और बलिदान की मूर्ति है किन्तु युग बोध के अनुसार उसके लिए प्रयक्त शब्दार्थों में भारी परिवर्तन भी होता रहा है। इस परिवर्तन का सुन्दर उदाहरण मैथिलीशारण गुप्त की इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है :

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,

आँचल में है दूध और आँखों में पानी ।''[2]

यह आधुनिक यथार्थ बोध में नारी अब उपरोक्त भाव बोध से बाहर निकलकर संकुचित दायरे को तोड़कर विस्तृत पुलक पर अपनी पहचान कायम कर चुकी है । नारी नर की सहगामी, अर्धांगिनी, गृहवासिनी होने के अलावा बहिसाथिनी, सहकर्मिणी सहचरी से भी आगे निकलकर आज युग परिवर्तिनी बन चुकी है। इस नारी की ध्वजा का पृथ्वी से अन्तरीक्ष तक लहरा रहा है ।

2. क. I. नारी का आविर्भाव :

नारी के आविर्भाव के सम्बन्ध में धार्मिक दृष्टिकोण ही अधिक ज्ञान प्रदान करते हैं । जिनमें नारी की उत्पत्ति विषयक मूल अवधारणाएँ ईश्वरीय सत्ता से जुड़ी हुई है, जिनमें शिव और शक्ति की प्रज्ञा बोधात्मकता है। शक्ति ही सृष्टि सम्पन्न रूप है और सविषय-अविषय की संहात्री है। जहाँ सृष्टि के मूल उद्भव का आधार बिन्दु सन्निहित है । शक्ति ही नारी रूप है, जिनके अन्दर सृजनात्मक क्षमता का मूल स्रोत व्याप्त है । ब्रह्म शक्ति स्वरूप नारी सृष्टि की सृष्टा रूप में स्थापित है। जिसके लिए नारी शब्द का लौकिक बोध दृश्यमान होता है।

'अथर्ववेद' में महादेव त्वष्टा की महती कृपा से उत्पन्न ईश्वरीय शक्ति नारी की विविध ऋचाओं में देखा गया है। शक्तिस्वरूप नारी के आविर्भाव को अर्थववेद में नर के लिए

माना गया है, जिसमें इस शक्ति के रूप को अर्धनारीश्वर की महिमा से मंडित किया गया है :

'त्वष्टा जायामजनयत त्वष्टास्यै त्वां पतिम ।

त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्धमायुः कृणोतु वाम ।'[3]

सृष्टा ने सृजित किया जाया को और पुनः उसके पति रूप में स्वयं अवतरित हुआ। सहस्र वर्षो तक आयुस्मान होने का वरदान प्राप्त कर जीने का आशीष लिया । भारतीय धार्मिक, सांस्कृति परम्परा में अर्धनारीश्वर की शक्ति से सम्पन्न इस नारी की उत्पत्ति का भाव बोध सृष्टि के सृष्टा के रूप में उपलब्ध होता है। शक्ति में ही सृजन की क्षमता निहित है जो शक्ति स्वरूप है, वही सृजनकर्ता है और इस सृजन की शक्ति-रूपता नारी में निहित है । 'ऋग्वेद' में नारी के इस उत्पत्ति भाव को ब्रह्मा के समकक्ष माना गया है – "स्त्री हि ब्रह्मा बभूविभु" ।[4]

ब्रह्म स्वरूप स्त्री की यह परिकल्पना सृष्टि के सृजन हेतु है। पारलौकिक ब्रह्म शक्ति जिस प्रकार ब्रह्मांडिय सृजन में दक्ष है, उसी प्रकार नारी भी लौकिक सृष्टि सृजन में दक्षता बनाये हुए है । नारी की इस सृजनशीलता में लौकिक गृह की कामना है, जिसमें उसके द्वारा सृजित मनुष्य निवास करता है। यह मनुष्य उस ब्रह्मस्वरूप शक्ति की ही पर सृजन शीलता है । जिसका आधार बिन्दु नारी है,नारी की कोख से उत्पन्न पुरुष उसकी, सहज रचना है, जिसकी शक्ति को 'ऋग्वेद' में कहा गया है – "जायेदस्तम ।"[5]

अर्थात् सृजन केन्द्र की लौकिकता गृह में सम्पन्न है, जो पुरुष का निवास स्थान है। ईश्वरीय शक्ति प्रसूत यह रूप गृह में निवास करता है । गृह की महत्ता नारी विषयक उत्पत्ति से सम्बन्धित है । नारी के उत्पत्ति के सन्दर्भ में 'वृहदारण्यक' उपनिषद् में कहा गया है :

"स्त्री पुमांसौ सपंरिस्वक्तौ स इमम्

देवएवात्मानं द्वेधाऽपातयत ।

ततः पतिश्च-पत्नी च अभवताम् ।''[6]

अद्वितीय परमात्मा को दो होने की इच्छा हुई, वह ऐसा हो गया जैसे स्त्री और पुरुष सम्यक् रूप से संपृक्त हो उसने अपने इस स्वरूप को दो कर डाला, जिससे पति और पत्नी हुई । परमात्मा की एकल शक्ति में इस दो स्वरूप की सृजन का इष्ट नारी शक्ति में निहित है । या उस शक्ति रूप से ही नारी का आविर्भाव हुआ है। अर्थात् शक्ति और नारी एकमेव हैं। यही नहीं 'सुबालोपनिषद' में प्रतिपादित किया गया है कि सृष्टि के आरम्भ में प्रजापति ने आत्मस्वरूप के आधे अंश से पुरुष और आधे अंश से स्त्री को उत्पन्न किया ।[7] यह अंश प्रजापति के अर्ध आत्मस्वरूप के रूप में नारी ही है, जो उत्पन्न तो हुई, किन्तु अंशतः उस शक्ति को लेकर जो प्रजापति की सृजनशीलता में निहित है और उस शक्ति के साथ वह पुरुष को लेकर आविर्भूत हुई । इसीलिए 'शतपथब्राह्मण' में स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी कहा गया है ।[8]

नारी के इस आविर्भाव को वैदिक साहित्य में कन्या जन्म के रूप में माना गया । परवर्ती 'वृहदारण्यक उपनिषद्' में कन्या जन्म को 'दुहिता में 'पण्डित्य जायेते' कहकर आदर किया गया है। 'वराहगृह' सूत्र में कन्याओं की उत्पत्ति पर प्रसन्नता व्यक्त की गयी है। यहाँ कन्या के प्रति कुछ श्लोकों में पुत्री के प्रति अभिभावकों के स्नेह की अभिव्यक्ति भी मिलती है ।

नारी के इस आविर्भूत रूप को हम विभिन्न तरह से क्रमशः देख सकते हैं । प्राचीनकाल से नारी को सदैव विशिष्ट स्थान मिला है। नारी सृजन और निर्माण की निर्भूति है। वह समाज और संस्कृति की जन्मदात्री तथा पोषाणकर्त्री है। हिन्दू धर्म कन्याओं में 'अर्धनारीश्वर की कल्पना, नारी की महत्ता तथा प्रधानता की द्योतक है। नर की सृष्टि नारी के बिना असम्भव है। अपनी सृजन प्रतिभा तथा कला से नारी पुरुष को पूर्णता और अमरता प्रदान करती है । कोमल संवेदनशील नारी सामाजिक व्यवस्था का अंश है। सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण में इसने क्रियात्मक योग दिया है ।[9]

प्रजापित के अंश से नारी का आविर्भाव हुआ । यह नारी सुकुमारता, कोमलता, शील, त्याग, विनम्रता, करुणा, स्निग्धता, कर्त्तव्यपरायणता एवं मधुरता की प्रतीक रही है। नारी आदि शक्ति के रूप में पुरुष की अर्धांग तथा जीवन का सर्जक एवं पोषण करने वाली मातृपक्ष है। जीवन वात्सल्य और ममता के इसी मधुमय प्रवाह का मुखापेक्षी है । नारी स्नेह, ममता, त्याग, करुणा एवं उत्सर्ग आदि स्वभावगत विशेषताओं के कारण माता, पत्नी, बहन, पुत्री के रूप में अभिहित हुई ।[10]

नारी के इस विविध अस्तित्व स्वरूप को देखते चलें तो प्रागैतिहासिक काल के विषय में गहन पुरातात्विक अन्वेषण के बाद यद्यपि आज भी कुछ नहीं कहा जा सकाता है। फिर भी विभिन्न स्थानों से प्राप्त चिन्हों, अवशेषों तथा विभिन्न वस्तुओं के आधार पर उस समय की बातों का अनुमान लगाया जाता रहा है। इस काल में नारी की स्थिति पुरुषों से अच्छी थी। यह मातृदेवी की उपसना से अनुमति किया जा सकता है । इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि वह समाज पितृसत्तात्मक न होकर मातृसत्तामक रहा रोगा । प्रारम्भिक समाज में वंश माता के नाम पर चलता था । क्योंकि सामूहिक विवाह प्रथा में माता ही निश्चित रूप से पहचानी जाती थी ।[11]

ऋग्वैदिक काल में नारी की सामाजिक स्थिति को उसका ऐतिहासिक काल माना जाता है । इस काल में विवाह प्रथा प्रचलित हो चुकी थी ।

किन्तु बहुपतित्व की प्रथा भी प्रचलित थी , और बधू अपने पितृगह से पतिगृह में जाकर सम्मान प्राप्त करती थी, विधवा भी पुनर्विवाह कर सकती थी । सम्बन्ध विच्छेद तथा नियोग भी प्रचलित थे । यद्यपि उस समय तक समाज पितृसत्तात्मक हो चुका था।[12]

'ऋग्वेद' के अनुसार उस काल में नारी को अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता थी । वह अपनी इच्छानुसार प्रेम-विवाह भी कर सकती थी–

"भद्रा वधुर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं मित्रं वनुते जने कित ।"[13]

दम्पत्ति शब्द पति-पत्नी के सम्मिलित स्वामित्व का द्योतक था । इस युग में स्त्रियों को शिक्षा भी दी जाती थी । अनेक नारियाँ समर भूमि में रथ चलाती तथा साहस और पराक्रम के अनेकानेक कार्य करती थीं। इस काल में पत्नी के रूप में नारी अपने पति के हृदय की अधिश्वरी मानी गयी । लेकिन यह काल बहुपत्नीत्व से अपरिचित नहीं था । इतना सब होते हुए भी नारी की दशा प्रायः एक सी नहीं रही । 'ऋग्वेद' के आरम्भिक मंत्र जहाँ उसके अधिकारों को पुष्ट करते हैं, वहीं वे आगे चलकर उन्हें शिथिल भी कर देते है।

उत्तरवैदिक काल में स्त्री पद की स्थिति में धीरे-धीरे अपकर्ष होने लगा था । इस काल में मनीषी तप को महत्व देने लगे थे तथा मनुष्यों का ध्यान जीवन के आनन्दों से हटकर तपस्या की ओर अधिक लगने लगा था । सामाजिक जीवन में स्त्रियों के आने पर रोक लग गयी थी । उत्तर वैदिक काल में नारी की स्वतंत्रता कम हो जाने से अब वह केवल धार्मिक शिक्षा ही प्राप्त कर सकती थी । 'ऐतरेयब्राह्मण' में नारी को अनर्थ की जड़ और कन्या का जन्म संकट उत्पन्न करने वाला माना गया है।[14]

मनु की दस पत्नियों के उल्लेख से यह विदित होता है कि उस समय बहुविवाह प्रथा विकसित होने लगी थी । महाभारत काल में नारी के सम्बन्ध में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नारी के अधिकार पहले की अपेक्षा कम हो गये थे । वह पुरुष की सम्पत्ति मानी जाने लगी थी। नैतिकता के मानदण्ड परिवर्तित हो गए थे । स्त्री के कई पति होते थे, नारी के लिए पतिव्रत ही सर्वोच्च धर्म, पूजा, उपसना एवं स्वर्ग प्राप्ति का साधन था । महाभारत में नारी की दशा सब जगह एक सी नहीं दिखती । रामयण तथा महाभारत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय स्त्रियों को समाज में पर्याप्त सम्मान प्राप्त था । उन्हें मातृशक्ति का प्रतीक माना जाता था, उनकी शिक्षा की उचित व्यवस्था थी । कुछ स्त्रियाँ 'स्वतियज्ञ' करती थीं, उन्हें राजनीति की भी शिक्षा प्राप्त होती थी, जिसके फलस्वरूप राजनीति में कई स्त्रियाँ अत्यन्त निपुण हो गयी थीं । उन्होंने यथा समय

समाज को राज धर्म का भी उपदेश दिया ।[15]

तत्कालीन नारी विषयक दृष्टिकोण का परिचय भीष्म के इस कथन से भी मिलता है – "प्रजापति को सब लोगों के धर्मात्मा होने के कारण देवताओं से स्वर्ग भर जाने की आशंका हुई, तबसे ही पुरुष को पतित करने हेतु नारी की सृष्टि की गयी थी ।"[16]

नारी के आविर्भूत सम्बन्धी विकास काल में जैन धर्माबलम्बी आचार्यों ने नारी को माता के सम्मान अपरिसीम आदर और श्रद्धा प्रदान की है। उस समय उच्च वर्ग की नारियों में शिक्षा का अभाव नहीं था । उनके चौबीस तीर्थांकरों में उन्नीसवीं 'बल्लिनाथ' स्वयं स्त्री थीं। इस युग की नारियों में त्याग एवं कर्त्तव्य पालन की भावना निहित थी । वे शासन सम्बन्धी प्रबन्ध करने में भी प्रवीण थीं । लक्ष्मी देवी, मलया देवी एवं विजय भट्टारिका राज्यशासन एवं नृत्यकला में प्रवीण थीं । राजशेखर की पत्नी एक कवयित्री, आलोचिका और शील भट्टारिका एक अच्छी साहित्यकार थी । मण्डन मिश्र की पत्नी उभय भारती को श्री शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ की मध्यस्था बनाया था।"[17]

बौद्ध काल में वैदिक धर्म के कर्मकाण्डों, बाह्याडम्बरों व संकिर्णता की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बौद्ध धर्म का जन्म हुआ था। पुरुष ने जिस नारी को अपनी अधिकार लिप्सा से दबा रखा था, उसने इस युग में आकर कुछ चैन की साँस ली, क्योंकि बौद्ध धर्म विवाहित, अविवाहित, वेश्या, पतिता, बन्धया, विधवा सभी को अंगीकार करता था। बुद्ध ने कहा कि नारी और नर दोनों अपने पूर्वजन्मों के कर्मफलों को भोगते हैं और यह कहना गलत है कि पुत्र रत्न द्वारा ही स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है। उनके इस कथन से पुत्री का जन्म अमंगलकारी माना जाना बन्द हो गया ।[18]

उनके भिक्षुणी संघ में रानियों और राजकुमारियों के अतिरिक्त अम्बपाली और विमला जैसी पतिता नारियों को भी प्रवेश दिया गया था। इतना सब होते हुए भी भिक्षु *संस्थाओं में भिक्षुणियों को भी अपने से लघु वय वाले भिक्षुओं के समक्ष सिर झुकाकर प्रणाम*

करना पड़ता था ।

पौराणिक काल में नारियों की दशा अत्यन्त ही दयनीय हो गयी थी । इस काल को नारी दशा के पतन की चरम सीमा कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी । इस काल में स्त्री गृहलक्ष्मी के स्थान पर याचिका के रूप में दिखायी देने लगी । माता सेविका बनकर रह गयी । जीवन और शक्ति प्रदायनी देवी अब निर्बलताओं की प्रतीक बन गयी । स्त्री जो किसी समय अपने प्रबल व्यक्तित्व के द्वारा देश के साहित्य और समाज के आदर्शों को प्रभावित करती थी, अब वह पराधीन, निःसहाय और निर्बल बन चुकी थी । मनु ने कहा है कि स्त्रियाँ नैसर्गिक रूप से स्नेह शून्य होने के कारण अपने पतियों के प्रति सच्ची नहीं रह सकती । मनु ने स्त्री को स्वतंत्र न रहने का आदेश दिया हे।[19]

शंकराचार्य ने 'द्वारम-किमेकम् नरकस्य नारी' कहा है । भर्तृहरि ने भी नारी को नरक पुरी का द्वार, सन्देहों का भँवर, दुःसांसों का नगर, मनुष्य रूपी मछली को फँसाने का काँटा, सैकड़ों कपटों वाली स्वर्ग प्राप्ति में विघ्न, मायाओं की पेटी, प्राणियों को बाँधने वाला पाश, ऊपर से अमृत तथा भीतर से विष आदि न जाने कितने सम्बोधनाओं से अभिहीत किया है।[20] 'मनुस्मृति' में कहा गया है कि स्त्री को कुत्सित तथा दुराचारी पति को भी देवता समझना चाहिए।''[21] 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' के अनुसार 'पतिसेवापरमो धर्मः' अर्थात् पति सेवा ही नारी का धर्म है ।[22] इन शास्त्रीय नियमों का उलंघन करने वाली नारियों के लिए कठोरतम दण्ड का विधान किया गया था ।

इतना होने पर भी 'याज्ञवलयक' ने स्त्री को त्यागने पर पुरुष के लिए कठोर दण्ड का आदेश दिया है और पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र के न होने पर विधवा को सम्पत्ति की अधिकाररिणी बताया है ।ऐसे विचार अपनी अल्पता के कारण कोई भी विशेष प्रभाव नहीं डाल सके। उत्तर पौराणिक काल में स्त्रियों की स्थिति में जितना ह्रास हुआ उसे हमारा सामाजिक इतिहास कलंक के रूप में सम्भवतः कभी नहीं भूलेगा । यदि इस काल को

नारी-पतन का अंतिम चरण कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं है। विदेशियों के आगमन से पूर्व ही भारतीय नारी अशिक्षा, बहुपत्नीत्व, सती प्रथा तथा बाधित वैधव्य आदि का शिकार हो चुकी थी। चाणक्य ने बहुपत्नीत्व की प्रथा का समर्थन किया तथा वेश्याओं से गुप्तचरों का कार्य करने का परामर्श दिया । चाणक्य ने तो यह भी कहा कि पत्नी समस्त झगड़ों की जड़ तथा सन्तानोत्पत्ति का साधन है । उन्होंने पति को नारी का सबसे बड़ा देवता बताया तथा उसे कंचन और कामिनी से बचने का आदेश दिया । दूसरी ओर चाणक्य ने माता को प्रथम गुरु कहकर सम्मान भी किया है।[23]

इस काल में स्त्रियों को शिक्षा से वंचति कर दिया गया था, पर्दा प्रथा इस सीमा तक पहुँच गयी कि परिवार के अन्य सदस्य तो क्या, स्वयं पति भी किसी के सामने अपनी पत्नी का मुँह नहीं देख सकता था । कालिदास के नाटकों में तथा 'कथा सरित्सागर' में बहुपत्नी-प्रथा का उल्लेख मिलता है।[24] सल्तनत काल में नारी की दशा और भी खराब हो गयी थी । मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमणों से लेकर मुगल साम्राज्य के पतन तक का इतिहास नारी के आँसुओं से ही नहीं अपितु रक्त से लिखा गया है ।[25] मुस्लिम काल ऐश्वर्य का काल होने के कारण बादशाहों के दरबार में विलासिता का वातावरण व्याप्त था और उस विलसिता का शिकार बनी भोली-भाली असहाय सुन्दरी नारी । ऊर्दू बादशाहों ने भी मुगल बादशाहों की विलासिता की वृद्धि में सहयोग किया। विलासिता की वृद्धि के कारण इस काल में वेश्यावृत्ति की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गयी थी। अकबर द्वारा बसायी गयी शैतानपुरी इसका ज्वलंत प्रमाण है।[26] मुस्लिम काल में नारी को केवल विलास की ही पात्रा नहीं बल्कि कुछ स्थानों पर आदर भी व्यक्त किया है। मोहम्मद साहब ने तो माता के पावों तले ही स्वर्ग की कामना की है।[27]

'आधुनिक काल' के पूर्व भारतीय नारी गृहकारा की बंदिनी बन चुकी थी। इस काल तक आते-आते भारतीय नारी के जीवन का इतिहास की वेदना की करुणतम कहानी बन

कर रह गया था । वह रूढ़ियों की श्रृंखलाओं में बँधी अपने पर छाये गए अत्याचारों के विरोध में एक शब्द भी न कह सकी और न ही वह यह समझ सकी कि उसके ये आदर्श आभूषण नहीं अपितु उसके नारीत्व को निस्पन्द बना देने वाली लौह-श्रृंखला है। इस सम्बन्ध में महादेवी का यह कथन ठीक ही प्रतीत होता है – चाहे हिन्दू नारी की गौरव गाथा से आकाश गूँज रहा हो, चाहे उसके पतन से पाताल काँप रहा हो, परन्तु उसके लिए तो न सावन सूखा न भादो हरा की कहावत ही चरितार्थ होती रही है। उसे हिमालय को जला देने वाले उत्कर्ष तथा समुद्रतल की गहराई से स्पर्धा करने वाले अपकर्ष दोनों का इतिहास आँसुओं से लिखना पड़ा है।[28]

तीन सौ वर्षों के अंग्रेजों के शासन काल में अनेक भौतिक परिवर्तन हुए । नारी ने घर की चारदीवारी को लाँघने का साहस जुटाया और शिक्षा के क्षेत्र में जागरूक होने लगी। इस काल में नारी सुधार आन्दोलन के अग्रदूत राजा राममोहन राय एवं नारी शिक्षा के प्रचारक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने नारी शिक्षा की व्यवस्था की । सन् 1847 में सर्वप्रथम महिला महाविद्यालय की स्थापना कलकत्ता में हुई ।[29]

जहाँ से सर्वप्रथम भारत की दो स्नातिकाएँ निकलीं । इस कालेज के द्वारा ही महिलाओं के लिए आधुनिक शिक्षा के द्वार खुले, जिसके प्रभाव स्वरूप सन् 1847 में स्थापित 'गुजरात' वर्नाक्यूलर सोसायटी' ने सन् 1849 में सर्वप्रथम सहशिक्षा प्रारम्भ की।[30]

इस काल में विधवाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी । विधवाएँ अब भी सामाजिक उत्सवों में अशुभ मानी जाती है । यद्यपि इस समय विधवा जीवन के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण व्यक्त होने लगा था । किन्तु उसके उत्थान में क्रियात्मक कदम सबसे पहले सन् 1853 ई. में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने उठाया । इन्होंने 'विडो मैरिज' पुस्तक प्रकाशित की । इन्होंने 'पराशर-संहिता' के तर्कों के आधार पर पुनर्विवाह का समर्थन किया था। सन् 1856 में उनके प्रयत्नों से विधवा-पुनर्विवाह विधेयक पारित हुआ । स्वामी दयानन्द

ने अनेक विधवा आश्रम खोले तथा 'स्त्री शूद्रोवधीयताम्' का भी खण्डन किया । उन्होंने 'विधवा-विवाह के निषेध तथा नियोग पद्धति का समर्थन किया था।[31] ब्रह्म समाज (1824) प्रार्थना समाज (1867) आर्य समाज (1875) थियोसोफिकल सोसाइटी तथा रामकृष्ण मिशन आदि अनेक संस्थाओं ने इस पवित्र कार्य में पर्याप्त सहयोग दिया।

बीसवीं शताब्दी में नारियों की दशा में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ । पर्दा प्रथा, अशिक्षा, असमानता आदि की दीवारें उनके सामने ज्यों की त्यों बनी रही। फर्क इतना अवश्य आया कि नारी हृदय में युग-युग से सुप्त विद्रोह मचलने लगा और उसमें अपना हक माँगने का भाव जागृत होने लगा । इस काल में सम्बन्ध विच्छेद, वेश्यावृत्ति उन्मूलन तथा नारी के सम्पत्ति सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर अनेक कानूनी सुधार हुए । सयाजी राव गायकवाड ने अपने राज्य में बाल विवाह को रोकने के लिए कानून बनाया तथा सन् 1910 में उन्होंने सिविल मैरिज कानून भी बनया ।[32]

श्रीमती सरोजनी नायडू तथा अम्मन बीबी ने इस काल में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया । नारी उत्थान के लिए महिलाओं की भारतीय परिषद (1917), अखिल भारतीय महिला परिषद् (1927), अखिल भारतीय शिक्षा कोश शिक्षा (1929), स्नातिका संघ (1949), कस्तुरबा गाँधी मेमोरियल ट्रस्ट (1945), समाज कल्याण संस्था (1953) ने अनेक प्रयास किए, सन् 1929 में नारी को मताधिकार प्रदान किया गया ।

महात्मा गाँधी द्वारा शुरू किया गया असहयोग आन्दोलन ज्यों-ज्यों गति पकड़ता गया, त्यों-त्यों स्त्रियाँ भी अपने देश को स्वतंत्र कराने के लिए सामाजिक कुरीतियों की जंजीरों को काटकर स्वतंत्रता संग्राम में पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आगे बढ़ने लगीं। गाँधी जी ने जितने भी काम आरम्भ किए उन सबमें नारियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही । सन् 1936 में शारदा ऐक्ट पारित कर 14 वर्ष से कम आयु की लड़कियों की शादी बन्द कर देने का प्रयत्न किया गया । लड़कियाँ स्कूल और कॉलेजों में पढ़ने के लिए जाने लगीं।

स्वतंत्रता पूर्व से स्वातंत्र्योत्तर काल तक नारी ने अपनी योग्यता के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। आज प्रारम्भिक पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाली लड़कियों की संख्या लाखों में पहुँच गयी है किन्तु अब भी 50% स्त्रियाँ पाठशाला के प्रांगण तक नहीं पहुँच पाई हैं। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि आधुनिक काल में भारतीय नारी ने अपने तीव्र विवेक एवं बुद्धि का परिचय नहीं दिया है । हमारे देश में सर्वप्रथम महिला राज्यपाल होने का गौरव श्रीमती सरोजनी नायडू को है। श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित अपनी क्षमता के बल पर न केवल मंत्री मंडल में थीं अपितु उन्होंने रूस और अमेरिका में उत्तरदायी राजदूत के पद पर कार्य किया। इस देश की प्रथम महिला प्रधान मंत्री के रूप में श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी अलग पहचान बनायी है । क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्यिक जगत् में भी स्त्रियाँ प्रवेश कर चुकी हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान तथा महादेवी वर्मा का स्थान हिन्दी साहित्य में ऊँचा है। रामेश्वरी देवी चकोरी, विद्यावती कोकिल आदि अपनी रचनात्मक प्रतिभा के बल पर हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना स्थान बना चुकी हैं।

अपने विकास क्रम में हमारे देश में महिलाएँ इंजीनियर, वैज्ञानिक, कृषि तथा अन्य विषयों की विशेषज्ञ, विमान चालक, तकनीशियन, व्यापार – व्यवसाय संचालक और कंपनी एग्जीक्यूटिव आदि के दायित्वपूर्ण पदों पर काम कर रही हैं।[33] इसके बावजूद यह स्वीकार करना ही होगा कि हमारे देश में उन्नत नारियों की संख्या अत्यल्प है। अधिकांश मध्यम वर्गीय शिक्षित नारियाँ क्लर्क, सेल्सगर्ल, टाइपिस्ट, नर्स तथा अध्यापिका आदि के रूप में कार्य करती हैं किन्तु औद्योगिक क्षेत्र में नारी श्रम सस्ता है। अधिकांश भारतीय नारियाँ श्रम द्वारा धन प्राप्त करती हैं। इन अशिक्षित नारियों में लगभग ढाई लाख से अधिक फैक्ट्रीरियों में काम करती हैं।[34]

स्वस्थ्य गृहस्थी जो भारतीय संस्कृति का मन्दिर है, उसमें गृहस्वामिनी के रूप में नारी एक पूज्य मूर्ति है । अनेक तरह की उन्नति करके भी वह अपने इस नैसर्गिक स्थान की

उपेक्षा नहीं कर सकती है। नारी के मातृत्व में उसका गौरव समाज की स्थिति और परमेश्वर इच्छा की आराधना सन्निहित है।[35] इस प्रकार विदित होता है कि भारतीय नारी कभी पुष्प की देवी रही, तो कभी चरणों की दासी, कभी गृहस्वामिनी रही, तो कभी वंदिनी, किन्तु आज वह क्या बनना चाहती है, यह उसे स्वयं ही मालूम नहीं है । वह आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर अवश्य होने लगी है। किन्तु प्रत्येक क्षेत्र में स्वतंत्र नहीं है। संवैधानिक दृष्टि से नारी सम्भ्रान्त नागरिक स्वीकार कर ली गयी है। किन्तु यथार्थ में इसकी स्थिति आज भी कमजोर है ।[36]

हमारे संविधान में नारी की दशा जितनी सुधरी हुई प्रतीत होती है, व्यावहारिक जीवन में उतनी अच्छी नहीं है । विदेशी नारियों की तुलना में देखें तो यह कहा जा सकता है कि रूस में आज मातृत्व को जितना सम्मान प्राप्त है।[37] फ्रांस में जितनी स्वतंत्रता प्राप्त है।[38] इंग्लैण्ड में उन्नति के जितने अवसर प्राप्त है।[39] अमेरिका में नारी को जितनी आत्मनिर्भरता प्राप्त है, उतनी भारतीय नारी की नहीं।[40]

शिक्षा की दृष्टि से आज भी भारत की अधिकांश नारियाँ निरक्षर हैं। आज स्त्रियों को संपत्ति सम्बन्धी अधिकार अवश्य मिल गये है, किन्तु कन्या के पिता को आज भी दहेज में मोटी धन राशि देनी पड़ती है।[41]

गाँवों में तथा छोटी जातियों में आज भी बाल विवाह का प्रचलन है और दुर्भाग्य वश यदि कन्या विधवा हो गयी तो उसे जीवन भर वैधव्य का 'कफन' ओढ़े रहना पड़ता है। कानून द्वारा विधवा पुनर्विवाह की स्वीकृति अवश्य मिल गयी है किन्तु अपने यहाँ के घुटन भरे सामाजिक वातावरण में ऐसा कदम उठाने का साहस बहुत कम नारियाँ कर पाती हैं।

2. क. II नारी के पर्यायवाची शब्द :

नारी के पर्यायवाची शब्द जो साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं, व्याकरणाचार्यो के अनुसार नारी शब्द के विविध पर्याय हैं । जिसमें प्रमुखतः हैं – औरत, महिला, रमणी, स्त्री, वनिता,

ललना, बामा, अबला, कामिनी, भामिनी, भार्या, आर्या, कान्ता, अंगना, कलत्र, सुन्दरी, प्रमदा, प्रिया आदि।

धार्मिक प्रयोग में आने वाले 'नारी' शब्द के पर्याय दुर्गा, गौरी, लक्ष्मी, सरस्वती, देवी, अन्नपूर्णा, जगधात्री आदि प्राप्त होते हैं।

सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से 'नारी' शब्द के पर्याय हैं – सुन्दरी, सुभगा, रूपसी, रूपराशि, सुदर्शना, छबीली, हसीना, लावण्यमयी, सुभद्रा, प्रेयसी आदि ।

भावनात्मक रूप से स्त्रीत्व विषयक प्रचलित नारी के पर्यायवाची शब्द जोरू इच्छावती, सुन्दर स्त्री, सौदामिनी, पदमिनी, चित्रिणी, सांख्यिनी, हस्तिनी, प्रियंशु जैसे पर्याय प्रचलित हैं । वस्तुतः समान अर्थ रखने वाले शब्द जो नारी शब्द से सम्बन्धित हैं, साहित्य भावानुरूप उनका प्रयोग अलग होता है। धर्म के आस्थानुसार उनका प्रयोग आस्था के रूप में पूजनीय देवी के शक्ति रूप पर्याय होते हैं। तो वहीं गुण विशेष पर्याय व्यावहार में प्रयुक्त व्यावहारिक गुण पर्याय और कुछ निश्चित विशेष प्रयुक्त पर्याय हैं।

समान अर्थ रखने वाले शब्द पर्यायवाची कहलाते हैं, क्योंकि इसके अर्थ में समानता अवश्य रहती है परन्तु इनका प्रयोग विभिन्न प्रकार से होता है। इसका कारण यह है कि एक ही व्यक्ति अथवा वस्तु का नाम उसके विभिन्न गुणों और धर्मों के अनुसार होता है, क्योंकि प्रत्येक नाम सभी स्थान पर उपयुक्त नहीं होता । "कामिनी जगत" का प्रयोग "नारी जगत" के स्थान पर कितना हास्यास्पद होगा । अतएव ऐसे शब्दों का प्रयोग बहुत ही सावधानी पूर्वक करना चाहिए । इससे अच्छा तो यही होगा कि गुण धर्म के अनुसार प्रचलित शब्दों का प्रयोग हो । संस्कृत भाषा के क्लिष्ट और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग पद्य में ही होता है। साधारण गद्य में बहुत कम ।[42]

नारी के कुछ गुण विशेष पर्याय पर ध्यान केंद्रित करने से हमें कहीं परणीता स्त्री, किसी पुरुष से ब्याही स्त्री, कामिनी, महिला, रमणी, वनिता, कलत्र इत्यादि साम्य पर्याय प्राप्त

तो होते हैं, किन्तु इनका प्रयोग विविध क्षेत्रों में विविध उद्देश्य और लक्ष्य की पूर्ति हेतु किए जाते हैं । किन्तु उन्हें साहित्य में पहचानने के प्रकरण और अवसर के अनुकूल योग्यता उत्पन्न करनी पड़ती है या उसके अनुसार भाव लेने पड़ते हैं । कदली, पद्मा, मालिका, मुखरी, मुफी, रेखा, सुभद्रा, प्रियंशु इसके उदारहण हैं।

शब्दों के प्रयोग में पर्याय के लिए शब्दों के गुण धर्म के अनुसार उनकी प्रयुक्ति के सार्थक वातावरण का ज्ञान भी आवश्यक है। नारी, औरत के रूप में प्रयुक्त पर्याय महिला वर्ग के लिए प्रयुक्त हुआ है। किन्तु वहीं बामा और स्त्री अलग-अलग प्रकरण और अवसर के भावानुकूल प्रयोग हैं, जबकि सभी नारी के ही पर्याय हैं।

इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्द प्रयोग के मूल सिद्धान्त को देखना होगा –''ऐसे शब्दों को चुनते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे प्रकरण विरूद्ध या अवसर के प्रतिकूल न हों, जैसे यदि कोई मनुष्य किसी अत्याचारी के हाथ से छुटकारा पाना चाहता हो, तो उसके लिए हे गोपिका रमण ! हे वृंदावन बिहारी आदि कहकर कृष्ण को पुकारने की अपेक्षा हे मुरारी, हे कंसनिकंदन ! आदि सम्बोधनों से पुकारना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि श्रीकृष्ण के द्वारा कंस आदि दुष्टों का मारा जाना देखकर उसे उनसे अपनी रक्षा की आशा होती है, न कि उनका वृन्दावन में गोपियों के साथ विहार करना देखकर । इसी तरह किसी आपत्ति से उद्धार पाने के लिए कृष्ण को मुरलीधर कहकर पुकारने की अपेक्षा 'गिरिधर' कहना अधिक अर्थ संगत है।''[43]

नारी शब्द के प्रचलित पर्याय 'अमरकोश' के अनुसार –

''स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः ।

प्रत्रीपदर्शिनी वामा वनिता महिला तथा।''[44]

अर्थात् स्त्री योषित, अबला, योषा, सीमन्तिनी, वधू, प्रतीयदर्शिनी, वामा, वनिता, महिला ये सामान्य नारियों के पर्याय हैं । सामान्य नारी के पर्याय से यहाँ अर्थ गृह-कार्य दक्ष महिलाओं

से सम्बन्धित है :

'अंगना भीरूः कामिनी वाम लोचना प्रमदा मालिनी कान्ता

ललना च नितम्बिनी, सुन्दरी रमणीरामा'

अर्थात् सामान्य गृहस्थी में संलग्न डरी-सहमी नारी अंगना, भीरू-पर्याय के रूप में है, तो नारी का सहधर्मिणी पर्याय वाम लोचना, सुन्दर नारी का पर्याय कामिनी, तो गम्भीर सौन्दर्य से पूर्ण प्रमदा, अत्यन्त मान वाली का पर्याय मानिनी, तो नारी का जीवन संगिनी पर्याय कान्ता, ललना, सुन्दरी, रमणी, रामा आदि ।[45]

"कोपना सैव भामिनी।"

क्रोध करने वाली स्त्री के पर्याय हैं – कोपना और भामिनी ।

"वारारोहा मत्तकाशिन्युन्तमा वरवर्णिनी"

गुण और शील से युक्त नारी के चार पर्याय हैं, वारारोहा, मत्तकाशिनी, उत्तमा और वरवर्णिनी, "कृता भिषेका महिषी" ऐसी नारी जो राजा की पत्नी के रूप में या पत्नी के समकक्ष स्थान रखती हो, उसका पर्याय है – महिषी जिसे पटरानी नाम से भी जानते हैं। पटरानियों से भिन्न रानियों के रूप में प्रयुक्त नारी का पर्याय है भोगिनी :

"भोगिन्योऽन्या नृपस्त्रियः ।" "पटनी पाणिगृहीती च द्वितीया सहधर्मिणी" "भार्या जायाथ पुंभून्भि दाराः" ब्याही स्त्री के नारी रूप पर्याय हैं – पत्नी, पाणिगृहीनी, द्वितीया, सहधर्मिणी, भार्या, जाया, दारा, ब्याही अर्थात जिनके सामने पाणि ग्रहण आदि संस्कार सम्पन्न हों और अग्नि के फेरे लगे हों, उस जैसी नारी के लिए उपरोक्त पर्याय हैं ।

"स्यातु कुटुम्बिनी पुरन्ध्री" पति और पुत्र वाली सम्पन्न नारी के पर्याय है कुटुम्बिनी, पुरन्ध्री, "सुचरिता तु सती साध्वी पतिव्रता ।"

पति सेवा में संलग्न पतिव्रता नारी के पर्याय हैं – सुचरित्रा, सती, साध्वी पतिव्रता। जिन पुरुषों के अनेक विवाह हों, उस पुरुष की पहली स्त्री, नारी के पर्याय हैं –

कृतसपत्नीका, अध्यूढ़ा, अधिविन्ना – ''कृतसपत्नीका ध्यटाधिविन्ना।'' स्वयंवर के द्वारा जो नारी किसी की पत्नी बनी हो या जिन कन्याओं के लिए स्वयंवर किया गया हो, उनके पर्याय स्वयंवरा, पतिम्वरा, वर्या है – ''अथ स्वयंवरा पतिवरा च वर्या च।'' कुलीन नारियों के पर्याय हैं – कुलस्त्री, कुलपालिका –''कुलस्त्री कुलपालिका कुलेति कुलपालिका।'' प्रथम अवस्था वाली या कुमारी नारी के पर्याय है – कन्या, कुमारी – ''कन्या कुमारी।'' ''गौरी तु नग्निकाना-गतार्वता'' अर्थात् गौरी नग्निका, अमागतार्तवा ऐसे युवती नारी के पर्याय हैं, जिसे रजोधर्म नहीं हुआ हो।'' स्यान्मध्यना दृष्टरजाः'' मध्यमा, दृष्टरजाः ऐस नारी के पर्याय हैं, जिसे पहली बार रजोधर्म हुआ है – ''तरुणी युवतीः समे''[46] वही, तरुणी युवती, जवान स्त्री या नारी के पर्याय हैं । स्नुषा, जनि, वधू (पतोहू) अर्थात् पुत्र-भतीजा या शिष्य आदि के स्त्री स्थान रखने वाली नारी के पर्याय है । ''सभा स्नुषाजनीवध्वः'' । ''चिरण्टी तु सुवासिनी'' अर्थात चिरण्टी सुवासिनी उन नारियों को कहते हैं जिस युवती नारी में यौवन के चिन्ह कुछ-कुछ मालूम पड़ रहे होते हैं। ''इच्छावती कामुका स्यात'' किसी पदार्थ विशेष को चाहने वाली नारी के पर्याय हैं ।

इच्छावती, कामुका । ''वृषस्यन्ती तु कामुकी'' अत्यधिक मैथुन की इच्छा करने वाली स्त्री के पर्याय हैं । वृषस्यन्ती और कामुकी । ''कान्तार्थिनी तु या याति संकेत सामिसारिका'', पति को संकेत स्थान पर बुलाने वाली स्त्री का नाम है, अभिसारिका (स्त्री), एरति के लिए अपने पति या जार के संकेत किए हुए स्थान पर जाने वाली ''पुंश्र्चली चर्बणी वन्धतयसतो कुलटेत्वरी स्वैरिणी पांगुली च स्यात् ।'' व्याभिचारिणी स्त्री के नाम हैं, पुश्चली, चर्बणी, बधकी, असती, कुलटा, इत्वरी, स्वैरिणी, चांशुला । ''आशित्वी शिशुना बिना।'' वंश हीन स्त्री का नाम है, अशिश्वी । ''अबीरा निष्पनिसुता'' पति और पुत्र से हीन नारी का नाम अविरा है - ''विश्र्वस्ता विधवे समे'' विधवा स्त्री को विश्वस्ता कहा जाता है। ''आलिः सखी वयस्या'' सहेली के नाम है। आलि, सखी और वयस्या । ''पतिवत्नी सभर्तृका'' सधवा नारी के

नाम, पतिवत्नी सभर्तृका है। ''वृद्धा पलिवनी'' पके हुए बालों वाली नारी का पर्यायवाची वृद्धा, पलिवनी वृद्ध है।

''प्रज्ञा तु प्राची'' – किसी विषय को अच्छी तरह जानने वाली नारी को प्रज्ञा और प्राची कहा जाता है। ''प्रज्ञा तु धिमती'' चतुर नारी को प्रज्ञा और धीमती कहा जाता है। ''शुद्री शूद्रस्य भार्या स्यात्'' – किसी भी वर्ण में उत्पन्न शूद्र नारी को शूद्रा कहा जाता है। अभीरी, महासुद्री, ग्वालिनी, गोपिकी, आर्थाणी, आर्या आदि पर्याय वैश्य नारी के पर्याय रूप हैं । ''नग्निका कौटवी।'' नंगी नारियों के पर्याय है, नग्निका कोखी। जो नारी राजदरबार या अन्तःपुर में सन्देशवाहिका का कार्य करती हैं, उनके पर्याय हैं, दूती, संचारिका । अधबुढ़ी और गोरुआ वस्त्र पहने हुए नारी के पर्याय कात्यायनी है । वह नारी जो दूसरे के घर में रहे और स्वच्छन्द विचरण करे, उस स्वतंत्र नारी के पर्याय सैरन्ध्री है, जो वृद्धा न हो और आज्ञा पाकर कहीं भी आया-जाया करे वैसी नारी के पर्याय हैं । आसिकनी, जो नारी वेश्यावृत्ति में लगी हो, उसके पर्याय है वारस्त्री, गणिका, वेश्या, रूपाजीवा, हस्तरेखा की जानकार नारी जो हाथ-पैर आदि की रेखाओं को देखकर शुभाशुभ लक्षणों को जानने वाली हो, उस नारी के पर्याय हैं – विप्रश्निका, इच्छाणिका, देवज्ञा, रजस्वला स्त्री के नाम हैं । ऋतुमती, उदक्या तो वही दो बार ब्याही हुई द्विजातिय नारी के पर्याय है अग्रेदिधिषुः ।

इस प्रकार गुण-धर्म के अनुसार व्यवहारिक प्रकरण प्रयोग में नारी के पर्यायवाची शब्द अनेक स्थलों पर प्राप्त होते हैं ।

2. क. III नारी के विविध रूप :

भारतीय संस्कृति में नारी को सदा ही विशिष्ट स्थान मिला है। किसी समाज की सभ्यता तथा संस्कृति का मानदण्ड नारी की मर्यादा है वह समाज में पुरुष के लिए कभी जन्मदात्री, पोषणकर्त्री, माता के रूप में आती है। कभी अपने पति की अर्धांगिनी, सहचरी, सहयोगिनी के रूप में आती है और कभी पवित्र रस की भावधारा को प्रभावित करने वाली

भगिनी के रूप में लक्षित होती है। अतः समाज में नारी के माता, पत्नी, भगिनी, पुत्री, सखी, सेविका, तपस्विनी आदि अनेकानेक रूप दृष्टिगत होते हैं । श्री, रमा, जगदम्बा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियों के रूप में नारी के ही प्रति पूज्य भाव व्यक्त किया जाता रहा है।

नारी परिवार की प्रमुख सदस्य होती है, उसे समाज के रीति-रीवाज, रहन-सहन, आचार-विचार आदि को मर्यादित रखना पड़ता है। समाज में नारी अपने विविध रूपों में कर्त्तव्य पथ पर चलकर आदर की पात्र होती है। अन्यथा उसे समाज से संघर्ष करना पड़ता है। समाज में नारी माता, पत्नी, पुत्री, भगिनी, सखी आदि अनेक रूपों में दृष्टिगत होती है जो पुरुष के साथ उसके दैहिक, रागात्मक और धार्मिक सम्बन्धों के कारण निर्मित होते हैं। इसी कारण इन सम्बन्धों के वाचक शब्दों का समाज में प्रचलन रहा है।

माता के रूप में नारी : 'माता' शब्द संस्कृत में 'मातृ' जिसका व्युत्पत्तिगत अर्थ 'आदरणीय' है, से बना है। यास्क के मत से 'मातृ' का भाव निर्मातृ अर्थात् निर्माण करने वाली जननी भी है । इसी जननी अथवा माता को मानव आदि युग से श्रद्धा अर्पित करता रहा और उससे स्नेह पाता रहा है। माता शब्द का अतिव्यापक अर्थ है – जननी, जनयित्री आदि शब्द इसी के पर्याय हैं। हिन्दू समाज में 'मातृदेवोभाव' की महनतम धारणा अद्यावधि अजन्य रूप में प्रवाहित है। शंकराचार्य ने अपनी माता को जो श्रद्धांजलि अर्पित की है वह प्रेरणादायक है। पुराणों तथा तंत्र साहित्य में माता को ही आदिशक्ति स्वीकार कर जगदम्बा, जगजननी आदि अनेक नामों से उसकी पूजा की गयी है ।[47]

स्वामी विवेकानन्द ने नारी की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा है कि इस विनश्वर संसार में ईश्वर का प्रेम पाने के लिए माता का प्रेम निकटतम साधन है। मातृत्व में महानता, स्वार्थशून्यता और क्षमाशीलता का भाव होता है।[48]

माता मानव की केवल जन्मदात्री नहीं, अपितु उसकी गुरु पूज्या तथा स्वर्ग से बढ़कर है। माता का अर्थ अर्थववेद में – 'मात्रा भवतु समना' अर्थात् उदर में गर्भ या शरीर

को धारण करने वाली पूजनीया नारी बताया गया है, जिससे उसकी महत्ता का बोध होता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में माता की माहत्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जन्मदाता से भी अन्नदाता पिता अधिक श्रेष्ठ है, इससे भी सौ गुणा अधिक वन्दनीय माता है क्योंकि वह गर्भ धारण तथा पोषण दोनों करती है। वेदों में विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक सन्दर्भों में 'माता' के सोलह प्रकार बताए गए हैं–

''स्तनदात्री, गर्भदात्री, भदयदात्री, गुरुप्रिया । मार्तुमाता, पितुर्माता, सोदरस्थ प्रिया तथा भातु पितुश्च भगिनी मातुलानि तथैवच आगर्भजा या भगिनी पुत्र पत्नी प्रिया प्रसूः जनानां वेदाविहिता भातरः षोड्शाः स्मृताः ।[49]

मातृ-पद अपनी त्याग भावना और विवेक शीलता के कारण सदैव ही सर्वोच्च रहा। आचार्य से भी बड़ा माता को बताया गया है । एक पिता सौ आचार्यो से उत्तम है और एक माता एक सहस्त्र पिताओं से श्रेष्ठ है। माता संतान की सबसे बड़ी गुरु होती है, उसे जो शिक्षा माता से घर पर प्राप्त होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है :

''उपाध्यायानदशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।

सहस्त्रे तु पितुमाता गौरवेणा तिरिच्यते ।''[50]

माता की मूर्ति स्नेह एवं शुचिता की साकार प्रतिमा, संवेदना की स्रोतास्विनी, त्याग की तरंगिणी, माता सृष्टि के आरम्भ से ही स्तुत्य रही है। उसके पवित्र स्वरूप को देखकर राष्ट्र की कल्पना भी माता के रूप में की गयी है, इतना ही नहीं जन्नत भी वालिदा के पैरों के नीचे मानी गयी है – 'मेरे कदम में बाल्दा फिरदौसेवरो'।[51]

हमारे ऋषियों ने भी 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरयिसी' का स्वर मुखरित कर नारीत्व के इस चरम प्रकर्ष के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है । वस्तुतः मातृत्व नारी जीवन की पूर्णता ही नहीं, अपितु जन्मजात स्वाभाविक तत्व है। उनके जीवन को चरम सार्थकता उसके मातृत्व में ही है । अतः माता इन सभी गुणों के कारण वन्दनीय होने के साथ ही वात्सल्य,

करुणा, ममता, त्याग सहनशीलता आदि उदात्त भावों की अधिष्ठात्री होने के कारण परम गौरवशालिनी है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विजया है।[52] माता का वात्सल्य, करुणा, ममता और स्नेह का कोप कुपुत्र और सुपुत्र के लिए स्वभाव से ही समान रहता है। एकान्त मनोयोग एवं एकनिष्ठ साधना से पुत्र के जीवन को आदर्शमय बनाने वाली राष्ट्र और सभ्यता की जन्मदात्री नारी का मातृ रूप सदा ही अभिनन्दनीय रहा ।[53]

मातृ भावना मानव जाति में ही नहीं, पशु-पक्षी वर्ग में भी पायी जाती है। मुगल काल में स्त्रियों की दशा चाहे कैसी रही हो, परन्तु माँ के रूप में उसे बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। पुत्रों को उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ता था । यहाँ तक की युद्ध आदि कार्य में जाने से पूर्व माँ का आशीर्वाद लिया जाता था । कभी-कभी तो स्त्री एक माँ के रूप में उनसे कहती थी : जाओ बेटा मेरे दूध की लाज रखना, साथ ही वह अपने पुत्रों को हँसते-हँसते युद्ध के लिए विदा करती थी।

पत्नी के रूप में नारी : माता के पश्चात् नारी का पत्नी रूप आता है। पत्नी गृह का आभूषण होती है। वह परिवार में दया एवं आदर की पात्र मानी गयी है वैदिक काल में गृह प्रबन्ध में पति-पत्नी का समान अधिकार होता था । भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी के अभाव में पुरुष अपूर्ण रहता है। 'पुमानदर्ध पुमास्तावर्द्धाया न विन्दति ।' पत्नी द्वारा उसके अर्धांग की पूर्ति होती है। पत्नी केवल वासना एवं विलास की प्रतीक न होकर सुख दुख की सहभागिनी, धार्मिक कृत्याओं की सहयोगिनी, सचिव के समान सत्परामर्शदात्री, ऊँच-नीच के ज्ञान तथा कर्तव्य भावना को जागरूक करने वाली, अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा सत-असत के विवेक को जगाने वाली सेवाकाल की दासी तथा क्रीड़ा विनोद की सहचरी मानी गयी है।[54]

स्त्री के पत्नी रूप के लिए 'जाया' शब्द भी व्यवहृत होता है। एतरेय ब्राह्मण में जाया की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गयी है–

"तज्जाया जाया भवति यदस्यां पुनः ।"

अर्थात् पुरुष स्वयं उसमें पुत्र रूप से जन्म लेता है। इसीलिए उसे जाया कहा जाता है । पत्नी से पुरुष अपनी ही प्रतिमूर्ति पुत्र रूप में प्राप्त करता है। ण्तरेय ब्राह्मण में जाया को 'आभूतिरेषा भूति' अर्थात् यही शोभा है ; यही ऐश्वर्य है – ऐसे उद्गार प्रकट किए गए हैं ।[55]

ऋग्वेद में 'जाया' शब्द को लेकर बड़े ही मधुर उद्गार व्यक्त किए गए हैं :

"कल्याणी जाया सुरण गृहे ते ।"[56]

अर्थात् तुम्हारे घर में कल्याणी सुषमामयी जाया है–

"जायेदेवं मधवन् सेतुयोनि"[57]

हे इन्द्र ! जाया ही घर है। वही पुरुष का विश्राम स्थल है, प्रकट है । ऋग्वेद युगीन सम्यता में नारी का पत्नी रूप गौरवमय का था । परवर्ती युग की समस्याओं सामाजिक जटिलताओं से उसका गौरव कुछ न्यून अवश्य हो गया किन्तु महाभारत और रामायण तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में पत्नी अक्षय मर्यादापूर्ण एवं गरिमामयी दृष्टिगत होती है। हमारे धर्मग्रन्थों में पत्नी को ही पुरुष के घर की शोभा तथा कल्याण करने वाली बताया गया है। 'उत्तर रामचरितम' में कहा गया है कि पत्नी गृह में लक्ष्मी है, नैनों की अमृत वर्तिका है, उसका स्पर्श चंदन के गाढ़े रस के समान शीतल, स्निग्ध और आनन्ददायक है। पत्नी का यह आदर्श रूप सर्वकालिक है। भारतीय पत्नी विवाह की वेदी पर अपनी निजी आशाओं, अभिलाषाओं की भेंट चढ़ाती है। अपने व्यक्तित्व का विलय वह पति में कर देती है। पति से स्वतंत्र उसकी कोई इच्छा अथवा अनिच्छा नहीं होती है ।[58]

वास्तव में पत्नी ही 'घर' या 'गृह' है। यह दृढ़ भावना आज भी हमारी सामाजिक संचरना की आधारभूमि है। क्योंकि पत्नी ही गृह बनाती है। वह ही पुरुष का सर्वस्व है। पुरुष जब तक स्त्री रत्न को प्राप्त नहीं करता है, तब तक उसके व्यक्तित्व में पूर्णता नहीं आती है । इसलिए कहा गया है स्त्री ही पुरुष का अर्ध भाग होती है।

"अर्धो-अर्धोवाएव आत्मनः यतपत्नी"[59]

इसी आधार पर पत्नी को अर्धांगिनी कहा गया है। अर्थात् स्त्री के बिना पुरुष का व्यक्तित्व ही अधूरा है। पत्नी को पाकर ही उसमें पूर्णता आती है।

"पुरुषो जाया वितवा कृत्स्यरभिऽ वात्मनंमन्यते ।[60]

पुरुष पत्नी के बिना धार्मिक कृत्यों का सम्पादन भी नहीं कर सकता है, क्योंकि इसके अभाव में वह पूर्णता को प्राप्त नहीं होता, पाणिनी सूत्र के अनुसार 'पत्नी' शब्द का मौलिक अर्थ है जो पति यज्ञों का 'सम्पादन करे ।'

"यत्युर्ना यज्ञ संयोगे'[61]

इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव जीवन में पुरुष के लिए स्त्री का महत्व बहुत है । हमारी भारतीय संस्कृति में पत्नी अलौकिक शक्ति से युक्त होती है, वह पति के जीवन में सुख सम्पदा एवं ऐश्वर्य लाने वाली होती है। अतः पत्नी मानव जीवन का अनिवार्य अंग है। वह पुरुष के जीवन की पूरक है। वह उसके घर की संचालिका अपनी मधुर वाणी से उसके दुख दूर करने वाली सत परामर्श देने वाली उसके जीवन को सुचारु रूप से चलाने वाली एक अच्छी सहयोगिनी के रूप में होती है । मानव जीवन में सुन्दर सुशील व कर्तव्य परायण पत्नी पति के लिए उपहार स्वरूप होती है। उसका सहयोग स्वर्ग के समान सुख देने वाला होता है।

पत्नी अपने इन्हीं सब गुणों के कारण सहयोगिनी, सुगृहिणी, धर्म पत्नी, सहचरी आदि संज्ञाओं से अभिहित होती है। पत्नी का यह रूप गृह अथवा कुटुम्ब के मध्य विकसित होता है। वास्तव में भारतीय पत्नी का एकान्त स्थिर, वासनाहीन त्यागमय कर्तव्यतत्पर, तपस्विनी और धर्मनिष्ठ सहचरी, अर्धांगिनी, प्रेम प्रेरिका तथा सतपथ प्रदर्शिका और गृहणी रूप सभी को आर्षिकत करता रहा है। पत्नी में प्रेम, त्याग, करुणा कर्तव्य तथा आत्म समर्पण की की भावनाएँ होती हैं । पति-पत्नी का सम्बन्ध परस्पर मधुर एवं सुन्दर होता है । भावात्मक

दृष्टि से भी वह पति की पूजा एवं अर्चना करती है। आदर से उसका मस्तक व नेत्र पति के चरणों में ही झुके रहते हैं । पति ही उसके लिए देवता तुल्य है। स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन में पत्नी का अत्यधिक महत्व है ।

पुत्री के रूप में नारी : परिवार में कन्या या पुत्री अपना एक विशेष महत्व रखती है । परिवार में वह प्रेम, स्नेह, ममता, वात्सल्य की पात्र होती है। माता-पिता के लिए नेत्रों की पुतली के समान दुलारी होती है। भास्काचार्य ने कन्या शब्द की व्युत्पत्ति 'कमु' धातु से सिद्ध करने का प्रयास किया है, जिसका अर्थ होता है – जिसको सब चाहे इनके, अनुसार 'दुहित' शब्द की व्युत्पत्ति 'दुहित', 'दुहिता', दुरोहिता ।[62] दुर्गाचार्य इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि वह जहाँ कहीं भी दी जाती है, वहाँ उसका स्वागत नहीं होता, अपितु उसे दुत्कारा जाता है, इसलिए उसे 'दुहिता' कहा जाता है –

"सा हि यत्रैव दयिते तत्रैव दुर्हिता भवति ।"

दूसरी ओर दूरे हिता दुहिता अर्थात् पुत्री के दूर होने पर ही पिता को चैन मिलता है। यास्क ने दुहिता शब्द को दूसरी व्युत्पत्ति दुह धातु से बतायी है – दोग्धर्वा । इसकी व्याख्या उन्होंने इस प्रकार दी है –

"साहि नित्यमेव पितुः सकाशात् द्रव्यं दोग्धि, प्रार्थनापरत्वात"

अर्थात् वह पिता को प्रसन्न कर सदा उससे कुछ न कुछ दान को दुहती (प्राप्त करती) रहती है इसलिए दुहिता है। इस व्युत्पत्ति की एक व्याख्या यह भी है कि प्राचीन युग में कन्या पिता के घर गाय दुहा करती थी, फलतः उसका नाम दुहिता पड़ा ।[63]

भास्काचार्य के अनुसार – गुरुजन पुत्रों के प्रति उदार तथा कन्या के प्रति अनुदार होते हैं, यह उचित ही जान पड़ता है। क्योंकि आज के समाज में भी समता का भाव होते हुए भी परिवार में कन्या की अपेक्षा पुत्रों को अधिक आदर सम्मान दिखाया जाता है । 'ऐतरेय ब्राह्मण' में एक स्थान पर क्रिपणम ही दुहिता, ज्योति हि पुनः कहा गया है। पुत्र ज्योति स्वरूप

है और पुत्री दुख की खान है । यों मानव समाज में पुत्री को स्नेह और सम्मान भी दिया जाता रहा है। अलकजेंडर स्मिथ के शब्दों में - जब मैं तुझे देखता हूँ तो ऐसा मालूम होता है जैसे परमात्मा के सामने खड़ा हूँ, तू उसकी अंतिम कारीगरी है। तू वर्तमान की देववाणी है । तू चाँदी की सीता है, तू पृथ्वी का प्रकाश है । तू हृदय की शान्ति है।[64]

वात्सल्य के आँचल में पुत्री के लिए इतना अमिट स्नेह होने पर भी सामाजिक विषमता के कारण उसका जन्म प्रसन्नता की प्रभाती बनकर नहीं आता, किन्तु कुछ सहृदयों ने पुत्री के जन्म पर प्रसन्नता भी व्यक्त की है। वे उसे पुत्र से भी अधिक कोमल भावनाओं को जगाने वाली मानते हैं । उन्होंने देवी स्वरूप, कोमलता की प्रतिमूर्ति नवजात कन्या को लक्ष्मी एवं सरस्वती की प्रतिनिधि भी कहा है ।

1. तू तो लक्ष्मी की, सरस्वती की प्रतिनिधि है ।[65]
2. नारी दुहिता, निश्छल, पावन ज्यों कलकल कर सरिता सी चंचल, मुखरित करती जग का आँचल ।[66]

ऋग्वेद में पिता जहाँ अपने पुत्रों के साथ यज्ञ आदि अनुष्ठान करके अपने जीवन में सुख का अनुभव करने की कामना करता है वहाँ वह पुत्री की भी उपेक्षा नहीं करता और उसे स्वर्णवत मानकर उसके साथ अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहता है ।

'पुत्रिणा ताकुमारिणा विश्वमापुर्व्यरनुतः उमाहिरण्य पेशसा ।'[67]

पतंजलि ने पुत्र और दुहिता की समानता दिखाते हुए लिखा है -

'यदि पुनीर्ति, प्रीणातीर्तात वा पुत्र दुहितार्य त्येदत् भवति ।'[68]

यदि पुत्र पवित्र कर्ता है या आह्लादित है, तो दुहिता भी कुल को पवित्र करती है, आहलादित करती है। मनुस्मृति में पुत्र व पुत्री को समान महत्व दिया गया है :

'यथावात्मा पुत्रः पुर्त्रेण दहिणा समा।'[69]

माता-पिता कन्या को विधाता का वरदान समझते हैं। परिवार में कन्या, स्नेह, प्रेम, ममत्व एवं वात्सल्य की अधिकारिणी होती है, उसका लालन-पालन माता-पिता के स्नेहपूर्ण करों द्वारा होता है । पुत्री का विवाह करना माता-पिता का कर्तव्य होता है, किन्तु समाज में व्याप्त कुरीतियों विशेषकर दहेज प्रथा के कारण पुत्री के विवाह में माता-पिता को अनेक कठिनाइयों का समना करना पड़ता है या पुत्री दुराचारणी हो जाती है तो वह अपने पिता के कुल की मर्यादा को समाप्त कर देती है। इन्हीं कुछ कारणों से पुत्री को अनादर की पात्र समझा जाने लगा है अन्यथा परिवार में पुत्र के समान ही ममत्व एवं वात्सल्य की पात्र होती है।

बहन के रूप में नारी : सहस्रो सरिता की सहप्रवाहिनी, स्नेहचंचला बहन का जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, अपने भाइयों के प्रति स्नेह हिलारे मारता रहता है। वात्सल्य के प्रांगण की अनेक अश्वहरासमयी क्रीड़ाओं की मृदुल संगिनी बहन का सामीप्य अल्पकालिक होते हुए भी संवेदना के सूत्रों से सदा के लिए गुथ जाता है। भाई एवं बहन का सम्बन्ध गंगाजल सा पुनीत, चाँदनी सा शीतल एवं शिशु के अबोध हृदय सा निश्छल है। जिसमें स्वार्थों का हाहाकार नहीं कर्त्तव्य की पुकार रहती है। बहन छोटी होती है तो भाई का अमिट स्नेह पाती है और यदि बड़ी होती है तो वह स्नेह के साथ आदर भी पाती है। कैसी भी कठिन परिस्थिति हो बहन-भाई को अपने निश्छल प्रेम से साहस एवं शौर्य के कार्य करने के लिए प्रेरित करती रहती है और उससे बढ़कर यह की उसमें क्षमा, त्याग, दया और शान्ति का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता है । यही कारण है कि वेद की वाणी में उसे परिवार रूपी 'वृक्ष का व्यास' अथवा 'ध्रुव बिन्दु' कहा गया है :

> ''धुवाद्योध्रुवा पृथ्वी ध्रुवं विश्वमिदं जगई
>
> ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पति कुलेइयम।''[70]

समाज में मात्र बहन का सम्बन्ध अत्यन्त व्यापक एवं उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित

रहा है । हमारे समाज में तो 'बहन' सम्बोधन इतना प्रचलित है कि मानो नारी के साथ पुरुष के सहज सम्बन्ध का प्रतीक यही शब्द हो।

प्रयेसी के रूप में नारी : पुरुष व नारी के चरम विकसित रूप मातृत्व के चरणों में तो श्रद्धा सुमन चढ़ाए ही हैं । किन्तु उसके हृदय की सहज पिपासा नारी के प्रयेसी रूप से ही शान्त होती है। संसार में प्रेम जीवन की अनुपम निधि है, प्रत्येक प्राणी के हृदय में प्रेम का भाव विद्यमान रहता है। डॉ. माखनलाल शर्मा के विचारानुसार – "संसार में सत्य को एक ही शब्द से व्यक्त करना हो तो उसे 'प्रेम' कहते हैं। प्रेम मानव हृदय का एक पवित्रतम एवं सुन्दरतम भाव है। इसी तत्व को प्राचीन भारतीय समाज में 'काम' शब्द से व्यक्त किया गया है –

"कामस्तदये समवर्तताधि मनसोरेतः प्रथमं याक्सीत।"[71]

अनेक साहित्य सृष्टाओं ने भी 'काम' तथा 'प्रेम' को एक ही माना है –

"रथांगनामेक्ति भाव बन्धने, बमूणयन प्रेम परम्परा श्रयम।"[72]

परस्पराश्रृत, उच्चादर्शयि, 'प्रेम' निष्पत्ति काल में काम में परिणत हो जाता है। उस उभय पक्षीय भाव बन्धु 'प्रेम' का चरितार्थीकरण सम्भोग में होता है । अतः 'प्रेम' कामवृक्ष का फल है–

"कुर्यात्वलान्तं मनसिजत रोमां रसज्ञफलस्य।"[73]

नारी सामान्यतः प्रेम की अधिष्ठात्री मानी जाती है। उसमें प्रेम की मात्रा, तन्मयता, कोमलता पुरुष के अपेक्षा अधिक होती है। साहित्य में भी नारी का यही रूप साहित्यकारों की सुन्दर कल्पना का आधार रहा है। नारी के प्रति प्रेम मात्र की व्याख्या करते हुए डॉ. शैल कुमारी कहती हैं – "इसका मूल है अभाव की भावना में अभाव उस द्वितीय का जो निजगत आवश्यकताओं की पूर्ति हो, जो मानसिक और शरीरिक सुख की प्राप्ति में सहायक हो, शरीर विज्ञान के शब्दों में तथा मनोविज्ञान के दृष्टि से जो भिन्नालिंगी हो, वास्तव में यह भावना सृष्टि का विजत्व है।[74]

इस प्रकार नारी अपने प्रेयसी रूप में पुरुष के अभावग्रस्त जीवन में आशा व सुख की किरण प्रदान करने वाली, उसके सुन्दर स्वप्नों की प्रतिमा, उसके जीवन की प्रेरक होती है।

पुरुष जीवन में पत्नी का महत्व भी कम नहीं है, किन्तु प्रयेसी पुरुष के जीवन में अपना अलग ही महत्त्व रखती है। यद्यपि पत्नी और प्रेयसी दोनों की भावनाओं का मूल 'रति' है, परन्तु फिर भी दोनों की प्रेम में कल्पना की उन्मुक्त उड़ान तथा हृदय की भावनाओं की स्वच्छन्द गति रहती है, और एक प्रकार से यह अतृप्त वासना की अभिव्यक्ति होती है। विवाह बन्धन के अभाव में प्रेयसी में उमंग एवं उत्साह का आधिक्य होता है, क्योंकि मिलन के अल्पक्षण उसे स्वप्न वत जान पड़ते हैं । यथार्थ जीवन की उलझनों से मुक्त रहने के कारण प्रेयसी में भावकुलता अधिक रहती है जबकि पत्नी का जीवन संस्कार बद्ध होता है । उसके जीवन में कर्तव्य का महत्व सर्वोपरि होता है । पत्नी के प्रेम में असंतोष की आग नहीं, संतोष की शीतलता रहती है, प्रायः समाज में ऐसा भी दृष्टिगत होता है कि एक ही नारी प्रेयसी और बाद में पत्नी का स्थान लेकर मानव जीवन को अपनी प्रेम उर्मियों से भर देती है, प्रेम नारी के भावुक हृदय की साधना और जीवन की सार्थकता है। अनुराग के क्षण उपस्थित होते ही नारी प्रेम बंधन में पड़ जाती है। और उसका भावुक हृदय प्रेम के रंग में सराबोर होकर उसे प्रेमिका के रूप में परिणत कर देता है। प्रेम जन्य परिस्थितयाँ अंकुर होने पर उसके जीवन की धारा परिवर्तित हो जाती है । प्रतिकूल परिस्थितियों में नारी सामान्यतः प्रेमिका ही रहती है। इसके अतिरिक्त एक ही नारी एक ही समय में पत्नी और प्रेयसी दोनों रूपों में भी हो सकती है। भावात्मक दृष्टि से ही मानव जीवन का व्यक्तिगत पारस्परिक मधुर प्रेम सम्बन्ध होता है यह भाव नारी एवं पुरुष दोनों से ही अपना पृथक् सम्बन्ध रखता है। नारी अपने प्रेयसी रूप में पारिवारिक सीमाओं में न बँधकर अपनी स्वतंत्र सत्ता रखती है जबकि पत्नी रूप में वह पारिवारिक मर्यादाओं में आबद्ध रहकर अपने पति से प्रेम करती है। पत्नी रूप मे उसके अपने

कर्तव्यों के साथ कुछ अधिकार भी होते हैं ।

साहित्य में प्रेयसी का चित्रण व्यापक रूप में मिलता है। काव्य जगत में प्रेयसी अपने प्रिय के स्वप्नों की प्रतिमा करुणा और सुख की साकार मूर्ति जीवन में ज्योति बनकर आती है । उसके प्रेम के प्रथम अनुभव में स्वभाव जन्य लज्जा होती है। आत्म समर्पण पूर्ण होता है और तन्मयता पूर्ण ।[75] प्रेयसी अपने प्रेम के लिए अक्षय प्रेम के सागर को लेकर उपस्थित होती है। वह स्नेह की सरिता के तट पर अपार रस अपने वक्ष में लेकर चलती है। नारी का यह प्रेयसी रूप स्वयं में पवित्रता, आत्मीयता, निःस्वार्थता तथा नारी सुलभ सौम्यता से मुक्त होता है।

प्रणय मानव हृदय की शाश्वत धरोहर है। प्रत्येक नारी के जीवन में एक ऐसा अवसर आता है जब वह अपने हृदय की प्रणय राशि को किसी के चरणों में अर्पित करने के लिए व्याकुल हो उठती है। वह प्रियतम को निश्छल हृदय समर्पित कर देती है और उसके द्वारा दी गयी । वेदना को प्रेम की थाती समझकर हृदय से लगाए रहती है । प्रियतम का सामीप्य उसकी एकमात्र कामना है और वियोग उसका सर्वस्व धन, यही प्रेयसी का आदर्श है ।[76]

सखी के रूप में नारी : समाज में माता, पुत्री, बहन, प्रेयसी आदि रूपों के समान नारी के सखी, रूप का भी विशेष महत्व है। सखी रूप 'सख्य' या मैत्री लिए हुए होता है, जिसमें समानता का भाव निहित रहता है । संसार के प्रत्येक प्राणी में चाहे वह मानव हो अथवा पशु-पक्षी, मैत्री अथवा सख्य भाव पाया जाता है। वह अपने सुख दुख के अनुभवों को किसी से कहना सुनना अथवा व्यक्त करना चाहता है । भर्तृहरि ने नीतिशतक में अच्छे मित्र के लक्षणों का उल्लेख इस प्रकार किया है –

"पापान निवारयति, योजते, हिताय,
गुहयं च गूहति गुणान प्रकटी करोति,
आपद-गतं च न जहाति, ददाति काले,

सन्मित्र लक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ।"[77]

अर्थात् पापों को दूर करता है, कल्याण के कार्यों में लगाता है, छिपाने योग्य बातों को छिपाता है, गुणों को प्रकट करता है, आपत्ति काल में विमुख होकर साथ नहीं छोड़ता । समय पड़ने पर सहायता करता है, सच्चे मित्र के यही लक्षण होते हैं । मानव अपने जीवन में सच्चा सखा पाकर धन्य हो जाता है । अच्छे मित्र के सम्बल से वह अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर ले जाता है । सखी परस्पर रूप, गुण व स्वभाव में समान होती है। उनमें निःस्वार्थ मित्रता एवं निर्मल प्रेम होता है । सखी से बढ़कर प्रिय एवं अन्तरंग नारी के लिए अन्न और कोई नहीं है। एक नारी अपनी दूसरी सखी नारी के प्रति निष्कपटता का भाव रखते हुए उसके हित का ध्यान रखती है और उसके सुख-दुख में सहायिका होती है।

नारी का सखी रूप साहित्य में तथा लोक व्यवहार में विशिष्ट महत्वपूर्ण रहा है। एक सखी दूसरी सखी के प्रति अनन्य स्नेह रखती है। उसके मनोभावों को स्पष्टतया समझती है और उसके गूढ़ से गूढ़ रहस्य को छिपा जाती है । वह उसकी शुभचिंतिका पग-पग पर परामर्शदात्री तथा त्याग तपस्या की प्रतिमूर्ति होती है। उसके हृदय में अपनी सखी के प्रति सहजता सरलता तथा निष्कामता की प्रवृत्ति विद्यमान रहती है। दुख के कठिन समय में वह अपनी सखी को समझाती तथा धैर्य धारण कराती है। विवाह जैसे शुभ अवसरों पर वह मंगल गीत गाती तथा हास-परिहास करती हुई दिखलायी देती है। साहित्य में नायक तथा नायिका का मिलन अभिसार कराने में भी सखी चतुर व निपुण होती है। वह अपनी नायिका सखी के साज-श्रृंगार का पूर्ण ध्यान रखती है और अपनी सखी का समाचार भी नायक तक पहुँचाने का कार्य करती है। अतएव नारी जीवन में उत्तम सखी ईश्वर का वरदान रूप होती है।

दासी के रूप में नारी : नारी के अन्य रूपों के समान ही संसार में दासी का भी अत्यधिक महत्व है। वह अपने स्वामी तथा स्वामिनी की शुभचिंतक होती है। उसमें सेवाभाव कर्तव्यपरायणता अहंकार शून्यता तथा त्याग की भावना होती है । वह सदैव ही प्राण प्रण से

103964
Date........

स्वामी स्वामिनी की सेवा करती है और उनके मंगल की कामना करती है। यदि उसके स्वामी तथा स्वामिनी प्रताड़ना भी देते हैं तो वह सहर्ष उसको सह लेती है। परिवार में दासी सभी कार्यों को करती है, वह गृह के सभी सदस्यों तथा विशेष रूप से अपनी स्वामिनी के कार्यों में हाथ बटाती है। घर की सफाई, कपड़े आदि की सफाई तथा गृह के अन्य अनेक कार्य उसकी दिनचर्या के अन्तर्गत आते हैं ।

हिन्दी साहित्य में नारी के दासी रूप का पर्याप्त उल्लेख मिलता है । परिवार में प्रसन्नता के अवसरों पर उसके विशेष आभूषण वस्त्र आदि प्रसन्नता के साथ प्रदान किए जाते हैं । समाज एवं परिवार में दासियों के समान ही पारिचारिकाओं का भी सहयोग परिलक्षित होता है। यह भी दासी का ही प्रतिरूप है और परिवार के अनेक कार्यों में सहयोग देता है। जैसे नाइन, धोबिन, मालिन, दर्जिन, तम्बोलिन आदि । विवाह, ज्योनार आदि विशेष अवसरों पर अपना ये नेग माँगती हुई दिखायी पड़ती हैं । कभी दासी अथवा परिचारिका धृष्टतापूर्ण कार्य भी करती है । जैसे – परिवार के किसी रहस्य का समाज में उद्घाटन । ऐसा करके वह अपने स्वामी तथा स्वामिनी के अहित का कारण बनकर उसके विश्वास को ठेस पहुँचाती है ।

प्राचीन काल में बड़े-बड़े राज्यों में दासियों राजनीति में निपुण होती थीं। आवश्यकता पड़ने पर राजा तथा रानी को उचित परामर्श दिया करती थीं और राजनीति के दाँव-पेंच समझाया करती थीं । अनेक बार दासी निःस्वार्थ भाव से अपने जीवन की बली देकर अपने स्वामी तथा स्वामिनी, देश एवं राज्य की रक्षा करती दृष्टिगत होती है। अतः समाज में दासी की भूमिका भी अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

इस प्रकार भारतीय परिवार में पुत्री के रूप में नारी का स्थान इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना माता और पत्नी के रूप में विवाह के उपरान्त पुत्री का पितृकुल से सम्बन्ध टूट जाता है। प्राचीन भारत में तो पुत्री के बारे में यही मान्यता थी कि एक बार जब उसकी डोली

जिसके घर जाती है, तो वहीं से उसकी अर्थी उठती है।

प्राचीन काल से हमोरे भारतीय समाज में नारी के पत्नी रूप को सर्वाधिक प्रतिष्ठित किया गया है । स्त्री को पति की अर्धांगिनी माना गया है । सहचारिणी माना गया है। स्त्री के बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण है। स्त्री पुरुष शब्द और अर्थ की भाँति अभिन्न हैं । नारी का यही रूप परिवार संध्या का मूलाधार है। पुराणों में सावित्री, गांधारी, सीता, अनुसूईया आदि सती नारियों के उदाहरण मिलते हैं । प्राचीन पत्नी रूप अन्धी निष्ठा की माँग करता हुआ दिखायी पड़ता है। समसामयिक नारी मुक्ति आन्दोलनों, नारी की उच्च शिक्षा आत्मनिर्भरता नारी के इस रूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। अब न तो पति उसका स्वामी है न वह पति की दासी । अब पति-पत्नी दोनों समान स्तर पर आ गए हैं, आज पत्नी पति के सही सन्दर्भ में पार्टनर है ।

स्त्री-पुरुष का एक दूसरे के प्रति आकषर्ण प्राकृतिक सत्य है । इसी आकर्षण पर सृष्टि का विकास अवलम्बित है। आदिकाल से ही नर-नारी के सम्बन्धों में प्रेम-तत्व को अनिवार्य माना गया है। प्राचीन काल से नारी के प्रेमिका रूप को आदर्श रूप में देखा गया है। भारतीय समाज की मान्यता यही रही कि नारी जीवन में एक बार जिससे प्रेम करती है, जिन्दगी भर उसी की होकर रह जाती है। अपने प्रेमी के मिलन पर उसका जीवन सार्थक माना जाता है। आधुनिक युग में इसी प्रेमिका रूप में परिवर्तन नजर आता है।

नारी के विविध रूपों में सबसे महत्वपूर्ण और गौरवशाली नारी का माता रूप ही है। नारी का जीवन 'मातृत्व' पद को प्राप्त करके ही कृतार्थ होता है । माँ, त्याग, धैर्य और वात्सल्य का दूसरा नाम है। नारी के इस रूप के बारे में महादेवी वर्मा की मान्यता है – "स्त्री के विकास की चरम सीमा उसके मातृत्व में ही हो सकती है ।" आधुनिक युग में नारी समाज में आए समूचे परिवर्तन के कारण नारी के इस रूप की वैचारिकता में बदलाव आया है, तथापि मातृत्व - मातृत्व ही है । माता के स्नेह का झरना किसी भी हालत में सूख नहीं

जाता, वह सदैव अपने प्रेम के अमृत से संतानों को तृप्ति देती रहती है ।

नारी के बारे में ऐसा कहा जाता रहा है कि एक नारी अपने मन की किताब जितनी सहजता से अपनी सहेली के सामने खोलती है, उतनी किसी और के सामने नहीं । बचपन से ही एक साथ पली-बढ़ी सहेलियाँ एक दूसरे का प्राण होती है। भारतीय साहित्य में इस सख्य-भाव का चित्रण अनन्त काल से किया जाता है । आधुनिक युग में नारी के इस रूप में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आ पाया है । पर कई बार बदलते समय के साथ-साथ सखी रूप भी बदलता जाता है। आज की नारी जहाँ एक सच्ची, सहेली, माता, पुत्री, पत्नी, प्रेमिका, युवती रूप में चित्रित हुई है, वहीं एक विद्यार्थिनी के रूप में भी। आधुनिक युगीन विद्यार्थिनी रूप में नारी बड़ी से बड़ी डिगरियाँ लेकर बड़े से बड़े पदों को सुशोभित कर रही हैं। बड़ी से बड़ी परीक्षाओं को पास करके अपने विद्यार्थी जीवन को साकार बना रहीं हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नारी के विविध रूपों में सम्बन्धों के दर्शन होते हैं, जिसके मध्य नारी पूर्णतः उन सम्बन्धों को निर्वाहित करने में लगी हुई है। किन्तु आधुनिक परिदृश्य में सारे सम्बन्धों के बीच कहीं संकुचन हुआ है तो कहीं विस्तृणता । अधिकारतः वह जागृत हुई है तो वहाँ अपने रूप में अधिकार के माँग के तहत सारे बन्धनों को तोड़कर नयी रूप में प्रतिष्ठापित हुई है।

2. क. IV नारी का महत्त्व :

नारी का अति प्राचीनकाल से भारतीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नारी. मानव सृष्टि की अनुपम देन है। यह सदैव मानव जीवन के लिए पहेली रही है। नर-नारी एक दूसरे के पूरक होते हुए भी नारी-नर के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु रही है । नारी सामाजिक व्यवस्था, राजनीति क्षेत्र, धार्मिक अवस्था काव्य एवं जीवन के अनेकानेक क्षेत्रों में अपने विशिष्ट स्वरूप में महत्वपूर्ण रही है। वैदिक काल में नारी की महत्ता का प्रतिपादन ऋग्वेद में हुआ है :

"स्त्री हि ब्रह्मा वभूविथ"[78]

अर्थात् स्त्री ब्रह्म स्वरूप है, परम ब्रह्म सृष्टि का सृष्टा है, तो पुरुष लोक की सृष्टि नारी के द्वारा होती है। 'शतपथ ब्राह्मण' में भी नारी को अर्धांगिनी और सहधर्मिणी के रूप में पुरुष की जीवन-संगिनी की महत्ता दी गयी है।

"अधर्होहवा एषआत्मनो सज्जाया ।"[79]

इसी तरह 'तैतरीयोपनिषद' में वर्णित नारी का रूप उसकी महत्ता को प्रतिपादित करता है–

"अयज्ञों वा हरेष योऽपत्निकः ।"[80]

नारी के प्राचीन महत्व का दर्शन ऋग्वेद की तमाम ऋचाओं में होता है। जहाँ सम्बन्धों के निर्वाह के रूप में नारी सेवा भाव की प्रतिमूर्ति है, बड़े और छोटे के प्रति श्रद्धा और स्नेह दिखलाकर सम्बन्धों के बीच मधुरता की धारा प्रवाहित करती है । सास, ससुर, ननद, देवर आदि का ख्याल रखने वाली इस नारी को 'साम्राज्ञी' की उपाधि दी गयी है :

"साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी स्वशम भव,

ननान्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु ।"[81]

नारी के अधिकारों की महत्ता का ऋग्वेद में वर्णन अत्यन्त ही सजीव और यथार्थ रूप में हुआ है। जहाँ वह जिस घर में जाती है वहाँ उस घर की गृहस्वामिनी बनकर रहती है। गृहस्वामिनी का अधिकार स्वरूप ऋग्वेद में विस्तृत फलक पर लिया गया है :

"गृहान गच्छ गृहपत्नी यथासः ।"[82]

मानव जीवन में नर-नारी का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष यानि किसी भी रूप में नर नारी के बिना, नारी नर के बिना अपूर्ण है इस सम्बन्ध में महात्मा गाँधी का कथन दृष्टव्य है – "सैद्धान्तिक रूप से नर-नारी दोनों एक हैं। दोनों में जीवन की समान समस्याएँ होती हैं। अतः समाज के दोनों ही दो शरीर एक प्राण के रूप में आवश्यक *अंग हैं । इस प्रकार दोनों ही परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप से एक-दूसरे में अपने जीवन की पूर्ति*

पाते हैं । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नर और नारी दोनों का अपना-अपना अलग महत्व है। दोनों ही जीवन के हर क्षेत्र, उद्देश्य एवं कार्य की अपेक्षा करते हैं। डॉ. शैल कुमारी के अनुसार – 'विधता' को इस नर-नारी पुरुष में जहाँ पुरुष-नारी में तथा नारी पुरुष में पूर्ति पाती है। प्रत्यक्ष जीवन के साथ ही किसी न किसी रूप में काल्पनिक जीवन में भी द्वितीय की प्रतिष्ठा अनिवार्य है ।[83]

नारी ने हमारी वैदिक सभ्यता, संस्कृति तथा साहित्य के निर्माण में महत्वपूर्ण योग दिया है। नारी ही आदिम संस्कृति का उद्‌गम स्थल, नारी ही सृष्टि की उत्पादिका, प्रतिपालिका और गार्हस्थ सुख का स्रोत है। वास्तव में नारी प्रेरणा शक्ति की प्रतीक है और पुरुष संघर्ष शक्ति का प्रेरणा एवं संघर्ष दोनों का संगम ही वास्तव में पूर्ण जीवन है। महादेवी वर्मा के शब्दों में – "पुरुष का जीवन संघर्ष से आरम्भ होता है और स्त्री का आत्म समपर्ण से जीवन के कठोर संघर्ष में जो पुरुष विजयी प्रमाणित हुआ, उसे स्त्री ने कोमल हाथों से जन्म देकर स्निग्ध चितवन से अभिनंदित करके और स्नेह प्रवण आत्मनिवेदन से अपने निकट पराजित बना डाला ।[84] मानव जाति केसामाजिक विकास एवं सभ्यता का मूल स्रोत नारी है । समस्त विश्व की उद्‌भावनी शक्ति का प्रतीक नारी है।[85]

सृष्टि के आदिकाल से 'कहा न तिरिया कर सके' और 'का न करे अबला प्रबल' के अनुसार नारी का महत्व अखण्ड रहा है। नर वपन कर सकता है सर्जन नहीं, नारी के बिना पुरुष पंगु है। नारी ही विश्व की शक्ति है और पुरुष का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसके गर्भ में प्रतिष्ठित है ।"[86]

नारी में मातृत्व की प्रधानता रही है । मातृ भावना से पूर्ण देवी गुणों को देखकर ही पुराणों में अनेक स्थानों पर माता की महिमा का यशोगाद किया गया है। जीवन के अरुणोदय में नारी ही जननी के रूप में सात्विक, राजसिक तामसिक, संस्कारों का जो बीज बालक के अन्तरमन में वपन करती है वही बीज पल्लवित और पुष्पित होकर जगत् जीवन का

कारण बनता है।"[87]

भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू समाज में स्त्रियों के जीवन में पतिव्रत धर्म का विशेष महत्व माना गया है । नारी इसी धर्म का अवलम्ब लेकर अपना सम्पूर्ण जीवन पवित्र और सुखमय बना सकती है। पुरुष और नारी दोनों के जीवन में परस्पर सहकारिता, सहयोग सौहार्द्र तथा एकात्मकता का होना अनिवार्य है। धर्म शास्त्र मनु ने स्त्री की महत्ता स्वीकार करते हुए कहा है कि – जिस कुल में स्त्री पति से पति-पत्नी से संतुष्ट रहते हैं उस कुल का महा कल्याण होता है –

"सन्तुष्टो भार्षया भर्ता-भर्ता भार्या तथैवच ।

यस्मिन्वेव कुले नित्यम कल्याणमंत्र वैधुवम् ।"[88]

अतः नर नारी दोनों में एकात्म भाव होना आवश्यक है। मनुस्मृति में नारी के महत्व को स्वीकार करते हुए उसे सम्मानित स्थान देने पर बल दिया गया है – जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते है और जहाँ उनका सम्मान नहीं होता, वहाँ के सभी कार्य निष्फल हो जाते हैं –

"यत्र नारयस्तु पुज्यते रमन्ते तत्र देवता

यत्रे तास्तुनपुज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः प्रिया ।"[89]

संसार में नर और नारी दोनों का ही एक दूसरे के जीवन से गहन महत्व है, क्योंकि स्त्री और पुरुष के जीवन की समस्याएँ भी अभिन्न हैं । संसार के कार्य क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने तथा सामाजिक जीवन व्यतीत करने के लिए भी दोनों एक दूसरे के लिए अनिवार्य हैं । लाला लाजपतराय ने नारी के विषय में कहा है – स्त्रियों का प्रश्न पुरुषों का प्रश्न है क्योंकि दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है, चाहे भूतकाल हो चाहे भविष्य, पुरुषों की उन्नति बहुत कुछ स्त्रियों की उन्नति पर निर्भर है । पुरुष एक सामाजिक प्राणी है। समाज का आवश्यक अंग परिवार है और परिवार का केन्द्र बिन्दु नारी है ।"[90]

महात्मा एण्डूज ने स्त्री और पुरूष के अटूट सम्बन्ध को देखकर उसकी महत्ता पर अपने विचार प्रकट किए हैं । भारतवर्ष की महानता का सच्चा रहस्य तो हमें कुटुम्ब के अन्दर ही मिलता है। जहाँ कि हम आध्यात्मिक भाव का सबसे ज्यादा प्रभाव पाते हैं । उनका जीवन आदर्श कैसा ऊँचा है, उसमें पद-पद पर धर्म का साक्षात्कार होता है । एक ओर पुरुष मातृ भक्त के रूप में स्त्री की पूजा करता है, दूसरी ओर स्त्री का आदर्श वह पतिव्रत धर्म है जो दोनों भारतीय स्त्री-पुरुषों को एक कोमलतम अदृष्ट स्नेह सूत्र में बाँध देते हैं ।[91]

महात्मा गाँधी ने नारी का कार्य क्षेत्र घर ही बताया है और उसे सर्वप्रथम गृह संचालिका पुरुष द्वारा अर्जित धन की व्यवस्थापिका तथा विभाजिका बताया और कहा कि सुरक्षापूर्ण पारिवारिक जीवन की व्यवस्था उसी के हाथों में है और जातियाँ और वंश की देख-रेख में विकसित होते हैं ।[92]

'ऐतरेय ब्राह्मण' में स्त्री को पुरुष की 'जाया' बताया गया है, पुरुष अपनी पत्नी से पुनः उत्पन्न होता है । (पुनः जायते) । अतः उसकी दूसरी माता है।[93]

महादेवी वर्मा के शब्दों में 'पुरुष समाज' का न्याय है। स्त्री, दया, पुरुष प्रतिशोधमय क्रोध है, स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क कर्तव्य है, स्त्री सरस सहानुभूति और पुरुष बल है, स्त्री हृदय की प्रेरणा।[94]

पुरुष यदि कठोरता का प्रतीक है तो नारी कोमलता सरलता की साक्षात मूर्ति है। पुरुष यदि अपनी शक्ति, पौरुष व अहम् से किसी पर विजय प्राप्त करता है तो नारी अपने त्याग, क्षमा, दया, ममता, सत्य, सहानुभूति और सरल स्वभाव से दूसरे के हृदय पर विजय पा लेती है।

2. ख. नारी-विमर्श :

2. ख I नारी-विमर्श का अर्थ एवं परिभाषा :

विमर्श का अर्थ परीक्षण, समीक्षा, विचार विवेचन, तर्क ज्ञान, विचारणा, आलोचना

आदि है। मुख्य रूप से विचारणा के भावान्तरगत विमर्श को अमरकोश में – 'विमर्शी भावनाचैव वासना च निगद्येत ।''[95]

अर्थात् चर्चा, संख्या, विचारणा, प्रमाणों के द्वारा किसी विषय के 'विचार' करने के नाम विमर्श कहलाते हैं । इस प्रकार विशर्म भावना, वासना, बीती हुई बात आदि के संस्कार के रूप में माने जाते हैं । भाव और इच्छा आदि से सम्बन्धित तर्क के द्वारा विचारित जो प्रमाणों की खरी कसौटी पर कसे हों उसे विमर्श कहते हैं । भाव आदि चर्चा के साथ किसी विषय पर प्रमाणों के साथ किया गया तर्क सिद्ध विचार विमर्श कहलाता है। सम्पूर्णतः भावपूर्ण विचारों से इच्छित बीती हुई बात आदि के संस्कार विमर्श कहलाते हैं ।

नारी-विमर्श नारी और विमर्श अर्थात् नारी से सम्बन्धित या नारी विषयक विमर्श। यहाँ पर नारी के ठीक बाद विमर्श आने पर अगर 'वि' से पर 'मर्श' को देखें तो मर्श = विचार-विमर्श, कहीं-कहीं 'मर्ष' = सहनशीलता, धैर्य, क्षमा आदि अर्थ प्राप्त होते हैं । अगर 'मर्ष' के अर्थ धैर्य और सहनशीलता, क्षमा आदि को 'वि' उपसर्ग पूर्वक रखते हैं तो विमर्श का अर्थ होता है, धैर्य पूर्वक विचार, सहनशीलतापूर्ण विचारना और विशेष क्षमा या क्षमा से सम्बन्धित । किन्तु कहीं-कहीं विमर्श का अर्थ विचारना, आलोचना के अलावा व्याकुलता, क्षोभ, उद्वेग भी प्राप्त होते हैं ।[96]

इस तरह विमर्श से नारी विषयक (नारी-विमर्श) रखने पर या इस विमर्श का नारी के साथ प्रयोग, नारी विषयक व्याकुलता, नारी विषयक क्षोभ, नारी विषयक उद्वेग, नारी विषयक सहनशीलता, नारी विषयक धैर्य और नारी विषयक क्षमा जैसे व्यापक अर्थ को अपने में समाहित किए हुए है। अन्ततः नारी-विमर्श मुख्यतः नारी से सम्बन्धित भावनात्मक बीती हुई बात आदि के संस्कार रूप में प्रमाण सहित किसी विषय पर किये गए विचार आदि जो नारी से सम्बन्धित हों नारी विमर्श कहलाता है ।

नारी विषयक विचारणा जो उसकी सहनशीलता, व्याकुलता, धैर्य, क्षमा, क्षोभ और

उद्वेग को सप्रमाण हमारे सामने प्रस्तुत करता है, वहीं नारी विमर्श कहलाता है। नारी-विमर्श में औरत और महिलाओं से सम्बन्धित उन सारे बिन्दुओं को रखा जाता है जो उन्हें पितृसत्तात्मक वर्चस्व से मुक्ति के माँग के रूप में हमारे सामने किया गया है। नारी-विमर्श, लेखन की वह कला है, जिसमें नारी से सम्बन्धित परामर्श, नारी से सम्बन्धित घटित-घटनाओं के कारण नारी पर होने वाले अत्याचार के निवारण और नारी स्वातंत्र्य के विषयों का वर्णन है।

''नारी-विमर्श वह स्त्रीवादी विमर्श लेखन है, जिसमें पितृसत्तात्मक मूल्यों, अवधारणाओं को चुनौती दी गयी है । उसके विरूद्ध सम्वाद करते हुए उन मूल्यों को खारिज किया है, उससे स्त्री की समाज में बदलती हुई स्थिति, दृष्टि और भूमिका का प्रश्न भी नए परिप्रेक्ष्य में उभरकर सामने आया है।''[97]

''नारी-विमर्श में उठने वाले सवाल सहज स्त्रियों से जुड़े हुए ही नहीं, अपितु उनसे हमें पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे मापदण्डों, पितृक मूल्यों, लिंगभेद की राजनीति और स्त्री उत्पीड़न के अन्त र्निहित कारणों को समझने की भी गहरी दृष्टि प्राप्त होती है।''[98]

सबसे पहले प्रश्न उठता है कि स्त्री-विमर्श क्यों ? यह नया विमर्श क्या है ? नारीवाद की समर्थक लेखिकाओं ने ही लिंग केन्द्रित, वर्चस्व प्रभुत्व को चुनौती दी है। पितृसत्तात्मक नैतिकताओं को छिन्न-भिन्न किया है, उन प्रतिमानों की पड़ताल की है जो पितृक यानी स्त्री विरोधी है तथा इस लिंग भेद पर आधारित भाषा को तोड़कर नयी भाषा गढ़ने की चेष्टा की है।

स्त्री-विमर्श ने उन पितृक मूल्यों, वर्जनाओं, मापदण्डों पर जबर्दस्त संदेह करते हुए उन पर प्रश्नचिह्न, आपत्तियाँ लगाते हुए उसे समस्या ग्रस्त बताया है। ऐसे लिखे प्रश्नों ने स्त्री-विमर्श की सार्थकता, प्रासंगिकता को इसलिए भी और बढ़ा दिया, क्योंकि वे दुनिया की आधी आबादी के सत्व से जुड़े हुए मुद्दे हैं । पितृक सत्ता में ही दुनिया की आधी आबादी को अपना उपनिवेश बनाया है तथा उन्हें आत्महीन, स्वत्वहीन, वाणीहीन भी किया है।

स्त्री-विमर्श में सदियों से चली आ रही स्वत्वहीनता खामोशी को तोड़ा है तथा अपनी चुप्पी को गहरे मानवीय अर्थ दिए हैं । हासियों की दुनिया को तोड़ा है, यहीं स्त्री-विमर्श की भूमिका है । स्त्री-विमर्श मानवीय सरोकार है, इसीलिए वर्चस्वशाली संस्कृति चिंतित है तथा स्त्री-विमर्श के मानवीय प्रश्नों की उपेक्षा कर रही है।

यह केवल फिमेल सब्जेक्ट ही नहीं है आधी दुनिया का अस्तित्व, उसकी अस्मिता, उसका भविष्य एवं उसके सरोकार इससे जुड़े हुए हैं । इसीलिए अपने स्वत्व के प्रति जागरूक स्त्रियाँ इस विमर्श को प्रखर बना रही हैं। स्त्री-विमर्श ने ही हमें पितृसत्तात्मक मूल्यों, दोहरे नैतिक मापदण्डों, अन्तर्विरोधों को समझने-पहचानने की अन्तरदृष्टियाँ प्रदान की है।

सिमोन द बोउवार, केटमिलट, बेटोफरीडन, डरोगैरो, दरिदा, लाका ने स्त्री पाठ के प्रश्न को उठाकर विश्व चिंतन में एक नई बहस को जन्म दिया, पितृक मूल्यों को पहली बार समस्याग्रस्त ठहराया । उन पर संदेह करते हुए प्रश्न चिह्न लगाए हैं तथा स्त्रीवादी विमर्श को सामने रखा है। उन एकांगी, लिंग-भेदक प्रतिमानों की तीखी आलोचना की है तथा स्त्री-विमर्श की सार्थकता पर भी विचार किया है। स्त्री-विमर्श बहु आयामी है, स्त्री-विमर्श ने समाज विज्ञान, मनोविज्ञान, राजनीति, साहित्य आलोचना, काव्यशास्त्र की दुनिया में एक नयी बहस को जन्म दिया है कि स्त्री दृष्टि का नया परिप्रेक्ष क्या है, वह पुरुष दृष्टि से पृथक् कैसे है । आखिर स्त्री-विमर्श की आवश्यकता क्यों पड़ी ? स्त्रीत्यवादी लेखिकाओं ने अनुभव किया कि सांस्कृतिक वर्चस्व का सबसे प्रचण्ड दबाव स्त्री पर हो रहा है। क्योंकि उनका चरित्र पितृक यानी स्त्री विरोधी है। फ्राँस की महान लेखिका सिमोन द बोउवार ने पितृसत्तात्मक समाज का क्रिटिक प्रस्तुत किया, तथा स्त्री मुक्ति के लिए नए रास्ते खोले । महादेवी वर्मा की श्रृंखला की कड़ियाँ इसी दिशा में स्त्री-विमर्श है ।

स्त्री-विमर्श ने ही भाषा के इस लिंग भेद को भी पहचाना है। उस पर चोट की है—

''इन सबों ने मिलकर लिंग केन्द्रित ('फेलोसेन्ट्रीक') व्यवस्था को ललकारा है। साहित्यिक विधान के प्रतिमानों को पुनर्भाषित किया है । नारी-देह केन्द्रित भाषा की एक सांकेतिकी गढ़ी है। कामना की राजनीति से परे जाकर इन्होंने पुरुष सत्ता में निहित एकांगी श्रेणीबद्ध एवं प्रयोजनधर्मी सोच पर सवाल उठाए हैं , और सत्य, सत्ता-ज्ञान आत्म भाषा, बाबत सामाजिक विश्वासों को सशंकित नजरों से देखा है । चुप्पी में अब तक झोक दिए गए भारतीय समाज के हासिए एक-एक पुख्ता मिजाज लहजे में फूट-फूट पड़े हैं। दलितों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों की भाँति औरतों को अपने स्वत्व का बोध हमारे लोकशाही के सयाने हो जाने से कम महत्वपूर्ण बात नहीं ।''[99]

स्त्री-विमर्श ने ऐसे मूल्यों को दमनकारी खतरनाक माना है, उनका विरोध किया है। परिवारों की संरचना सामंतीय है । जिनमें स्त्री कैद है । कोण्डे पुड़ी निर्मला का कहना है – अगर हम प्रसूति गृह की बात करते हैं तो हमे मातृत्वहीन स्त्री कहा जाता है। अगर हम रोमांस के बारे में सोचते हैं तो हमारी अपनी लक्ष्मण रेखाओं को पार करने के लिए आलोचना की जाती है। संसार के एक बड़े भाग ने हमें घेराव कर रखा है । यह लिंग भेद हमें बचपन से ही एक आवाज हीन, आत्महीन औरत के लिए अनुशासित करता आया है । जिस समाज में तर्क का गला घोंट दिया गया है, रूप कंवल को सती बनाया जा रहा है । भंवरी देवी पर बलात्कार हो रहा है वहाँ कानून भी निःसहाय लोगों की नहीं, अपराधियों की मदद के लिए तैयार खड़ा रहता है। हम रिवाजों के नाम पर तकलीफों को झेलते हैं । हमें अपनी महावारी के वक्त अछूत की तरह देखा जाता है, रिवाजों के नाम पर स्त्री मरती रही है ।[100]

कोण्डे पूड़ी निर्मला का कहना बिल्कुल ठीक है कि – ''भोपाल गैस त्रासदी में मरे हुए चक्रवात का शिकार हुए लोगों की संख्या बतायी जा सकती है, लेकिन हमारी संस्कृति की मजबूत पकड़ के नीचे प्रताड़ित, शोषित स्त्रियों के आँसुओं को गिन पाने के लिए कोई तराजू नहीं है – जब तक स्त्री की अपनी विचारधारा और प्रगति पर नियंत्रण बना हुआ है

तब तक हमें हमारी जैविक और मानसिक जरूरतों और समस्याओं को खुले रूप से व्यक्त करते रहना होगा ।"[101]

रोसाल्डो का कहना है कि – 'स्त्रियों और पुरुषो' के बीच श्रम के विभाजन और उनकी भूमिका को लेकर जो अन्तर पैदा हुआ, उसमें पुरुषों का वर्चस्व स्थापित किया । इस प्रकार स्त्री का स्तर निम्न हो गया तथा पुरुष का उच्च स्तर हो गया । इसलिए कानून दर्शन, धर्म, ज्ञान, राजनीति, संस्कृति सभी पर पुरुष आसीन हो गया ।[102] लैवी स्त्रास का विश्लेषण भी यही रहा है कि स्त्री का घरेलू जीवन से जुड़ जाने के कारण पितृक समाज ने उसे जो उत्तरदायित्व सौंपे उससे उनकी स्थिति निम्न 'Lower order' की हो गई ।"[103]

स्त्रियों के जीवन में बदलाव के लिए जब विवेकानन्द से प्रश्न किया गया था तो उनका उत्तर भी स्त्री-विमर्श से सम्बन्धित था – "तुम औरतों की मुश्किलें आसान करने वाले हो कौन ? उन्हें अपनी मुश्किलों से खुद ही निपटने दें ।"[104]

मल्लिका सेन गुप्त ने नारी-विमर्श पर महत्वपूर्ण टिप्पणी की है कि – "पितृसत्तात्मक समाजों ने जितनी जिंदगियों को आज तक तबाह किया है, उसकी संख्या आणविक युद्ध में मरने वालों से कई गुना बड़ी है, क्योंकि इस व्यथित दुःख झेलते समूह की संख्या मनुष्य जाति की ठीक आधी है। इसलिए इस दुनिया का सबसे बड़ा संकट लिंग भेद है, जिसकी चपेट में आकर सिर्फ आधी मानव जाति ही नहीं बल्कि समूची मानवता को खतरा है।"[105]

बचपन से ही नारी को अनुशासन के कठोर साँचों में जकड़ दिया जाता है, इस प्रकार पितृसत्तात्मक जीवन मूल्यों की अस्मिता को छीना है। स्त्री-विमर्श ने परम्परागत नारी लेखन पर भी जबरदस्त प्रश्नचिह्न लगाए हैं , क्योंकि वहाँ भी पितृक मूल्यों का ही समर्थन रहा है । नवनीता सेन कहता हैं – "स्त्रियों का मुँह बन्द करना संसार में सभी जगहों की पुरुष निर्मित समाज व्यवस्थाओं के भीतर स्वाभाविक रहा है। किन्तु जब स्त्रियाँ बोल नहीं पाती

तब वे गा सकती हैं । हाँ हम गा सकते हैं, इसकी छूट है - स्त्रियाँ महान युद्धों या दिए गए चमत्कारों का गायन करने में रुचि नहीं लेती बल्कि वे ऐसे आख्यानों को चुनना पसन्द करती हैं जिनमें सीता के कष्ट, सीता के आनन्द, जिनमें एक स्त्री के जीवन का दर्द और सुख है। गाँव की स्त्रियाँ सीता या द्रौपदी के माध्यम से जीती हैं, उनके माध्यम से रोती हैं, उनके माध्यम से लड़ती हैं, उनके माध्यम से अपनी जिजीविषा को व्यक्त करती हैं ।''[106]

नारी-विमर्श लेखन में अब नारियाँ पितृसत्तात्मक समाज जिसमें उत्पीड़न को बढ़ावा देने वाली क्रूर स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं, द्वारा खड़ी की गयी समस्याओं, चुनौतियों, वर्जनाओं के बारे में स्वतंत्र दृष्टि से विचारने लगी हैं। इसीलिए उनके सवाल अधिक ठोस, प्रामाणिक और तीखे हैं । यह भी कोई जरूरी नहीं कि एक स्त्री के पास स्त्री दृष्टि हो, बल्कि हममें से अधिकांश तो स्वयं की दुनिया को एक मानक पुरुष की दृष्टि से देखने को इतनी सहज अभयस्त है कि किसी भी दूसरी तरह से स्वयं को देख पाना हमारे लिए मुश्किल होगा। विडम्बना तो यह है कि हमारे यहाँ का अधिकांश स्त्री लेखन स्वयं को किसी पुरुष दृष्टि से परखने का लेखन है । जहाँ-जहाँ स्त्री ने स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखा है, वहाँ अपनी वर्ग-वर्ण से परे चली गयी है, अपनी जाति से मुक्त हो गयी है । यदि आज तथाकथित पुरुष लेखन ही मुख्यधारा का साहित्य माना जा रहा है तो इसलिए भी कि अपने सृजन कर्म में पुरुष सहज उसके मन में अपनी जाति के कारण अपने जगह को लेकर कोई फाँक नहीं है। उसके सब रचनात्मक संकटों में उसके पैरों के नीचे एक पुख्ता जमीन है स्त्री की जमीन दलित की जमीन अप्रवासी की जमीन, अश्वेत की जमीन ? वह बार-बार हिलती है । हिलती है और उसमें से खाँचे निकलते हैं – स्त्री लेखन, दलित लेखन, अश्वेत लेखन .....।''[107]

नारी के देह के बारे में बोलना आसान है, खासकर मर्द होकर बोलना आसान है, किन्तु उसकी देह के बारे में उसकी तरह बोलना आसान नहीं । स्त्री के प्रति पुरुष का अनुभव चूँकि देह और आत्म के दमन से शुरू होता है। इसलिए अनुभव की एकान्विति सम्भव

नहीं और पुरुष की भूमिका विपक्ष में खड़े होने की हो जाती है ? वह बाहर रहने को अभिसप्त है । जैसा हीथ कहते हैं – "पुरुष का स्त्रीवाद अन्ततः एक मर्दाना काम ही है ।[108]

कांलरिज स्वीकार करते हैं कि – "ज्ञान पुरुषवाची है तो संवेदना स्त्री वाची है, और इन दोनों तत्वों के मिश्रण से ही सर्जना के क्षण उत्पन्न होते हैं।[109] एक स्त्री कलाकार, कवि या लेखक के सृजन रूप में जो भी विचलन पैदा करता है वह एक सर्जक का विचलन है, स्त्री या पुरुष का नहीं बल्कि वह ऐसा तभी कर पाती है जब वह भूल जाती है कि वह स्त्री है या पुरुष । सृजन को सृजन की तरह देखा जाना चाहिए।[110] कुछ दशक के बाद बाजार के लिए किसी भी पत्रिका का महिला विशेषांक उन कहानियों और उपन्यासों को कहा जाएगा, जिनमें महिला की स्थिति पर फोकस होगा, चाहे वह पुरुष द्वारा लिखा गया हो या महिला द्वारा रचा ।[111]

यद्यपि समय-समय पर स्वयं नारी ने अपने मनुष्य समझे जाने न समझे जाने के सवाल उठाए हैं । करीब सौ साल पहले 'नोरा' ने 'हेल्मर' से पूछा 'तुम क्या मानते हो, मेरा सबसे पवित्र कर्तव्य क्या है और जब उससे कहा अपने पति और बच्चों के प्रति तुम्हारा कर्तव्य तो वह असहमत हुई और बोली मेरा एक और कर्तव्य है, इतना ही पवित्र अपने प्रति मेरा कर्तव्य है .... मैं मानती हूँ कि सबसे पहले मैं मनुष्य हूँ । उतनी ही जितने की तुम हो .... या हर सूरत में वह बनने की कोशिश तो करुँगी ही । मैं अच्छी तरह से जानती हूँ, सारे वर्ल्ड के ज्यादातर लोग तुमसे सहमत होंगे, किताबों से तुम्हें इसका परवाना मिला है, लेकिन अब मैं ज्यादातर लोग जो कहते हैं और जो किताबों में लिखा है उससे संतुष्ट नहीं हो पाऊँगी । तुझे चीजों पर खुद सोच-विचार करना होगा और उन्हें समझने की कोशिश करनी होगी ।[112]

नारी की खोल से बाहर आकर मनुष्यत्व की दिशा में अग्रसर होना है। "स्त्री का व्यक्ति के रूप में प्रकाशित हो सकना, अपनी सम्पूर्णता में जी सकना मनुष्य जाति के बचे रहने

की शर्त है, यह अकारण नहीं है कि इलाभट्ट जैसी स्त्री चिंतक स्त्री मुक्ति के रास्ते मानव जाति की मुक्ति का सपना देख रही है ।"[113]

जो वर्ग समाज को चलाए रखने के लिए उत्पादन करते हैं रचना करते हैं वे सतत प्रताड़ना के बिना काबू में नहीं रखे जा सकते । इस प्रताड़ना का सबसे भीषण रूप है, स्वयं इन उत्पादक और उत्पीड़ित वर्गों के मन में यह बैठा देना की वह इसी सुलूक के लायक है, जो उनके साथ हो रहा है। इसीलिए वर्चश्वशाली सत्ता उत्पीड़ितों को सतत धिक्कार की ह्रदयहीन धुन्ध में रखती है।

महादेवी वर्मा कहते हैं – "हमें न किसी पर जय चाहिए ना किसी से परायज न किसी पर प्रभुत्व चाहिए न किसी पर प्रभुता, केवल वह अपना स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपभोग नहीं, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगे।"[114]

सिमोन ने सही प्रश्न उठाया है कि पितृक समाज ने सुखी स्त्री की अवधारणा को किस प्रकार गढ़ा कि घरेलू औरतें कामकाजी औरतों की तुलना में अधिक सुखी होती हैं । इतना ही नहीं इस शोषण तंत्र में जकड़ी हुई अधिकांश स्त्रियाँ अपने सुखी होने की, पीड़ित होने की भी सुखमयी अवस्था समझती हैं। एक निष्क्रिय व्यक्ति जैसे अपने निष्क्रियता में भी परम सुख की अनुभूति करता है भले ही भीतर से वह उखड़ा हुआ क्यों न हो ? बहुतेरी स्त्रियाँ अपनी गतिहीनता निष्क्रियता, घरेलू शोषण को ही सुख समझती हैं।

औरत की तमाम शक्ति बच्चे पैदा करने में तथा घर के चुल्हे-चौके, रात को पति संग बिस्तर में ही अपव्यय हो जाता है। उसके पास बौद्धिक रचनात्मक, सांस्कृतिक, सामाजिक कर्मों में ऊर्जा बचती ही कहाँ है ? वह बँट जाती है, टुकड़ा-टुकड़ा जीवन व्यतीत करती है । वह एक कवयित्री, लेखिका, दार्शनिक, मूर्तिकार, चित्रकार, विदुषी यदि नहीं हो सकी तो क्यों? पुरुष जो करता रहा है यह सारे काम, पुरुष लाख चाहे घर को व्यवस्थित

नहीं कर सकता, उस घर को सुन्दर नहीं बना सकता, बच्चों में वह संस्कार चेतना पैदा नहीं कर सकता। स्त्री घायल होती है, पिटती मरती है, लेकिन हमारा तथाकथित सभ्य समाज कोई प्रतिरोध नहीं करता, उसे घर का व्यक्तिगत मामला बता दिया जाता है । यह है हमारे समाज का स्त्री सम्बन्धी दृष्टिकोण ! स्त्रियों ने इस अन्याय के खिलाफ संगठित होना शुरू कर दिया है। महिला संगठन इस अन्याय को रोकने के लिए संगठित हो रहे हैं । 'तस्लीमा नसरीन' ने स्त्री की स्थिति के बारे में सही कहा है कि -- "ये पौधे भी पीपल की तरह बढ़ सकते हैं, लेकिन मिट्टी नहीं है वैसे उर्वर मिट्टि नहीं जिसमें मनचाहे ढंग से बढ़ा जा सकता है । जो मिट्टी है भी उसमें कंकड़, पत्थर ज्यादा हैं पानी नहीं, खाद नहीं है, इसलिए इसमें पौधे बड़े नहीं होते ।"[115]

2. ख. II नारी-विमर्श का उद्‌भव और विकास :

नारी-विमर्श के उद्‌भव और विकास के संदर्भ में जब भी चर्चा चलती है। तो साहित्यवादी समर्थकों के द्वारा हिन्दी साहित्य में इस विमर्श को पाश्चात्य विचारधाराओं से आयातीत माना जाता है। क्योंकि अध्येताओं ने भारतीय मध्यकाल और मध्य उत्तर बिन्दु से ही इस चीज की तुलना की है । क्योंकि इस काल में विदेशी आक्रान्ताओं से घिरा भारत अपनी अस्मिता बचाने में और दो जून की रोटी एकत्रित करने में लगा था तो भला उस मध्यकाल में आज की तरह चेतनागत नारी-विमर्श कहाँ प्राप्त होता । लेकिन ऐसा नहीं है । भारतीय इतिहास इसका गवाह है, कि वैदिक काल से लेकर आज तक नारी-विषयक बातें साहित्य, वेद, पुराण उपनिषदों में भी प्राप्त होती रहीं हैं । मध्यकाल में भारतीय मूल्यों का क्षय हो रहा था और पाश्चात्य देशों में नारी मुक्ति की बातें जोर-सोर से चल रहीं थीं इसलिए पाश्चात्य साहित्य के प्रति लोगों का विशेष ध्यान रहा ।

पाश्चात्य साहित्य में भी नारी-विमर्श लिखे जाते रहे हैं, नारी मुक्ति की बातें होती रही हैं : किन्तु हमारा भारतीय दर्शन और इतिहास भी बताता है कि यहाँ प्राचीनकाल से ही नारी-विमर्श के स्रोत उपलब्ध होते हैं।

भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर दृष्टिपात करते हुए हम देख सकते हैं कि प्राचीनकाल के ग्रन्थों से प्रमाणित होता है कि तद्युगीन समाज व्यवस्था में नारी को सम्मान जनक स्थान प्राप्त था । लोपा, मुद्रा, घोषा, सूर्या, अपाला आदि के आदर्श रूप एवं गार्गी, मेत्रैयी के विद्वतापूर्ण दार्शनिक आध्यात्मिक चिंतन भारतीय नारी के लिए अपार सम्भावनाओं से संयुक्त रहे हैं, तथापि उत्तर वैदिक काल से ही इसकी स्थिति में गिरावट आने लगी । कालांतर में स्त्रियों की दशा बिगड़ती गई । समाज में महिलाओं पर तरह-तरह के बंधन और अंकुश डालने शुरू किए । रूढ़ियों, अंधविश्वासों से जकड़े समाज में नारी की स्थिति दयनीय होती गयी । इसके लिए जहाँ एक और भारत की रूढ़िवादी परम्परा जिम्मेदार है, वहीं दूसरी और विदेशी आक्रांताओं के स्त्री-लोलुप आचरण को जिम्मेवार ठहराया गया है। ''भारत पर मुसलमानों के आक्रमणों और मुगलों के राज्य के बाद स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आयी । ब्राह्मणों ने रक्त की शुद्धता स्त्री-सतित्व की रक्षा और हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर उसे इतने अधिक सामाजिक बंधनों में जकड़ दिए कि उसके स्वतंत्र अस्तित्व का नामों-निशान न रहा । लड़कियों की शिक्षा एकदम समाप्त हो गई । मुस्लिम आक्रमणों के दौरान लड़कियों के अपहरण की घटनाएँ बढ़ी तो हिन्दुओं में छोटी-छोटी बच्चिओं का विवाह किया जाने लगा। पर्दा प्रथा भी प्रारम्भ हो गयी ।''[116]

अर्थात् स्त्रियाँ जिसे पूज्या माना गया था। वह धीरे-धीरे, दासी-अनुचरी की निम्न स्थिति तक पहुँची । उनके अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का क्षरण होने लगा । मुगलों की बहुपत्नी रखने की प्रथा तथा बादशाहों द्वारा सैकड़ों-हजारों स्त्रियों को हवस का शिकार बनाने की आकांक्षा से स्त्री घर में बंद हो गई । फलतः यहाँ के हिन्दुओं ने इस कुदृष्टि से बचने के

लिए स्त्रियों को घर में रखकर पर्दा प्रथा को प्रश्रय दिया । अंग्रेजों के आगमन से यह प्रथा और जकड़ती चली आ रही थी, जो अठारहवीं शताब्दी तक अपने चरम पर थी । इस समय पूरा भारतीय समाज अंधकारमय था ।

भारतीयों की आत्म चेतना सोई हुई थी, फलतः अंग्रेजों का साम्राज्य विस्तार पूरे भारत में स्थापित होने लगा । एक-एक कर सारे राज्य-राजबाड़े अंग्रेजी शासन के अधीन होने लगे । नारी-विमर्श भी भारतीय आत्म विमर्श के साथ सुप्त प्राय थी, लेकिन इसी समय भारतीय समाज में एक ऐसे प्रबुद्ध वर्ग का उदय हुआ, जिसके सद प्रयत्नों से नवजागरण का श्री गणेश हुआ । इस नवजागरण का आधार वस्तुतः आत्म जागरण का जिसने तत्कालीन कुरीतियों और चुनौतियों का सामना करने के लिए अपने स्वर्णिम अतीत के लिए पुनरउत्थान का संकल्प व्यक्त किया । परन्तु यह उत्थान अतीतोन्मुख न होकर भविष्योन्मुख था । इसलिए इसमें समसामयिकबोध के अनतर्गत् परिष्कार का लक्ष्य भी सन्निहित किया गया, यानि यह जागरण पुरानी नीव पर एक प्रकार से नया भवन खड़ा करने जैसा था । यह केवल भाषा साहित्यों का ही नहीं, बस सम्पूर्ण भारतीय इतिहास परंपरा का नवजागरण काल है । यह जागरण भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अनुरूप आध्यात्मिक चेतना और हिन्दुत्व के जीवन दर्शन पर अधिष्ठित था । अतः इसे भारतीय पुनर्जागरण भी कहा जाता है। आत्महीनता और आत्मविस्मृत के गर्त में डूबे भारतीयों को जब मुसलमानों के बाद पाश्चात्य जाति अंग्रेजों का शासनाधिपत्य प्राप्त हुआ तब जाकर उन्हें सामाजिक, सांस्कृतिक चेतनोन्मुखता का बोध हुआ। कहा जा सकता है कि एक ओर अंग्रेजों के आधिपत्य ने उनके आत्माभिमान को झिंझोरा तो पश्चिम की वैज्ञानिकता एवं दार्शनिकता से परिचय कराया । स्वाभाविक था कि आध्यात्मिकता और पाश्चात्य भौतिकता के संघर्ष में नयी चेतना का उदय हुआ । राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक स्तरों पर यह चेतना साथ-साथ विस्तृत होती गयी । इस नवचेतना के अग्रणी बने राजाराम मोहन राय, इश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामीदयानन्द सरस्वती, स्वामी

विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, महात्मा गाँधी आदि, दूसरी ओर उन्नीसवीं सदी तक भारतीय समाज में अनेक कुरीतियाँ घर कर गयी थी । अन्धविश्वासों, जड़ रूढ़ियों व कुप्रथाओं के चक्र में पूरा जन समुदाय घुटन महसूस कर रहा था । कर्मकाण्डों, पाखण्डों तथा खोखली परम्पराओं ने समाज को हिलाकर रख दिया था। ऐसे समय में ही ईसाई मिसनरियों द्वारा हिन्दू धर्म को तुच्छ मृत बताकर हिन्दुओं की भावना पर प्रहार किए गए । सेवा के नाम पर पिछड़े गरीब, दलित हिन्दुओं के पन्थ परिवर्तन का सुनियोजित षड्यंत्र चलाया गया । जिस कारण से प्रबुद्ध भारतीयों का स्वाभिमान जागृत होना स्वाभाविक था। परिणाम स्वरूप हिन्दुओं ने अतीत को पुर्नव्याख्यायित किया । समाज की कुरितियों, बुराइयों से मुक्ति के लिए धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों का आन्दोलन चलाया गया। जिन्हें हम इतिहास के पृष्ठों पर देख सकते हैं । इस काल में नारी सर्वाधिक उत्पीड़ित एवं उपेक्षित थी । अतः धर्म सुधारकों एवं सामाजिक चिन्तकों का ध्यान नारी की दयनीय स्थिति की ओर जाना स्वाभाविक तथा समय की माँग था । नारी को आधार बनाकर सुधार आन्दोलन किए गए, इन कार्यों के कारण स्त्रियाँ तो अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक और सचेत बनी ही, पूरे समाज के नजरिये में बदलाव भी आया, इन स्त्री सुधार आन्दोलनों के सन्दर्भ में यह बात ज्यादा दृष्टव्य है कि पश्चिम की तरह इन आन्दोलनो के अगुआ महिलाएँ न होकर पुरुष सुधारक ही थे ये वही पुरुष सुधारक थे, जिन्हें भारतीय नवजागरण का अग्रदूत माना जाता है। डॉ. ओमप्रकाश शर्मा के शब्दों में – "इस प्रकार सम्पूर्ण राष्ट्रीय सामाजिक, सांस्कृतिक नवजागरण के अग्रगण्य नेता स्त्री आन्दोलन के प्रणेता भी बने । पुरुष द्वारा भारतीय नारी चेतना का यह उद्घोष विश्व महिला आन्दोलन की एक अनुपम विशिष्टता है। जहाँ स्त्रियों की दुर्दशा से उबारने का बिड़ा पुरुष जाति ने आगे बढ़कर उठाया । आगे चलकर यहीं बिड़ा नारी कल्याण और प्रगति का आधार बना । यहाँ नारी मुक्ति का प्रश्न भारतीयता के पुनर्निर्माण के साथ जुड़ा रहा है । और उसी संदर्भ में स्त्रियों की दशा में सुधार के प्रयत्न भी हुए ।"[117]

कहा जा सकता है कि भारत में महिला जागृति की शुरूआत उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारवादी आन्दोलन तथा आजादी की लड़ाई के साथ ही हो गयी थी । कुल मिलाकर देखा जाय तो भारतीय नारी चेतना का विकास और नारी मुक्ति का संघर्ष दो आधार बिन्दुओं पर केन्द्रित रहा है। पहला कुप्रथाओं के विरूद्ध संघर्ष के रूप में और दूसरा स्वतंत्रता आन्दोलन के क्रमिक विस्तार के साथ नारी जागरण के रूप में । नवजागरण एवं स्त्री सुधार आन्दोलन की भूमिका को तलासते हुए संक्षेप में कहना चाहे तो निःसन्देह इसमें बंगाल में जन्में राजाराम मोहन राय की महती भूमिका रही। स्त्री सुधार आन्दोलन के जनक राजाराम मोहन राय ने सती प्रथा जैसी अमानुसिक प्रथा को गैर कानूनी घोषित कराया, विधवा विवाह को कानूनी मान्यता दिलायी । डॉ. मीराकान्त के शब्दों में – ''महिलाओं की समस्याओं से जुड़े समाज सुधार के कार्यो में राजाराम मोहन राय को जिस आधार ने प्रेरणा दी, वह थी मानवतावादी तार्किक विचारधारा । उन्होंने स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को भी इसी परिप्रेक्ष में देखा और यही कारण था कि सती प्रथा के खिलाफ कानून बन जाने पर भी वे संतुष्ट नहीं हुए । उन्होंने बहुविवाह प्रथा के खिलाफ भी आवाज उठायी । महिलाओं के सम्पत्तिगत अधिकारों के लिए भी उन्होंने संघर्ष किया । साथ ही दहेज प्रथा और लड़कियों की बिक्री का भी उन्होंने जमकर विरोध किया । कुल मिलाकर वे मध्ययुगीन रूढ़ियों के विरूद्ध एक नयी चेतना के लाने के लिए जीवन पर्यन्त सक्रिय रहे ।''[118]

इतना ही नहीं उन्होंने 1828 ई. में बाह्म समाज की स्थापना की, यह पहली संस्था थी, जिसमें महिलाओं के पृथक अस्तित्व को मान्यता दी । कुल मिलाकर ब्रह्म समाज ने स्त्रियों की दशा को सुधारने का सफल प्रयास किया, जिसमें कुरीतियों से मुक्ति का मार्ग आगे की ओर प्रसस्त किया । इसके पश्चात् इश्वरचन्द्र विद्यासागर, ब्रह्म समाज से जुड़े बंगाल के प्रमुख समाज सुधारक थे । दूसरी ओर 1867 में गठित प्रार्थना समाज भी स्त्री समाज का प्रबल समर्थन था । इन्हीं के सद्प्रयत्नों से सन् 1856 ई. में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम

पारित हुआ।

आर्य समाज आन्दोलन - आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 ई. में की थी । यह एक पुर्नउत्थानवादी आन्दोलन था। जिसने महिलाओं की दशा सुधारने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । जिसमें पर्दाप्रथा का विरोध, तलाक प्रथा का विरोध तथा स्त्रियों की शिक्षा एवं विधवा विवाह का समर्थक था । विवाह के लिए लड़कियों की न्यूनतम आयु 16 वर्ष तथा लड़कों के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष आर्य समाज द्वारा निर्धारित हो गयी। बाल विवाह, बहुविवाह, दहेज प्रथा और अनमेल विवाह का इसमें विरोध किया । नारी शिक्षा को बढ़ावा दिया तथा विद्यालयों और कॉलेजों की स्थापना की । पहले सहशिक्षा के पक्षधर नहीं थे, बाद में एग्लोवैदिक शिक्षण संस्थाओं में सहशिक्षा को स्वीकार किया गया।

भारतीय महिला सुधार आन्दोलन में विदेशी महिलाओं की भी भूमिका रही । विदेशी महिलाओं में ब्लावत्स्की, मार्गरेट नोबल, भगिनी निवेदिता एवं एनीबेसेन्ट ने भारत में नारी जागरण का कार्य भी किया । ब्लावत्स्की ने मद्रास में थयोसोफिकल सोसायटी की शाखा खोलकर नारी जागरण का कार्य प्रारम्भ किया तथा बाद में एनीबेसेन्ट ने उनके अधूरे कार्य को पूरा करने का बिड़ा उठाया । इस प्रकार देशी-विदेशी महिलाओं के आगे आने से जागरण और प्रगति के लिए महिलाओं को प्रेरणा प्राप्त हुई, जिसके कारण आगे चलकर महिलाएँ स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़ीं ।

इसी क्रम में कर्बे, महात्मा फूले, विवेकानन्द, सईद खान जैसे चिंतक सुधारक शामिल थे । इसमें विवेकानन्द का नाम भी लिया जा सकता है जिन्होंने नारियों को शिक्षा देने वाला आह्वान किया । और कहा कि नारियों में यह क्षमता अवश्य होनी चाहिए कि वे अपनी समस्याएँ अपने ढंग से हल कर सकें । उनका यह कार्य न कोई दूसरा कर सकता है और न किसी दूसरे को करना ही चाहिए ।

उधर मीराकान्त मानती हैं कि – "नारी मुक्ति आन्दोलन को परिपक्वता तब

मिलनी शुरू हुई जब भारतीय महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के लिए जागरूक महिलाओं ने महिला संगठनों की स्थापना की । इसमें कोई सन्देह नहीं कि आर्य समाज और ब्रह्म समाज जैसी संस्थाओं ने महिला शिक्षा को बढ़ोत्तरी और पर्दा प्रथा, बाल-विवाह, बहुविवाह, सरीखी सामाजिक बुराईयों को खत्म करने की आधारशिला रखीं । किन्तु सही मायने में महिलाओं की बेहतरी के किसी भी कार्य को तभी परिपक्वता मिली जब महिलाएँ स्वयं आगे आयीं और क्षेत्र में सक्रिय व एकजूट होकर उन्होंने संगठनों की स्थापना की ।''[119]

जहाँ तक पत्र-पत्रिकाएँ और महिला संगठनों का प्रश्न है ब्रह्म समाज ने महिलाओं की एक पत्रिका 'बाला बोधिनी' सन् 1863 ई. से शुरूआत की । इसमें विधवाओं के विवाह के लिए नियमित विज्ञापन छापे जाते हें । इसी क्रम में सन् 1882 ई. में स्वर्णकुमारी देवी ने 'दी लेडीज थियोसोफिकल सोसायटी' और सन् 1886 ई. में सखी समीति की स्थापना की । इसी क्रम में पण्डिता रमाबाई ने सन् 1892 ई. में 'शारदा सदन' की स्थापना तथा 1909 ई. में रमाबाई रानाडे ने 'सेवासदन' का गठन किया। सन् 1917 ई. में 'इण्डियन विमेन्स एशोसिएसन' का गठन किया । इसकी स्थापना मार्गरेड काजिन्स ने मद्रास में की थी।

यह पहला अखिल भारतीय स्तर का स्त्री संगठन था । जिसने महिला मताधिकार आन्दोलन का संगठन किया । महिला विषयक पत्रिकाओं का विधिवत प्रकाशन भारतेन्दु युग से आरम्भ हुआ । सन् 1894 ई. में कानपुर से ठकुराइन भाग्यवती, सचेड़ी देवी गहलोत ने स्त्रियों की मासिक पत्रिका 'वनिता हितैषी' निकाली । सन् 1903 ई. में 'मुरादाबाद' से श्रोत्रीय शंकर लाल ने 'अबला हितकारी' पहले प्रयाग से तथा बाद में सन् 1924 ई. में कानपुर से रामेश्वरी नेहरू ने 'स्त्री दपर्ण पत्र' निकाला । सन् 1909 में प्रयाग से पण्डिता सुदर्शनाचार्य ने 'गृहलक्ष्मी' तथा 'यशोदा देवी' वैद्य ने स्त्री धर्म विषयक और सन् 1911 ई. में स्त्री चिकित्सक पत्र निकाले । इसी तरह सन् 1911 ई. में 'महिला हितकारक' देहरादून से 'भारत महिला' सन् 1913 ई. में मेरठ से और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'स्त्री शिक्षक'

नामक पत्र निकालकर नारी जागरण का संदेश फैलाया ।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और नारी जागरण दूसरा महत्वपूर्ण दौर था । कहा जा सकता है कि – "भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना आधुनिक युग के भारतीय इतिहास एक अत्यन्त ही आश्चर्यजनक घटना है। यह हमारे उस पतन की सच्वी कहानी है, जिसमें एक समृद्ध और खुशहाल देश को 'सात समुन्दर' पार से आए मुट्ठी भर फटेहाल बनियों और पेशेवर लुटेरों ने हराकर राज्य कायम कर लिया । अंग्रेजों के हाथों भारतीयों की यह पराजय निश्चित ही एक लज्जा जनक घटना थी ।"[120]

अंग्रेजों द्वारा भारत में शासनाधिपत्य स्थापित करने के बाद भारतीयों द्वारा जब उनका विरोध आरम्भ हुआ तब उन सभी आन्दोलनों विद्रोहों में महिलाओं ने न केवल भाग लिया । अपितु विरांगना के रूप में उनका नेतृत्व भी किया । झांसी की रानी रेजिमेण्ट की सदस्यता के नाते युद्ध की तैयारी करते हुए स्वतंत्रता आन्दोलन में अपनी भूमिका निभायी ।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का क्रमबद्ध इतिहास सन् 1857 ई. से आरम्भ होता है। जिसमें रानीयों महारानियों से लेकर सामान्य तक की महिलाओं की भागीदारी थी । इस क्रान्ति की मुख्य नेत्रियाँ झाँसी की रानी, लखनऊ की बेगम हजरत महल, दिल्ली की बेगम जीवन महल चौहान रानी आदि प्रमुख हैं ।

सन् 1885 ई. में एक अंग्रेज अधिकारी ए. ओ. ह्यूम द्वारा कांग्रेस की स्थापना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की अतिमहत्वपूर्ण घटना है । बाद में महिला नेत्रियों की कुछ-कुछ भूमिका इसमें सम्मिलित होती गयी। जिसमे एनीबेसेण्ट, मार्गरेट कजिंस, राज कुमारी अमृत कौर, सरला देवी चौधरी, अरूणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी और उषा मेहता आदि प्रमुख थीं । ये कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व के आधार पर इससे नहीं जुड़ी अपितु अपनी पुरुष रिस्तेदारों के जेल जाने पर उनका प्रतिनिधित्व जनता के समक्ष करती थी । स्वतंत्रता आंदोलन के साथ नारी जागरण की स्वतंत्रता भी विविध शोपान चलते रहे । महिलाओं को

बोट का अधिकर मिला, फिर महिला मताधिकार आन्दोलन चलता रहा । जिससे नारी में चेतना आयी और भारतीय नारी समाज एक बार जी जाग उठा ।

2. ख. III भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी-विमर्श :

भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी-विमर्श की शुरूआत भारतीय इतिहास में सभ्यता के विकास काल से ही प्राप्त होने लगता है। विभिन्न सभ्यताओं में भारतीय सभ्यता का अपना महत्वपूर्ण स्थान है और इसकी प्राचीनता सर्वविदित है और उस प्राचीनता के स्वच्छ परिवेश में नारी की अहम भूमिका है । वैसे तो हर काल अपने गुण-दोष से भरा होता है किन्तु परिवेश के आम प्रचलन में अगर गुणाधिव्य हो तो दोष छिप जाते हैं । ऐसे ही हमारी भारतीय संस्कृति में नारीवादी हित चिंतन पूरे रूप में उपस्थित है । शिक्षा-राजनीति और सामाजिकता इत्यादि हर पहलू पे नारी-विमर्श उपलब्ध रहा । देवी, जगधात्री और सृष्टि की श्रष्टा के रूप में मानी जाने वाली नारी अगर पूजनीय स्तूत्य रहीं हैं तो वही शक्ति के रूप में प्रभावी भी रहीं हैं । वैदिक कालों में हमारी स्भ्यता स्वर्णीम सुखद प्रभात के रूप में थी । ऋग्वेद काल नारी की सामाजिक स्थिति का ऐतिहासिक काल जाना जाता है। इस काल में विवाह प्रथा प्रचलित हो चुकी थी, किन्तु बहुपतित्व की प्रथा भी प्रचलित थी और बधू अपने पितृगृह से पतिगृह में जाकर सम्मान प्राप्त करती थी । विधवा भी पुनर्विवाह कर सकती थी, सम्बन्ध बिच्छेद तथा नियोग बिच्छेद भी प्रचलित थी । वेदों में नारी को साम्राज्ञी तक का अधिकार प्राप्त है । गृहस्वामिनी के रूप में– ''गृहान गच्छ गहपत्नी यथासः नारी एक विशिष्ट स्थान रखती हैं ।''

उषस देवी के रूप में सूर्य की किरणों के पूजन का विधान कि - हमें सुबह में उषस देवी का दर्शन प्रणाम और पूजन-अर्चन इत्यादि करना चाहिए ।

इस प्रकार वैदिक काल में ही नारी-विमर्श की शुरूआत हो चुकी थी जिसके विकास स्वरूप हम अन्य कालों में भी इसे प्राप्त करते रहे हैं ।

वस्तुतः स्त्री-विमर्श अगर हम भारतीय संदर्भ में स्त्री वर्ग के अनुसार देखें तो

भारत में भी नारी-विमर्श अधिकतर आम मध्यवर्गीय सवर्ण स्त्री के सवालों से जूझता रहा । यह दलित स्त्री के दमन शोषण के प्रश्नों के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक आधार का समर्थन तो नहीं करता, परन्तु इस आधार की वजह से अनवरत चल रहे स्त्री की प्रताड़ना का उतना मुखर विरोध भी नहीं होता, जितना दलित स्त्री के दमन के आधार को ध्वस्त करने के लिए आवश्यक है। उतना मुखर विरोध शायद सम्भव भी नहीं है। कारण दलित स्त्री के शोषण के आधार को ध्वस्त करने का अर्थ है मध्य वर्गीय स्वर्ण नारीवादी की सम्पन्नता की नींव पर कुठाराघात करना, दलित स्त्री के सवालों को अपनाने के लिए नारी आन्दोलनों को अपने कार्य क्षेत्र तथा सैद्धान्तिक प्रतिबद्धता में परिवर्तन करना होगा । भारत में यह प्रश्न नारी और दलित दोनों के मुद्दों के सन्दर्भ में उठा है ।[121]

एक मत के अनुसार मनुस्मृति के अनुसार स्त्री और दलित की स्थिति एक ही है। अतः दोनों को एक जूट होकर अपने शोषण दमन के विरूद्ध संघर्ष करना चाहिए । इस मत के समर्थकों का कहना है कि सीता और द्रौपदी को रानी की हैसियत होने के बावजूद पितृसत्तात्मक दमन और प्रताड़ना भूगतनी पड़ी ।[122] अधिकारतः भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी-विमर्श के शुरूआती पहलुओं को टटोलने पर वैदिक काल में नारियों को बहुत सारे अधिकार तो प्राप्त ही थे, साथ ही उनमें विमर्श भी प्राप्त होते हैं - ऋग्वेद में –

''भद्रा वधुर्भवति यत्सुपेशाः स्वयंमित्रम् वनुतेजनेकित् ।''[123]

युवतीयों को स्वयं जीवन मित्र अर्थात पति के वरण का अधिकार प्राप्त था और वे अपनी इच्छानुसार इस अधिकार का पालन उचित समय पर करती थी। ऋग्वेद में इस नारी विषयक चर्चा से विमर्श की बातें प्राप्त होती हैं, किन्तु कुछ ही समय बाद की चर्चा में सुकुमारी भट्टाचार्य के अनुसार अगर हम देखें तो वैदिक समाज में कृषिजीवी काल में भौतिक सम्पत्ति के साथ-साथ स्त्री भी पुरुष की सम्पत्ति बन गयी । धीरे-धीरे पुरुष के पर स्त्री गमन के अधिकार को भी समाज ने मान लिया। यही नहीं वह अनेक पत्नियों का पति तथा उपपत्नियों

का उपपति भी हो सकता था । युर्जर्वेद काल में समाज की जटिलता बढ़ने लगी, धार्मिक कर्मकाण्डों में स्त्री - पत्नी की भूमिका भी नगण्य हो गयी ।

'मैत्रायणी संहिता' में बार-बार कहा गया है कि स्त्री को सभा में जाने का अधिकार नहीं है। ''ऐतरेय ब्राह्मण' में कन्या के जन्म को अभिशाप कहा गया । शतपथ ब्राह्मण में हिदायत है कि स्त्री शूद्र और काले पक्षी को मत देखों अन्यथा श्री और पार, प्रकाश और अंधकार, सत्य और मिथ्या एकाकार हो जाएँगे ।

पुनः इस सारी स्थितियों से बाहर आकर सोचने पर प्राचीन नारी-विमर्श के विविध आधुनिक आयाम उभरकर सामने आते हैं । आज के परिवेश में कहना न होगा । विश्व की आबादी अर्धांस यानी नारी संसार अपने को जानने की दिशा में अग्रसर हुआ है। उसके अब तक के मोह-पाश में बने रहने को अविधा तकनीकी प्रगति शैक्षिक वातावरण एवं अन्यान्य विकासोपक्रम द्वारा नष्ट हुई है । चेतना सम्पन्न होने पर नारी अपने विरूद्ध रचे गए मिथकों का विरोध करती है । पुरुष की महानता का मिथ अब उसे स्वीकार नहीं । परम पूज्य और पवित्र जीन ग्रन्थों ने नारी को आदर्श के साचें में फिट कर दिया था, आज वह उनसे बाहर निकलने के लिए तीव्र प्रयास कर रही है । आज उसके स्वरों में पुरुष वर्चस्व से मुक्ति की कामना है। वर्तमान समय में नारी पुरुष वर्ग से प्रतिस्पर्धा न कर केवल उसके समकक्ष तक मनुष्य होने के नाते प्राप्त होने वाले अधिकारों की माँग कर रही है। वह पुरुष के अस्तित्व से कोई नकार न कर एक सह नागरिक की तरह अपनी पहचान स्थापित करना चाह रही है। इसके लिए उसका सारा जोर अब तक प्रयुक्त मिथकों से अस्वीकार और स्वतंत्र इंसान के रूप में अपनी स्वीकृति की है ।

नारी को शक्ति स्वरूपा आद्यशक्ति के रूप में स्थापित करने वाले मिथक विरोधाभास से भरे हैं । देवी दुर्गा की उत्पत्ति भी समस्त देवताओं के तेज से उनका हित साधने के लिए होती है जैसे –

"अतुलम तत्र तन्तेजः सर्वदेव शरीरजम् ।

एकस्थं तद्-भून्नारी व्याप्त लोकत्रयं त्विषा ।"

एक रोबो जैसा व्यवहार कर के वे देवी दुर्गा अन्तर्ध्यान हो जाती है ।

स्त्रियों की सीता-सावित्री के जिस मिथक को स्वीकार करने को कहा जाता है वे मिथक भी भ्रान्तिभाव हैं । सीता ने परम्परा को तोड़ घर की चौखट लाँघी, पुत्रों का अकेले पालन-पोषण किया । सावित्री ने एक पर पुरुष (यम) से जिरह किया, सारी नियमावलियों को पीछे छोड़ दिया। उन्हें मौन, मूक, आज्ञाकारिता के साँचे में फिट करना कहाँ तक उचित है ? स्कूलों में प्रार्थना होती है –

"सीता, सावित्री, दुर्गा माँ, फिर घर-घर भर दे ।"

कभी यह नहीं कहा जाता कि गार्गी, जाबाला, घोषा, मैत्रेयी आदि से घर भरें । कुछ आदर्श मिथकीय देवी चरित्रों की राह पर चलने की सलाह, संहिताएँ देती रही हैं , जिन्हें भारत की हर स्त्री के लिए रोल मॉडल बनाया जाता रहा है।

देवी, सती और पतिव्रता गृहणी का आदर्श धीरे-धीरे 'सामूहिक अवचेतन' में बदल गया । 'सामूहिक अवचेतन' का सिद्धान्त फ्रायड के शिष्य युग द्वारा 1924 में दिया गया। फ्रायड ने 'व्यक्ति' (इंडीविजुअल) और (लिविडो) यानी सेक्स पर जरूरत से ज्यादा ही कुछ जोर दिया है। जबकि युग की स्थापना थी कि 'सेक्स' ही सब कुछ नहीं होता और वैयक्तिक अचेतन के साथ 'सामूहिक अवचेतन' भी होता है जो एथानिक समाजों में तो सबसे अधिक शक्तिशाली होता है।

वैदिक साहित्य में कन्या जन्म एवं उसके लालन-पालन में पुत्र के समान स्तर के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी तथ्य सामने आते हैं। परवर्ती 'वृहदाख्यक उपनिषद' में जहाँ कन्या जन्म का – "दुहिता में पाण्डित्य जायते' कहकर आदर किया है । एवं 'बराहगृह' सूत्र में सुन्दर कन्याओं की उत्पत्ति पर प्रसन्नता व्यक्त की गयी है। यहाँ कन्या के प्रति कुछ श्लोकों में

पुत्री के प्रति अभिभावकों के स्नेह की अभिव्यक्ति भी मिलती है एवं अभिभाव और उसकी पुत्री की सम्बन्धों की उपमा द्वारा स्वर्ग और पृथ्वी की भी अभिव्यक्ति की गयी है। वहीं वेदों में ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं, जिनमे पुत्री के लिए इच्छा व्यक्त की गयी है ।[124]

'अर्थवसंहिता' में पुत्र के बाद पुत्री की कामना अपने घर में पुत्र और दूसरे के घर में कन्या के जन्म की कामना 'तैतरीय संहिता'' में पुत्र जन्म पर पिता का उत्साह एवं कन्या जनम पर निष्कृयता जैसे उदाहरणों द्वारा 'अर्सग्रन्थों में पुत्र-पुत्री की समानता का यशोगान सम्भव नहीं है।' हाँ यह अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि वैदिक काल के अन्त तक पुत्री के जन्म पर शोक की अभिव्यक्ति कन्या शिशु हत्या में परिवर्तित नहीं हुई थी। उत्तर वैदिक युग में पुत्री संकट का मूल थी, आपत्ति थी । मनुस्मृति तक आते-आते कन्या की स्थिति अपनी हीनतम स्थिति में पहुँच गयी एवं उस पर नियंत्रण एवं बंधन कठोरतम होते गए।

कालीदास तक कन्या ही अर्थोपरकीय एवं प्रत्यक्ष रूप से उसे जायदाद में समाविष्ट करते हैं । वैदिक काल में स्त्रियों द्वारा श्रटचाओं की रचना करने जैसे विद्वतापूर्ण कार्य लड़कियों को शिक्षा देने की स्वस्थ्य परम्परा का प्रमाण है। शिक्षा प्रारम्भ हेतु लड़कों की तरह लड़कियों का उपनयन संस्कार नियमित रूप से किया जाता था । वेदों के कुछ श्लोक इस बात को रेखांकित करते हैं कि कुमारियों के लिए शिक्षा अपरिहार्य एवं महत्वपूर्ण मानी जाती थी । उत्तर वैदिक काल में भी स्त्री शिक्षा का महत्व था।

आधुनिक परिदृश्य में इसके कई आयाम उभरकर सामने आते हैं ।

''प्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः''

कहकर बड़ी आसानी से औरत के चरित्र को संदिग्ध करार दे दिया गया, जब कि पुरुष को अपने भाग्य का विधाता करार दिया गया । चरित्र का मानदण्ड शायद ही कभी पुरुष पर लगा है। अगर चरित्र का मानदण्ड होता तो पुरुष की सुविधा के लिए वेश्यालय क्यों खुलते । चरित्र का मानदण्ड यदि पुरुष के लिए होता तो वह बलात्कार करने के बाद अपनी

मर्दांगी पर इतराता नहीं । किसी भी व्यक्ति विशेष पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए पुरुष उस व्यक्ति को अक्सर माँ-बहन की गाली देता है, जिसका निहितार्थ यह है कि पुरुष उस व्यक्ति की माँ-बहन से यौन सम्बन्ध बनाएगा । स्त्री के यौन व्यवहार पर किसी न किसी रूप में सदैव नियंत्रण की चाह रखता है कभी सुत्रत करके, कभी दौसा पठना के ।

परन्तु उत्तर वैदिक काल तक आते-आते स्त्रियों की दशा उतनी अच्छी नहीं रह गयी थी । इस विषय में पी. बी. काणें का मत है कि – "उत्तर वैदिक काल में स्त्रियाँ निची दृष्टि से देखी जाती थी। उन्हें सम्पति में कोई भाग नहीं मिलता था तथा वे आश्रित थी।

उत्तर वैदिक काल में नारियों के उपनयन का अधिकार समाप्त हो गया था । उनके संस्कारों के समय वेदों का उच्चारण नहीं किया जाता था। निर्धन लोगों में एक पत्नी की प्रथा थी लेकिन धनी तथा राजसी घरानों में बहुविवाह प्रचलित था । एक से अधिक पुरुष के साथ एक स्त्री के विवाह की प्रथा का उल्लेख अथर्ववेद से मिलता है । 'शतपथ ब्राह्मण' में पत्नी यद्यपित पति की अर्धांगिनी थी, कित्नु फिर भी उससे उसके कई संस्कार छीन लिए गए थे और उनकी स्थिति निम्न हो गयी थी । 'रामायण' में सीता परित्याग और 'महाभरत' में द्रौपदी का द्रुतक्रीड़ा में दाव लगाना पुरुषवादी वर्चस्व का दर्शन करते हैं ।

मनुस्मृति में 'यत्र नारयस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर जहाँ एक ओर मनु ने सम्बोधित किया वहीं 'ना स्त्री स्वातत्र्य महति' कहकर उसे स्वतंत्रता के सारे अधिकारों से वंचित कर दिया । याज्ञवल्यक स्मृति, विष्णु स्मृति और नारद स्मृति में भी स्त्रियों की दशा निम्नतर दृष्टिगोचर होती है।

जैन धर्म के आचार्यों ने नारी के माता रूप को अपरिसीम आदर और श्रद्धा प्रदान की है। उस समय उच्च वर्ग की नारियों में शिक्षा का अभाव नहीं था । उनके चौबीस तीर्थकारों में उन्नीसवीं 'मल्लीनाथ' स्वयं स्त्री थी । इस युग की नारियों में त्याग एवं कर्तव्य पालन की भावना निहित थी स्वयं वे शासन सम्बन्धी प्रबन्ध करने में भी प्रवीण थी । लक्ष्मी

देवी, मलया देवी एवं चालुक्य वंशीय विजय भट्टारिका राज्य शासन एवं युद्ध कला में प्रवीण थी । राज शेखर की पत्नी एक कवयित्री आलोचिका और शीलभट्टारिका एक अच्छी साहित्यकार थी । मण्डन मिश्र की पत्नी उभय भारती की श्री शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ की मध्यस्था बनाया था।[125] वे दिगम्बर सम्प्रदाय में तो स्पष्ट कहा गया है कि नारियों के लिए मुक्ति नहीं हैं । वे पुरुष जन्म प्राप्त करके ही मोक्ष लाभ कर सकती है । उनके लिए तो सीमित धर्म का पालन ही श्रेयष्कर है ।"[126]

इस तरह जहाँ प्रथम वाक्यानुसार नारियों की स्थिति ऊँची है वहीं दूसरे वाक्यानुसार नारी को पुरुष के लिए मोक्ष प्राप्ति में बाधा, मृत्यु पाश, काम का साधन तथा वासना का मूल बताकर नारी को त्याज्य बताता है। आचार्य 'अपगति' ने भी 'नारी को अपकारी' माया, कुल कलंकिनी कहा है।"[127]

वैदिक धर्म के कर्मकाण्डो, बाध्य आडम्बरों व संकिर्णताओं की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बौद्ध धर्म का जन्म हुआ था । बौद्ध साहित्य में भी स्त्री को समुचित सम्मान नहीं मिला । "बौद्ध जातक कथाओं में सतीत्व का आदर्श सर्वमान्य न होने से उसे सार्वजनिक उपभोग की वस्तु के रूप में वर्णित किया गया है।"[128]

'अनभिरतजातक' में नारी की उपमा धर्मशाला, ब्याह, नदी मार्ग तथा मदिरालय से दी गयी है।

"जब बौद्ध मठों में धनाधिक्य हो गया तो भिक्षुक वर्ग भी संयम ओर तपस्या से तंग आकर भोगवादी बन गया ।"[129]

इतना ही नहीं 'महापान' तथा 'बज्रयपात' शाखा के अनेक सिद्ध साधकों ने तो नारी देह पर आसन जमाकर बौद्ध मठों में नारियों का जमघट लगा दिया था । नारी जाति इनकी काम तृप्ति में सहायक होने लगी। 'थेरीगाथा' नामक पुस्तक से ज्ञात होता है कि उस समय पुनर्विवाह, बहुविवाह, विधवा विवाह तथा पर्दा प्रथा जैसी कुप्रथाओं का भी प्रचलन था ।

'कुशजातक' से विदित होता है कि 'नियोग' की प्रथा भी प्रचलित थी ।

यह काल सामाजिक तथा धार्मिक संकिर्णता का युग था । इस काल को नारी दशा के पतन की चरम सीमा कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । कास्ट संहिता, विष्णु संहिता, पंचतंत्र हितोपदेश तैतरीय संहिता तथा मैत्रायणी संहिता, परासर संहिता आदि में स्त्री के सम्बन्ध में अत्यन्त घृणित दृष्टिकोण व्यक्त किया है। मनु ने कहा है कि "स्त्रियाँ नैसर्गिक रूप से स्नेह शुण्य होने के कारण अपने पतियों के प्रति सच्ची नहीं रह सकती।"[130]

मनु ने स्त्री को स्वतंत्र न रहने का आदेश दिया है।[131]

भर्तृहरि ने भी नारी को नरकपुरी का द्वार, संदेहों का भँवर, दु:साहसों का नगर मनुष्य रूपी मछली को फँसाने का कांटा, सैकड़ों कपटों वाली, स्वर्ग प्राप्ति में विघ्न, मायाओं की पेटी, प्राणियों का पास, ऊपर से अमृत तथा भीतर से विष आदि न जाने कितने सम्बोधनों से अविहित किया है।[132]

मनुस्मृति में कहा गया है कि स्त्री को कुत्सित तथा दुराचारी पति को देवता समझना चाहिए ।[133]

'ब्रह्म वैवर्त पुराण' के अनुसार 'पति सेवा परमो धर्मः है ।[134]

'पद्मपुराण' में तो पति की आराधना को ही जीव द्वारा ब्रह्म की आराधना बता दिया गया है।[135] हमारी सभी स्मृतियों ने नारी को अपने पति को परमेश्वर मानने की व्यवस्था दी है ।[136] इन शास्त्रीय नियमों का उलंघन करने वाली नारियों के लिए कठोरतम दण्ड का विधान किया गया था ।[137]

मनु ने राजा को आदेश दिया कि जो स्त्री सूद्र पुरुष से विवाह सम्बन्ध स्थापित करे उसे कुत्तों को खिला दें । इस काल में नारी से वेद पढ़ने का अधिकार भी छीन लिया गया।[138]

उसके विवाह की आयु 8 वर्ष निश्चित कर दी गयी ।[139]

इस काल में स्त्रियों की स्थिति में जितना ह्रास हुआ उसे हमारा सामाजिक इतिहास कलंक के रूप में सम्भवतः कभी नहीं भूलेगा । विदेशियों के आगमन से पूर्व ही भारतीय नारी अशिक्षा, बहुपत्नीत्व, सती प्रथा तथा वाधित वैधव्य आदि का शिकार हो चुकी थी। 'पराधीन सपनेव सुख नाहीं' या 'मैं न रहूँगी गृह के भीतर' आदि सम्बोधनों से उसकी नरकिय स्थिति का वर्णन है। किन्तु दूसरी ओर चाणक्य ने माता को प्रथम गुरु कहकर उसका सम्मान भी किया है।

सल्तनत काल में नारी की दशा और भी खराब हो गई थी, 'मोहम्मद बीन कासिम' के आक्रमण से लेकर मुगल साम्राज्य के पतन तक का इतिहास नारी के आँसूओं से ही नहीं अपितु रक्त से लिखा गया ।[140]

मुगल बादशाह अपनी माता और बहनों से राज्य संचालन में सलाह लिया करता था। वह केवल विलास की पात्रा नहीं थी । हिन्दू स्त्रियों में भी विभिन्न विरांगना नारियों द्वारा राज्य संचालन, तत्कालीन नारियों के प्रशासन वीरता और कौशल के प्रमाण है।

आधुनिक युग में कबीर जैसे सामाजिक संतों ने जहाँ नारी को 'नरक का द्वार' कहा । छाया गृहणी राक्षसी आदि कहा वही तुलसीदास –

'कतविधि सृजी नारि जग माँही,
पराधीन सपनेऊ सुख नाही ।'[141]

'ढोल गँवार' शुद्र पशु नारी, सकल ताड़ना की अधिकारी।'[142]

वहीं आधुनिक काल में महादेवी वर्मा कहती है – "चाहे हिन्दू नारी की गौरव गाथा से आकाश गुँज रहा हो, चाहे उसके पतन से पाताल काँप रहा हो, परन्तु उसके लिए तो न सावन सुखा न भादो हरा, की कहावत ही चरितार्थ होती रही है । उसे हिमालय को जला देने वाले उत्कर्ष तथा समुद्रतल की गहराई से स्पर्धा करने वाले आकर्षक दोनों का

इतिहास आँसुओं से लिखना पड़ा है ।[143]

आज के जमाने में नारी की उत्पीड़न की स्थिति को स्पष्ट करती हुई सिमोन कहती है –''आज हम एक संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं, इस दुनिया में आज भी सारी सत्ता सारे मूल्य और संस्थाएँ पुरुषों के हाथ में है। यदि स्त्रियों को कुछ अधिकार दिए गए हैं तो वे अमूर्त रह गए हैं । वे रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों के कारण व्यवहारिक जगत में लागू नहीं किए जा सकते, इसलिए अब भी स्त्री की पूरी पकड़ दुनिया भर नहीं है । कहने को तो स्त्री और पुरुष समान है, किन्तु वास्तव में इन दोनों में बहुत बड़ा भेद कायम है ।''[144]

आधुनिकता के दौर में ब्यूटीपार्लर जहाँ महानगरों की देन थे आज छोटे-छोटे गाँव और घरों तक भी आ गए हैं । हर गली, मोड़, चौराहें पर ब्यूटीपार्लर है क्यू ? मिडिया स्त्रियों में यही चेतना विकसित कर रहा है कि वह अपने शरीर पर सबसे अधिक ध्यान दे, उस पर खुलकर खर्च करे, मेकअप के सारे समानों कौन किसके लिए उपयुक्त है यह खुलकर विवरण दे रहा है। इसके बिना वह अपने शरीर जीवन देह को अर्थ नहीं दे सकती । 'रोला बार्थस' का 'द फैशन सिस्टम' इन्हीं रहस्यों को खेलता है। शरीर फैशन के चिह्नों का दृश्य बन जाता है। उपभोक्तावाद का वह जबरदस्त दबाव झेल रही है क्योंकि यह फैशन अपना सार्वभौमिक वातावरण बनाता है, इसलिए हर क्षेत्र में देहवाद और सेक्सवाद घुस जाता है। हर क्षेत्र का सेक्सीकरण होता है, औरत का शरीर जो इसका बाहक है शिकार बन जाता है। 'बैद्रिया' कहते हैं कि – ''इस बिराट प्रक्रिया में औरत फैशन का केन्द्र बनती है तब समूची दुनिया ही औरत को भक्त सैक्स और फैशन को भोगने लगती है। जिस प्रकार एक मजदूर बाजार में आकर अपना श्रम बेचने की प्रक्रिया में अपने आप से बेगाना होने लगता है, उसी तरह औरत फैशन में आकर अपने आप से अलग अजनबी हो जाती है, फिर अपनी देह से अजनबी हो जाती है। वह उनकी देह नहीं होती जो दिखती है । देह शोषण देह की दुकान बन जाती है 'वांडी सापिंग' ।[145]

'मिडिया विज्ञापन' हर क्षण औरत में यही एहसास पैदा कर रहा है कि उसकी देह ही सर्वपरि है। मिडिया विज्ञापन बार-बार मनुष्य में यहीं हिनता भाव छद्म चेतना पैदा कर रहा है । इतना ही नहीं विज्ञापन में मानवीय सम्बन्धों तक बाजारूकरण हो जाता है, जिसके तहत दो आत्मियता से करीब आते होंठ सिर्फ इसलिए नहीं मिल पाते कि इस आत्मीयता को 'कालगेट' का 'सुरक्षाचक्र' उपलब्ध नहीं या स्त्री-पुरुष के बीच मात्र एक खास 'आक्टर सेवलोशन' की मध्यस्थता ही है। दूसरी ओर विज्ञापन स्त्री की एक ऐसी छवि का निर्माण करता है जिसमें उसके स्त्रित्व का सार किसी मानवीय गुण में निहित न होकर उसे खास क्रीम या हेयरडाई में निहित होता है, जिसके बिना वह स्त्री - स्त्री नहीं ।"[146]

इस प्रकार सभ्यता के विकास काल से लेकर मध्य संक्रान्ति काल और आज तक भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी-विमर्श भारतीय आर्य ग्रन्थों में और आधुनिक साहित्य में प्राप्त होते आ रहे हैं । 'यत्र नारयस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की विमर्शात्मक अवधारणा जहाँ भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में प्राप्त होती है वही आधुनिक साहित्य में नारी-विमर्शकारों द्वारा या पुरुष विमर्शकारों द्वारा नारी-विमर्श के तमाम पक्ष उजागर हुए हैं । जहाँ औरत के हक की लड़ाई है वहीं नारी-विमर्श में घरेलू सम्बन्ध है, तो भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी की आधिकारिक चेतना भी। अन्ततः हम कह सकते है कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी-विमर्श के विविध स्रोत उपलब्ध हैं।

2. ख. IV पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य में नारी-विमर्श :

वास्तव में सम्पूर्ण विश्व में 'सभ्यता' के विकास का इतिहास स्त्री के दमन शोषण का इतिहास भी रहा है। परन्तु इस लिंग आधारित दमन शोषण के प्रतिकार का इतिहास अदृश्य ही है। वर्तमान स्वरूप में, स्त्री अपने अधिकारों के लिए संघर्ष, आधुनिक राष्ट्र राज्य की उपज है। आरम्भिक वर्षों में 'स्त्री की स्थिति सुधारने की दिशा में कई ठोस कदम उठाए गए परन्तु ये सामाजिक क्षेत्र तक ही सीमित रहे । इस दौरान स्त्रियों को स्थानीय, प्रांतीय तथा राष्ट्रीय सरकारों में कोई राजीनतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे।

ईसा के दो हजार साल पूर्व से ही मैसोपोटामिया में गरीब, अपनी हालत सुधारने के लिए अपनी बेटियों की शादी या वेश्यागिरी के लिए बेच देते थे । उस समय यदि पति या पिता अपना ऋण चुकाने में असमर्थ होता तो वह अपनी पत्नी तथा बच्चों को सारी उम्र के लिए गिरवी रख देता था ।

फ्रांस की क्रान्ति की मुख्य भूमिका है – "आधुनिक युग के मानव इतिहास में फ्रांस की क्रांति को विशिष्ट स्थान प्राप्त है । फ्रांस की क्रान्ति ने राज्य के सम्बन्ध में एक नयी धारणा को जन्म दिया, राजनीतिक तथा समाज के विषय में नए सिद्धान्त प्रतिपादित किए, जीवन का एक नया दृष्टिकोण सामने रखा, वहीं इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव समय और दूरी की सीमा में बाधा नहीं रहा उसने तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन को प्रभावित किया हो, आज भी यह प्रभावित कर रही है और जब तक मानव समुदाय प्रगति के मार्ग की ओर अग्रसर होता रहेगा तब तक प्रभावित करती रहेगी। लोगों के रहन-सहन और कार्य करने की विधि में मौलिक परिवर्तन हुए । जीवन का स्तर ही बदल गया । प्रजातंत्रवाद, साम्राज्यवाद, राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक प्रगति तथा राजनीतिक समस्याएँ औद्योगिक क्रान्ति से जनित परिवर्तनों के ही परिणाम है। सच तो यह है कि आधुनिक युग का पुरा इतिहास ही फ्रांस की राज्य क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम है।[147]

औद्योगिक क्रान्ति द्वारा स्त्रियों के जीवन पर पड़े प्रभावों पर प्रकाश डालते हुए डॉ. राजरानी शर्मा ने कहा है कि पश्चिम के देशों में नारी को घर से बाहर लाने में औद्योगिक क्रान्ति का बहुत बड़ा हाथ है। स्त्रियों को फैक्ट्ररियों और मीलों में काम करना पड़ा । बाद में उनका वहाँ जब शोषण किया जाने लगा, काम की स्थितियाँ और भी खराब होने लगी तो उन्होंने इसके खिलाफ आवाज उठानी शुरू की निरन्तर कठोर परिश्रम के बावजूद कामगार महिला को अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए भी ऐसे नहीं मिलते थे। नियोक्ता पुरुषों की

अपेक्षा अक्सर महिला कामगार अधिक पसन्द करते थे क्योंकि वे कम पैसों में अपेक्षाकृत अच्छा काम करती थी । परिश्रम के कारण ही नारी को मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठा मिली । कई बार औरतों को फैक्टरी के अलावा फार्म पर भी काम करना पड़ता था । उनकी स्थिति इतनी दयनीय थी कि सिसमांड और ब्लैकर्ड ने यह माँग की कि महिलाओं को रोजगार के लिए मना कर देना चाहिए । स्पष्ट है कि औद्योगिक प्रगति के साथ ही कामगारों की माँग बढ़ी । इस माँग को पूरा करने के लिए पुरुष शक्ति कम पड़ रही थी । अतः नारी का सहयोग लेना आवश्यक हो गया । इधर फ्रांस की क्रान्ति से समानता, स्वतंत्रता की विचारधारा विविध देशों में फैलने लगी, जिससे राज्य शासन की लोकतांत्रिक पद्धति का विकास हुआ। इस विकास के साथ ही जनता के प्रतिनिधित्व व मताधिकार की माँग उठी जो आगे चलकर महिला आन्दोलन का प्रमुख अंग बनी ।

यदि नारी मुक्ति के बौद्धिक प्रयत्नों की बात करें – ''कालांतर में नारी और पुरुष के बीच बढ़ रही दरार को कम करने के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ । इसी ने नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की परिकल्पना का आधार मिला । इसी अवधारणा के आधार पर नारी स्वतंत्रता आन्दोलन शुरू हुआ ।''[148]

इस नारे का प्रभाव सीमित अर्थों में ही स्त्रियों के जीवन पर पड़ा । बाल्येयर, मान्टस्क्यू तथा रूसों आदि की मानसिकता व लेखन में स्त्रियों के प्रति ज्यादा सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं मिलता हैं, फिर भी समग्र सामाजिक उद्‌बोधन से स्त्रियाँ भी जागृत हुई। इन उदार विचारकों ने नारी चेतना को प्रस्फुटित कर फैलाया । बाद में स्त्री का प्रश्न स्वयं महिला विदूषियों द्वारा उठाया जाने लगा, जिसका एक लम्बा इतिहास है।

इस सन्दर्भ में 'मेरी वालस्टान क्राफ्ट' को सदैव याद किया जायेगा । ''सन् 1792 ई. में मेरी वालस्टान फ्राक्ट ने 'विन्डीकेशन आफ द राइट्स आफ विमेन' नामक पुस्तक लिखकर नारी अधिकारों की सर्वप्रथम माँग की, जिसे न केवल इंग्लैण्ड में अपितु पुरी दुनिया के नारीवादी चिन्तन को अभिव्यक्त करने वाला प्रथम ग्रन्थ माना जाता है । इस पुस्तक

के प्रकाशन के तीन वर्ष वाद ही 1795 ई. की एक तुफानी संध्या में उनका शव 'टेम्स नदी' से निकाला गया था, पर विपरीत स्थितयों में अदम्य साहस दिखाने के कारण आज भी उन्हें मुक्ति आन्दोलन का पितामही काहा जाता है।''[149] 'विन्डीकेशन आफ द राइट्स आफ विमेन' उन्होंने लिंग मत विभेद भूलकर स्त्रियों में मानवोचित गुणों के विकसित करने का आह्वान किया गया। 'वालास्टायन क्राफ्ट' ने चार बिन्दुओं पर पुरुषों को चुनौती दी थी। सबसे पहले उन्होंने इस बात को स्वीकार करने से इंकार किया कि स्त्रियाँ बुद्धि के मामले में पुरूषों से कमजोर हैं अथवा छुई मुईपन नाजुकता तथा सतहीपन उनके नैसर्गिक गुण है। दूसरा मुद्दा यह था कि पुरुष और महिलाएँ बुद्धि के समान अधिकारी है, तो उसका प्रयोग करने की शिक्षा भी उन्हें समान रूप से ही दी जानी चाहिए। स्त्रियाँ सिर्फ पुरुषों के भोग की वस्तु नहीं हैं, बल्कि एक स्वतंत्र मानुषी है जो बौद्धिक शिक्षा पाने में समर्थ तथा उसकी अधिकारी भी है। इसी तर्क पर आधारित 'टालस्टायन क्राफ्ट' का तीसरा नुक्ता यह था कि चूँकि पुरुषों तथा महिलाओं की समान मानसिकता ईश्वर प्रदत्त बुद्धि के अधिकार की हिस्सेदारी पर आधारित है। इसलिए इन दोनों लिंगों के नैसर्गिक गुण भी समान होने चाहिए। ''चौथे नुक्ते में समान गुणवन्ता के विचार के आधार पर समान अधिकारों की बात को उठाया गया था, जो आगे चलकर राजनीतिक उदारवाद की पूरी विचारधारा का एक आधार बिन्दु बन गया।''

समाजवादी नारिवादियों में 'विलियम थम्पसन' और 'अन्ना ब्हिलर' ने महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा शारीरिक दृष्टि से बताया। इसके बाद 'जानस्टुअर्टमिल' हेटीएट टेलर' आदि ने इस दिशा में प्रयास किया। 'स्टेन्टन ने महिलाओं के लिए मतदान सम्पत्ति शिक्षा, रोजगार आदि के अधिकार प्रदान करने की माँग की। जहाँ अमेरिका में स्टेन्ट सक्रिय थी, वहीं ब्रिटेन में 'जान स्टुआर्ट मिल' ने 'आन द सब्जेक्सन आफ विमेन' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखकर सामाजिक बुराईयों, कुप्रथाओं और पितृसत्तात्मक समाज की कमजोरियों को महिलाओं की प्रगति में बाधक बताया। यह पुस्तक सन् 1869 ई. में प्रकाशित हुई जो न केवल

इंग्लैण्ड में अपितु युरोप के अधिकांश क्षेत्रों में एक पाठ्य पुस्तक की तरह पढ़ी गयी । इस प्राकर उन्नीसवीं शदी के अन्त तक आते-आते नारी केन्द्रित चिन्तन इतनी गहराई और व्यापक आधार पर फैल गया, जिससे बाद के आन्दोलनों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा ।

मार्क्सवादी चिंतकों ने भी नारीवादी विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। यद्यपि मार्क्स ने अलग से महिलाओं के बारे में ज्यादा कुछ नहीं कहा है, तथापि एंगिल्स की पुस्तक 'परिवार' नीजि सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति को नारीवादी चिंतन की आधारभूमि के रूप में देखा जा सकता है । इसके अतिरिक्त बेबल की 'नारी समाजवाद' नामक पुस्तक मार्क्सवादी परम्परा के विकास को ही प्रकट करती है । उन्नीसवी सदी के अन्त तक 'मेरी बालस्टायन क्राफ्ट' विलियम धाम्सन आदि ने जो माँग रखी थी उनमें से ज्यादातर ब्रिटेन और अमेरिकी शासन द्वारा कानूनी वैधता प्राप्त कर चुकी थी । इस प्राकर समाजवादी एवं मार्क्सवादी चिंतकों ने स्त्री मुक्ति के प्रश्न को शोषण से मुक्ति के साथ सन्निहित करके निरूपित किया।

8 मार्च 1897 ई. का दिन स्त्री मुक्ति आन्दोलन के इतिहास का स्मरणीय दिवस है। सन् 1856 ई. में अमेरिकी कामगार औरतें कारखानों में अपने शोषण के खिलाफ लड़ रही थी । इस वर्ष 8 मार्च को इन महिलाओं ने अधिक वेतन और काम के घण्टे को 16 से घटाकर 10 घण्टे कर देने की माँग को लेकर कपड़ा मिलों में काम करना बन्द कर दिया, सड़कों पर निकलकर प्रदर्शन किए, यद्यपि किसी प्रकार के समर्थन के अभाव में यह आन्दोलन पुरुष द्वारा कुचल दिया गया था, उस पर महिला इतिहास में एक अमिट लकीर छोड़ गया। इस प्रथम संगठित प्रदर्शन को ही महिला आन्दोलन की प्रेरणा मानते हुए 8 मार्च सदा के लिए 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला संघर्ष दिवस' के रूप में मनाया जाने लगा। सर्वप्रथम 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाने का प्रस्ताव सन् 1910 ई. में रूस की क्रान्तिकारी नेता 'क्लारा जेट किन' ने रखा। सन् 1913 ई. में पहली बार मास्कों में महिलाओं ने 8 मार्च को ही नारी-विमर्श के रूप में मनाया । तब से अब तक अगणित

घटनाक्रम इस 8 मार्च से सम्बद्ध होते रहे ।

पश्चिम में नारी स्वातंत्रय के संघर्ष का विधिवत आरम्भ महिला मताधिकार की माँग से हुआ है, जिसका सुदीर्ध इतिहास है। यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि जब महिलाओं द्वारा मतदान के अधिकार की माँग की गयी तो उस समय तक हर वयस्क नागरिक को मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं था, भले ही पुरुष ही क्यों न हो ? इसलिए महिला मताधिकार की माँग के साथ कुछ समय तक यह बिडम्बना भी जुड़ी रही कि आन्दोलनकारी महिलाओं का एक वर्ग केवल अभिजात्य वर्ग के लिए हो मताधिकार देने का पक्षधर रहा।

लेकिन बाद में धीरे-धीरे यह वयस्क मताधिकार तक पहुँचा । इस आन्दोलन की हर देश में अलग-अलग पृष्ठभूमि रही। फ्रांस, इंग्लैण्ड एवं अमेरिका में विशेष रूप से हलचले हुई । इस प्रकार पश्चिम के अन्य देशों में आन्दोलन चले जिनसे महिलाओं को धीरे-धीरे मताधिकार प्राप्त होता गया । वहाँ का मुक्ति संघर्ष मताधिकार की प्राप्ति से अभिन्न रूप से जुड़कर आगे बढ़ता रहा है। नारी आन्दोलन का एक चरण इसी मताधिकार की प्राप्ति के साथ सम्पन्न हुआ ।

इसके पश्चात् नारी आन्दोलन के दूसरे चरण की शुरूआत होती है। क्योंकि सन् 1930 ई. तक पश्चिम के प्रमुख देशों में महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया जा चुका था। अतः महिला मतदान की माँग के लिए महिलाओं में जो ज्वर उठा था वह शान्त हो गया । इस दौरान महिलाओं को तमाम राजनीतिक सामाजिक अधिकार प्राप्त हुए । कल्याणकारी योजनाओं एवं कामकाजी भूमिका में बढ़ोत्तरी के कारण महिलाएँ घरेलू जीवन से आगे बढ़कर सामाजिक दायित्व निभाने लगी। अतः कुछ समय के लिए यानी सन् 1930 ई. से 1960 ई. तक पश्चिमी जगत् में नारी आन्दोलन की सक्रियता दिखाई नहीं देती। इस अन्तराल में नारी जीवन में क्रमागत और स्वतः स्फूर्त परिवर्तन हो रहा था, जो अपने मूल स्वरूप में परम्परा पोषक था। इसके बाद पुनः महिलाओं की स्थिति को लेकर एक नवीन चेतना जागृत हुई,

जिसमें अब तक स्त्री की स्थिति में हुए सुधार पर असन्तोष व्यक्त किया गया । सारी पूर्ववर्ती उपलब्धियों पर प्रश्नचिह्न लगाने लगा । महिलाओं के प्रति सामाजिक नजरिए को इस स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराया गया । एक ओर काम-काज के क्षेत्र में, राजनीतिक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व अवसर का न दिया जाना, समान वेतन के सिद्धान्त का सख्ती से पालन न किया जाना, घर के कार्यों का अधिकांश बोझ, महिलाओं का सामुहिक हिंसा का शिकार होना आदि प्रश्नों को लेकर नये विरोधी तेवर लेकर नारीवादी आन्दोलन का उभार दिखायी पड़ा। दूसरी ओर पश्चिम के स्त्री, पत्नी और प्रेमिका के रूप में भोग्या पहले है उसे आकर्षित बने रहने के लिए शरीर पर अत्याचार कर सजना-सँवरना पड़ता है। इस देह साधना और देह भोग जनित सामाजिक विकृतियों के प्रति विद्रोह और स्वतंत्र अस्तित्व की माँग ने नारी मुक्ति आन्दोलन को हवा दी ।

इसप्रकार स्पष्ट है कि पश्चिम के नारी मुक्ति आन्दोलन का दूसरा चरण बहुआयामी शोषण के विरूद्ध संघर्ष के रूप में उदित हुआ जो बाद में अतिवाद एवं फिसलन के कारण पुरुष विरोधी मानसिकता और यौन पर केन्द्रित होकर रह गया । यही नये नारीवाद की पहचान का खास आधार बना ।

फ्रांसीसी लेखिका 'सिमोन द बोउबार' ने सन् 1949 ई. में विश्व चर्चित पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' लिखकर नारी मुक्ति आन्दोलन के बीच की चुप्पी को तोड़ने का प्रयास किया । सिमोन के रचनात्मक नारीवादी चिंतन कौतुहल पैदा करने वाला नहीं था, उन्होंने पूरी जाति की तस्वीर उतारने से पूर्व औरत के नाते अपने को पहचाने जाने की अनिवार्यता महसूस की और इसी क्रम में स्त्री के अन्तर्मन तक पहुँचने का प्रयास किया ।

सन् 1963 ई. में 'अमेरिकी लेखिका 'बेट्टी फ्राइडन' नारी मुक्ति आन्दोलन की सच्चे अर्थों में प्रवर्तक रही। उनकी पुस्तक द फेमनिन मिस्टिक' के प्रकाशन के साथ ही पश्चिम जगत में तहलका मच गया । इस पुस्तक में फ्राइडन ने अब तक के स्त्रियों के छिपे रहे असंतोष को शब्दबद्ध किया जिसके कारण नारी समाज में इस पुस्तक का काफी वर्चस्व

बना रहा । इस पुस्तक के द्वारा स्त्री जागृति आयी 'विमेन लिव' नाम से पहचाने जाने वाली प्रवृत्ति सामने आयी । पश्चिमी समाज की पृष्ठभूमि और आन्दोलनकारियों के अति उत्साह के कारण इसका मूल उद्देश्य गोंड हो गया और तरह-तरह के अतिवादी विचार व्यवहार सामने आने लगे । इसके अतिवादी विचारों की ओर जाने से पूर्व इस आन्दोलन के मूल उद्देश्य पर ध्यान देना आवश्यक है जो 'अमृता प्रितम' के अनुसार इस प्रकार है।

क. औरत की अपनी अस्तित्व के सम्बन्ध में चेतना जगाना ।

ख. लड़कियों का अधिकार लड़कों के बराबर होना ।

ग. बच्चों के लिए सम्भाल गृहों की माँग ।

घ. गर्भपात से सम्बद्ध कानून : शरीर औरतों का है, उन्हें ही इस पर अधिकार हो, सरकार का अधिकार ना हो ।

ङ. औरतों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव की आवश्यकता ।

स्त्रियों द्वारा शुरू किए गए इस आन्दोलन के कारण अनेक नारीवादी संगठनों का उदय एवं प्रचार-प्रसार होने लगा । इस आन्दोलन को अग्रणी, संस्था 'नेशनल आर्गनाइजेसन ऑफ विमेन थी, जिसकी स्थापना 'बेट्टी फ्राइडन' ने 1966 ई. में की थी और वही इसकी संस्थापक अध्यक्षा थी । इस संस्था को आज भी सबसे बड़ा नारीवाद संगठन माना जाता है। हालाकि बाद के नारीवाद आन्दोलन में आयी उग्रता के कारण फ्राइडन ने अपने को इस संस्था से अलग कर लिया और अगस्त सन् 1968 में एक अमेरिकी पत्रिका में लेख लिखकर पूरे महिला आन्दोलन पर पुनर्विचार की माँग उठायी। सन् 1981 ई. में प्रकाशित 'द सैकेण्ड स्टेज' में आन्दोलन के उग्रवाद से इनका विलगाव प्रगट होता है। इन्हें नारीवाद माना जाता है। इस आन्दोलन के प्रमुख घटना क्रमों में अन्तर्वस्त्र जलाने आदि की घटनाएँ सुर्खियों में आयीं।

जाहिर है कि आरम्भ में इस आन्दोलन की प्रतिक्रिया एकदम अतिवादी छोर तक

चली गई और स्त्रियों ने पुरुषों के साथ जीने, पति, कुटुम्ब, बच्चे, विवाह आदि से मुक्त होने का लक्ष्य प्रस्तुत किया । इस उद्देश्य से 'सोसाइटी फार कटिंग ऑफ मेन' यानी पुरुषों का कद छोटा करने वाले संगठन की स्थापना सन् 1968 ई. में की गई जिसकी संस्थापक और सिद्धांतकार वेलरी सोलोनस थी। आन्दोलन की उग्रता में महिलाओं से सिर्फ लड़कियाँ पैदा करने का आह्वान किया गया । आन्दोलन के जोश में स्त्रियों ने फेट मिलेट को नारी मुक्ति आन्दोलन की माओत्से तुंग कहा तो, पुरुषों ने उसे 'पुरुषो का बधिया करने वाली' की संज्ञा दी।

इसके अलावा पति द्वारा पीड़ित बलत्कृताओं के लिए शरण स्थलियों का निर्माण पुरुषों द्वारा कामकाजी औरतों का यौन शोषण विज्ञापनों एवं प्रचार माध्यमों द्वारा नारी देह के प्रदर्शन व सौन्दर्य प्रतियोगिताओं का बहिष्कार आदि प्रमुख तथ्य इस आन्दोलन के प्रेरक रहे हैं । भाषिक व शाब्दिक स्तर पर भी मैन, मैनकाइंड, चेयरमैन जैसी स्त्रियों की अनदेखी करने वाले शब्दों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया । "लिंग के आधार पर भेद-भाव समाप्त करने के लिए उन्होंने माँग की । 'मिसेज' के बदले 'मिज' कहा जाये ताकि उनके वैवाहिक स्तर से उनके व्यक्तित्व को न जोड़ा जाये । चेयरमैन जैसे शब्दों को उन्होंने 'चेयरपर्सन' और 'हर स्टोरी' में बदलने की माँग की । उन्होंने कहा कि समान काम के लिए समान सम्मान मिलना चाहिए । उन्होंने केवल मर्दों वाले कामों और जगहों को भी स्त्रियों के लिए खोलने को कहा ।"

यौन मामलों में भी विवाह पूर्व एवं विवाहेत्तर सम्बन्धों को स्वीकृति मातृत्व से बचने के प्रयास आदि इसके उल्लेखनीय पहलू हैं । उषा महाजन के अनुसार – "आन्दोलनकारियों ने यौन मुक्ति के क्षेत्र में एक नयी क्रान्ति शुरू की जिसका उद्देश्य या समाज से पितृसत्तात्मक व्यवस्था की समाप्ति, क्योंकि यह पुरुष सत्ता और पुरुष प्रधानता से जुड़ी थी । उन्होंने तमाम परम्परागत यौन निषेधाज्ञाओं और वर्जनाओं के खिलाफ डंका पीटा और कहा कि समलैंगिकता

और नाजायज बच्चे पैदा करने में कोई बुराई नहीं है । क्योंकि ये बातें व्यक्ति के निजी फैसले होते हैं जिस पर समाज का कोई हक नहीं होना चाहिए । विवाह पूर्व और बिबाहेत्तर यौन सम्बन्ध में उन्हें कुछ भी गलत नहीं लगा । क्योंकि औरत का अपने शरीर पर हक है कि जिस तरह से और जब चाहे तथा जिसके साथ चाहे सेक्स का आनन्द ले सकती है। उन्होंने कहा कि सभी प्रकार की असमानताएँ पुरुष और स्त्री के बीच प्रेम के खिलाफ पड़ती हैं, दो असमान व्यक्तियों के बीच कभी सच्चा प्यार नहीं हो सकता ।''

इस तरह की उग्रता को बढ़ाने में 'केट मिलेट' की 'सेक्सबल पोलिटिक्स' और 'जर्मन ग्रिअर' की 'फिमेल यूनिक' जैसी पुस्तकों का भी योगदान था । इसमें 'मुक्त यौन सम्बन्धों' तथा समलैंगिता की बकालत की गयी थी। इसके अतिरिक्त महिलाओं की इच्छा के विरूद्ध शरीर को न छूने देने का संकल्प प्रस्तुत किया गया। भले ही छूने वाला उसका पति ही क्यों न हो ? राह पर ले गई घर से बाहर भी पुरुषों का वर्चस्ववादी ढाँचा इतना कठोर था कि उसने औरत को बराबर नहीं माना, इससे सबक लेते हुए यह जरूरी है कि स्त्री के विकास की लड़ाई को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा जाय।

यही कारण है कि अमेरिका सहित तमाम पश्चिमी देशों में अब 'परिवार वर्ष' मनाया जाने लगा है। इस आन्दोलन की सफलताओं-असफलताओं पर परस्पर विरोधी तर्क तथा विद्वानों में इसे लेकर पर्याप्त मतभेद है। कुछ के लिए यह नारी नवीन चेतना का बाहक है तो कुछ औरों के लिए समाज-परिवार को तोड़ने की साजिस । हाँलाकि हर आन्दोलन की कार्य परिणति में अच्छाइयाँ-बुराइयाँ आती रहती हैं और यह विस्तार के साथ स्वभाविक होता है। अतः उसकी समग्रता पर ध्यान देना चाहिए । गाँधीवादी पत्रकार राजकिशोर ने नारीवादी आन्दोलन की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि – ''यह इस आन्दोलन का ही प्रताप है कि आज स्त्री के अधिकारों को व्यापक मान्यता मिली हुई है। वह उसके लिए कारागार नहीं बल्कि अपने व्यक्तित्व को निखारने का एक अवसर है । काम उसकी मजबूरी

नहीं बल्कि अपनी व्यक्तित्व को निखारने का एक अवसर है। काम उसकी मजबूरी नहीं बल्कि अपनी स्वाधीनता अर्जित करने का एक औजार है। वह राजनैतिक व सामाजिक क्षेत्र में भी योगदान दे सकती है। उसे कोई काम करने से सिर्फ इसलिए नहीं रोका जा सकता कि वह स्त्री है। इसका सबसे बड़ा विश्वसनीय प्रमाण इस्लामी समाजों में स्त्रियों की आजादी और बराबरी के लिए संघर्ष हैं । यह सब नारीवादी नारी आन्दोलन के कारण ही सम्भव हुआ है। नारीवादी अपनी ऐतिहासिक भूमिका पर एक दौर पूरा कर चुका है। जिन चिजों पर जोर देने के लिए 50 या 70 के दशक में नारिवादियों को जोर देकर कहना पड़ता था कि हम नारीवादी हैं, वे अब सहजता से उपलब्ध हैं ।''

अपनी पुस्तक 'समकालीन महिला लेखन' में डॉ. ओमप्रकाश शर्मा ने इस विषय की विषद एवं गहन चर्चा करते हुए अन्त में जो लिखा उसे अक्षरशः उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है –''आज भी यह आन्दोलन दुनिया में फैलकर स्त्री को एक जाति के रूप में निरूपित कर जागरूक व एकजुट बनाने की ओर अग्रसर है तथा पुरुष समाज पर नारी के प्रति नजरिए को बदलने के लिए दबाव बना रहा है। यह अलग बात है कि हम देश की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार इसके सरोकार भी अलग-अलग रहे हैं । जो माँगे आन्दोलनकारियों द्वारा उठायी गयी, अब वे समाज की नैसर्गिक व सहज अंग बनती जा रही हैं। फिर भी स्त्रियाँ दुनिया के तमाम क्षेत्रों में बुनियादी नागरिक सुबिधाओं से आज भी बंचित है , अतः इस आन्दोलन की प्रासंगिकता बनी रहेगी । आवयश्यकता सिर्फ इस बात की है कि इसे अपने सामाजिक-सांस्कृतिक जातीय-राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हीं देखा जाना चाहिए । हर देश की सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक विशिष्टता अलग-अलग होती है। अतः इस मुक्ति आंदोलन के सम्बन्ध संदर्भ-सरोकार निजी आवश्यकताओं के आधार पर सफल और सार्थक हो सकते हैं।

तत्वतः भारतीय संदर्भ में स्त्री की स्वतंत्रता का स्वप्न कुप्रथाओं की दासता से

मुक्ति तथा व्यवस्था के दोहरे मानदण्डों की समाप्ति पर निर्भर रहा है। यह उन कुव्यवस्थाओं को समाप्त करने पर जोर देता है, जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों की मानवीयता का पोषण नहीं हो पाता, जबकि पाश्चात्य सन्दर्भ में स्त्रियों की दयनीयता के लिए पुरुषों को ही दोषी ठहराया गया, जिसका जाने-अनजोने शिकार बनकर परिवार सम्बन्ध और समाज बिखंडित हुआ है। बेसक इसमें अन्य कारण भी सम्मिलित है, कुल मिलाकर नारी स्वातंत्र्य आन्दोलन स्त्री के मानवीय रूप को नकारने वाले तत्वों व्यवस्थाओं और व्यक्तियों के खिलाफ है। जिसका उद्देश्य दुनिया की आधी आवादी की बेहतरी से जुड़कर पूरे वैश्विक समाज को सबल समर्थ बनाना ही हो सकता है ।

संदर्भ :

1. कामायनी : जयशंकर प्रसाद, पृ. 17
2. यशोधरा : मैथिलीशर गुप्त, पृ. 26
3. अथर्ववेद - 6/78/3
4. ऋग्वेद - 8/33/19
5. वही, 8/53/4
6. वृहदाण्यक उपनिषद - 1/4/3
7. सुबालोपनिषद, खण्ड -2
8. शतपथ ब्राह्मण - 5/2/1/10
9. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी : डॉ. उषा पाण्डेय, पृ 5
10. ग्रेट विमेन आफ इण्डिया : शशिभूषण दास गुप्त, पृ. 25
11. नारी विवाह पर सदाचार : वाहिद प्रवीण, पृ. 4
12. हिन्दू सिविलाइजेसन : राधा मुखर्जी, पृ. 72
13. ऋग्वेद - 10/27/12
14. ऐतरेय ब्राह्मण - 7/15
15. पोजीसन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन : ए.एस. अल्टेकर, पृ. 35
16. महाभारत - 12/74/9
17. ग्रेट विमेन आफ इण्डिया : शशिभूषण दास गुप्त, पृ. 42
18. विमेन मण्डल प्रिमेटिव बुद्धिज्म : एल. वी. हार्नर, पृ. 19
19. मनुस्मृति, 9/14/15
20. श्रृगांर सतक, पृ. 45
21. मनुस्मृति - 9/14/15
22. ब्रह्मवैवर्त पुराण - 57/18
23. चाण्क्य सूत्र - 362
24. कालिदास युगीन भारत : भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 27
25. भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ. 204
26. लाइफ एण्ड कंशन्स ऑफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान : अशर्फ, पृ. 230
27. इस्लामी कल्चर (पत्रिका) जनवरी, 1951
28. श्रृंखला की कड़ियाँ : महादेवी वर्मा, पृ. 39
29. विमेन आफ इण्डिया : हन्नासेन, पृ. 46
30. विमेन इन मार्डन इण्डिया : नीरा देसाई, पृ. 170
31. महर्षि दयानन्द सरस्वती : हरिश्चन्द्र विद्यालंकार, पृ. 216
32. बसंत लाल मुरार का स्मृति ग्रन्थ : सुमन्त मेहता, पृ. 481

33.द नार्दन इण्डिया (पत्रिका) 29 जून, 1959, पृ. 4
34.इण्डियन इकोनॉमिक्स (प्रथम ग्रन्थ) : जायर बैरी, पृ. 49
35.श्रृंखला की कड़ियाँ : महादेवी वर्मा, पृ. 16
36.विमेन एंड मैरिज इन इण्डिया : थामस, पृ. 195
37.विमेन इन एनसियन्ट एशिया : फार्नवा हाली, पृ 64
38.विमेन ऑफ मार्डन फ्रांस : ह्यूगो पी. धीम, पृ 75
39.विमेन मैन ईक्वल फ्रांस : सर. ए. अब्राहम, पृ. 111
40.द अमेरिकन विमेन : अर्नेस्ट आर ग्रीब्ज, पृ. 328
41.हिन्दू विमेन एंड हर फ्यूचर : चन्द्रकला हाते, पृ. 224
42.सामान्य हिन्दी : डॉ. पृथ्वीनाथ पाण्डेय, पृ 61
43.हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 33
44.अमरकोश - 2/6/2
45.वही, 1/5/67
46.वही, 1/5/67
47.तैतरीय ब्राह्मण - 1/11
48.भारतीय नारी : स्वामी विवेकानन्द, पृ. 76
49.ब्रह्मवैवर्त पुराण , पृ. 15
50.मनुस्मृति - 2/145
51.आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्य में नारी : डॉ. सावित्री, पृ 121
52.हिन्दी उपन्यास सिद्धांत और समीक्षा : डॉ. माखनलाल शर्मा, पृ. 202
53.मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना : डॉ. उषा पाण्डेय, पृ 171
54.वही, पृ. 186
55.कल्याण : नारी अंक, पृ. 130
56.ऋग्वेद - 3/53/6
57.वही, 3/5/34
58.उत्तर रामचरितम : भवभूति, श्लोक-38
59.तैतरीय ब्राह्मण : 3/ 3/3/5
60.ऐतरेयाण्यक - 1/3/5
61.पाणिनी सूत्र -4/1/53
62. निरूक्त : भास्काचार्य, 34/4
63.नारी कल्याण, अंक - 5, पृ. 130
64.कुललालसा : राजकुमार वर्मा, पृ. 150
65.नारी तेरे रूप अनेक : बालकृष्ण बल्दुआ, पृ. 101

66.नारी तेरे रूप अनेक : बालकृष्ण बल्टुआ, पृ. 80
67.ऋग्वेद - 8/3/8
68.अष्टाध्यायी : पाणिनी, पृ. 62
69.मनुस्मृति - 9/130
70.साम-मंत्र ब्राह्मण - 1/3
71.ऋग्वेद - 10/129
72.रघुवंश - कालिदास - 3/34
73.मालविकाग्नि मित्र : कालिदास, 4
74.आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना : डॉ. शैल कुमारी, पृ. 104
75. वही, पृ. 114
76.हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य में नारी भावना : डॉ. विमल मित्तल, पृ. 404
77.नीतिशतक : भर्तृहरि, श्लोक 72
78.ऋग्वेद - 8/33/14
79.शतपथ ब्राह्मण - 5/2/10
80.तैतरीयोपनिषद् - 2/2/2
81.ऋग्वेद - 10/85/46
82.वही, 10/85/25
83.आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना : डॉ. शैल कुमारी, पृ. 15
84.श्रृंखला की कड़ियाँ : महादेवी वर्मा, पृ. 21
85.कल्याण वर्षः श्री रामनाथ सुमन - वर्ष 31, अंक. 10, पृ. 262
86.हिन्दी काव्य में नारी भावना : डॉ. बल्लभ दास तिवारी, पृ. 45
87.कल्याण - नारी विशेषांक, पृ. 235
88.मनुस्मृति - 3/2/4
89.वही, 3/4/6
90.बिखरे फूल : हरनाम सिंह शर्मा, पृ. 5
91.वही, पृ. 5
92.हरिजन : मोहनदास करमचन्द गाँधी, 24:2:1940
93.ऐतरेय ब्राह्मण 2/7/13
94.श्रृंखला की कड़ियाँ : महादेवी वर्मा, पृ. 13
95.अमरकोश 1/5/2
96.वही, 1/7/2
97.नारीवादी विमर्श : राकेश कुमार, पृ. 9
98.वही, पृ. 10

99.समकालीन भारतीय कविता और स्त्री : डॉ. सच्चिदानन्द, पृ. 51
100.आपका जबाव क्या है : कोण्डे पुड़ी निर्मला, पृ. 98
101.वही, पृ. 99
102.Hester Eisenstein, contomporary Fiminist thought , p. 24
103.The elementry structuring of kingshi p: Levi strauss, p. 78
104.आपका जबाव क्या है : कोण्डे पुड़ी निर्मला, पृ. 99
105. पूर्वाग्रह अंक - 104, पृ. 98
106.वही, पृ. 72
107.वही, पृ. 79
108.मेन इन फेमिनिज्म : स्टीफन हीथ, पृ. 4
109.पूर्वाग्रह - अंक - 104, पृ. 59
110.इण्डिया टूडे साहित्य वार्षिकी 1997 : नासिरा शर्मा, पृ. 22
111.पूर्वाग्रह - अंक - 104, पृ. 58
112.औरत के हक में : तस्लीमा नसरीन, पृ. 52
113.पूर्वाग्रह - अंक - 104, पृ. 59
114.श्रृंखला की कड़ियाँ : महादेवी वर्मा, पृ. 38
115.भारतीय नारी : दशा और दिशा : आशारानी ब्होरा, पृ. 95
116.समकालीन महिला लेखन : डॉ. ओमप्रकाश शर्मा, पृ. 100
117.अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशक और हिन्दी पत्रकारिता : मीराकान्त, पृ. 56
118.वही, पृ. 13
119.भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास : दिनानाथ, पृ. 55
120.भारत में स्त्री असमानता : डॉ. गोपा जोशी , पृ. 56
121. वही, पृ. 7
122.ऋग्वेद - 10/27
123.वही, 5/3/7
124.वही, 2/8/9
125.ग्रेट विमेन आफ इण्डिया : डॉ. ए. एस. अल्टेकर, पृ. 42
126.संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 141
127.सुभाषित रत्न संग्रह : सं. रमेश चन्द्र, पृ. 116
128.नारी और समाज : चिरंजीलाल , पृ. 130
129.संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 193
130.मनुस्मृति 9/14-15
131.वही, 9/2-3
132.श्रृंगार शतक, पृ. 45

133.मनुस्मृति - 15/15/4
134.ब्रह्मवैवर्त पुराण - 57/78
135.मनुस्मृति - 5/16/4
136.पद्म पुराण, 49/9
137.भागवत पुराण, 1/4/25
138.विमेन इन एन्सीएन्ट इण्डिया, सी. बेन्डर, पृ. 55
139.विमन इन मार्डन इण्डिया : नीरा देसाई, पृ. 170
140.भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण : भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 264
141.रामचरित मानस : तलसीदास, पृ. 66
142.वही, पृ. 396
143.श्रृंखला की कड़ियाँ : महादेवी वर्मा, पृ. 39
144.सीमोन, पृ. 67
145.उत्तर आधुनिकतावाद : उत्तर संरचनावाद : सुधीश पचौरी, पृ. 36
146.हंस , अंक - 2 1994, पृ. 30
147.जनसत्ता, 30.6.1998
148.नारी स्वातंत्र्य के बदलते रूप : रेणुका नैयर, पृ.15
149.नारी शोषण आइने और आयाम : आशरानी ब्होरा, पृ. 221

तृतीय अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी-पात्र

तृतीय अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी-पात्र

3. क व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी-पात्र

नागार्जुन के उपन्यास साहित्य में व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्रों की अहम भूमिका है। ग्रामीण परिवेश में पली-बढ़ी नारी पात्रों का चरित्र पूर्ण रूप से गँबई किस्म का है। जिसमें सामाजिक अन्तर्द्वन्द एवं रूढ़ियों का प्राबल्य है। उसके बावजूद भी माँ, बहन, बेटी जैसे सम्बन्धों के बीच अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध निर्वाहों के प्रति नारी सचेत है । जिसमें सामाजिक विषमताओं के प्रति लड़ने की भी क्षमता है, तो वहीं सामाजिक विद्रूपता के विरूद्ध आवाज उठाने की साहसिक क्षमता भी है । कर्तव्य निर्वाह क्षेत्र में नारी जहाँ पारिवारिक रूप से एक निश्चित सामाजिक रूढ़ियों को सीमा से बंधी हुई है, तो वहीं व्यक्तिगत रूप से अन्दर ही अन्दर स्वार्थ सिद्धि की भावना से भरी हुई है । किन्तु जहँ नारी विशेष के व्यक्ति चरित्र की बात आती है, वहाँ उसके संघर्ष की पूर्णतः व्याख्या भी प्राप्त होती है। नारी चरित्र के व्यक्तिगत सम्बन्ध-निर्वाहों को नागार्जुन ने बड़ी सहजता से दर्शाया है। पुरानी पीढ़ी की नारी पात्र परम्पराओं के निर्वाह में सम्पूर्ण जीवन का समर्पण करती नजर आती है तो वहीं नयी पीढ़ी उन परम्पराओं के विरूद्ध आवाज उठाने से नहीं चूकते ।

व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्र का संघर्ष नारी चेतना का सशक्त उदाहरण है जो नागार्जुन के उपन्यास साहित्य में विविध सम्बन्धों के बीच उभरकर सामने आता है। माँ के रूप में नारी अगर कुशल बहू का निर्वाह करती नजर आती है, तो वही पति और अन्य पारिवारिक पुरुष सम्बन्धों के प्रति उत्तरदायी भी है । माँ के रूप में अगर उसकी सजगता पुत्र या पुत्री के प्रति संघर्षमयी है तो सास-ससुर के साथ पुरानी परम्पराओं के जकड़ से आहत भी है। मानवीय संवेदना के स्तर पर नागार्जुन के उपन्यासों में ये व्यक्ति चरित्र विशेष मानदण्ड स्थापित करते हैं । जिसमें ग्रामीण नारी पात्रों के जीवन दर्शन का उद्‌घाटन तो

होता ही है, पुरुष वर्चस्ववादिता के विरूद्ध स्वर भी मुखर है । नारी का यह सचेतन रूप एक बहुत बड़े विमर्श के रूप में नयी पीढ़ी का मार्गदर्शन भी करता है।

पुरानी पीढ़ी की नारी पात्राएँ नयी पीढ़ी की नारी पात्राओं के जीवन परिदृश्य में अगर चेतना का चित्र उभारने में सफल नहीं हो पाती तो परम्पराओं के विरूद्ध उनका आक्रोश नयी पीढ़ी को जागने के लिए जागरूक करता है । कहीं-कहीं तो तीन पीढ़ियों का मानसिक अन्तर्द्वन्द परम्परा और उसके विरूद्ध उठायी गयी आवाज जीवन संघर्ष का भयावह रूप तो ले लेता है, परन्तु साथ ही साथ एक नये समाधान के रूप में नयी पीढ़ी को विमर्श भी प्रदान करता है।

'रतिनाथ की चाची' में 'रतिनाथ की चाची' (गौरी) मुख्य नारी पात्र के रूप में तो है ही, साथ-साथ नागार्जुन जी ने ग्रामीण परिवेश में घटने वाली स्वाभाविक घटनाओं में सम्मिलित नारी पात्रों का भी समावेश किया है । जिसमें मुख्य रूप से 'पंण्डिताइन' का व्यक्तिगत चरित्र तो है ही, गौरी की माँ रूपरानी (शशिमुखी) मुख्य पात्रा गौरी की माँ के रूप में गौरी की ननद सुमित्रा और देवरानी चन्द्रमुखी हैं । वर्णित कथा, साहित्य में 'मन्थरा' की भूमिका में 'दमयन्ती' और 'रामपुर वाली चाची' इन्द्रमणि की दोनों पुत्रियाँ 'जनक किशोरी' और 'शकुन्तला', बनारस में रहने वाली सुशीला उमानाथ की बहन 'प्रतिभामा' अर्थात् गौरी की पुत्री इत्यादि नारी पात्र हैं । रतिनाथ के व्यक्तिगत 'सम्बन्धी' नारी पात्र रतिनाथ की 'नानी', दो मामी 'सन्नो की माँ', उमानाथ' की 'पत्नी' और प्रेमिका की भूमिका में 'बागों' भी उपस्थित हैं ।

'रतिनाथ की चाची' में गौरी मुख्य नारी पात्र है। वैधव्य जीवन का संघर्षमयी समय यापन करते हुए युवा काल की फिसलन के चलते अपने देवर 'जयनाथ' के पुत्र की माँ बनने वाली होती है, किन्तु सामाजिक मूल्यों के भय से डर कर मायके चली जाती है, जिस सुख शान्ति की कल्पना करते हुए सहयोग की उम्मीद लिए वह मायके जाती है, उन उम्मीदों पर

पानी तो फिरता ही है, अपने सगे सम्बन्धियों और विशेषकर माँ की वितृष्णा भरी वाणी का शिकार होना पड़ता है। वस्तु-स्थिति समझने के बाद विधवा गौरी की लाचारी को देखते हुए उसकी माँ इसके पेट में पल रह जयनाथ के शिशु का खात्मा करते हुए उसे उबार लेती है।

पंडिताइन का व्यक्तिगत चरित्र अत्यन्त ही साफ-सुथरा है, जो जयनाथ के मानसिक अन्तर्द्वन्द की दूर करने के लिए बार-बार समझाती है – "धिक्कार है तुम्हे। अमरनाथ की माँ और तुम वर्षो से साथ रहते आए हो और आगे भी सारी जिन्दगी साथ कटेगी, यह मुझे विश्वास है । फिर तुम उस बेचारी को अकेली तोप के मुँह पर छोड़ आए हो।"[1]

नारी के प्रति नारी का यह व्यक्तिगत चरित्र परी संवेदना से ओतप्रोत है । जिसमें नारी चेतना का स्वर मुखर है ।

व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्र दमयन्ती (दम्मो फूफी) का एक सुत्रीय कार्यक्रम प्रत्येक परिवार के आँगन में फूट डालने का कार्य है, जिसकी टोली में 'सन्नों की माँ, रामपुरवाली चाची, जनककिशोरी तथा शकुन्तला सम्मिलित हैं – "उमानाथ की माँ व्यभिचारिणी है, पतिता है, भ्रष्टा है, कुलटा है, छिनाल है उससे हमें किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए । बोलचाल बंद, बात-विचार बंद, प्रत्येक व्यवहार बंद। हाँ यनाथ और रतिनाथ, दोनों बाप-पूत यदि प्रायश्चित कर ले तो इस समाज में उनके लिए स्थान हो सकता है, परन्तु उमानाथ की माँ को 'समाज' किसी भी हालत में क्षमा नहीं कर सकता ।"[2] नारी मूल्यों के रक्षा के प्रति दम्मो फूफी की यह उक्ति नारी वर्ग को सम्भालने की चेतावनी देती है तथा स्वयं की रक्षा के लिए एक विमर्श भी ।

'बलचनमा' नामक उपन्यास में व्यक्ति चरित्र के रूप में मुख्य नारी पात्र मलिकाइन **(जमीनदारिन)** ही है । उसका यह शोषण वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। उसका यह शोषण सामन्तवादी विचारधाराओं का विविध रूप उद्घाटित करता है जिसके बीच पुरुष

पात्र और नारी पात्र पिसते हुए नजर आते हैं । 'बलचनमा' की माँ और दादी शोषित वर्ग की नारी पात्र है, इनका अभावग्रस्त जीवन अपने अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष करता हुआ दम तोड़ देता है ।

'बलचनमा' में मलिकाइन (जमीनदारिन) और बलचनमा की माँ और दादी के अलावा फूल बाबू की माँ महेन्द्र बाबू की माँ, राधाबाबू की पत्नी (लवंगलता) तथा कमेन्द्र की पत्नी तथा बलचनमा की बहन रेवनी नौकरानी खबासिन, चुन्नी की पत्नी, बलचनमा की पत्नी सुगनी, और बलचनमा की चाची धनमंती इत्यादि हैं ।

जमीनदारिन की भूमिका में मलिकाइन का व्यक्ति चरित्र अत्यधिक क्रूर हैं । जहाँ सामन्तवाद का बर्चस्ववादी दृष्टिकोण तो है ही, साथ ही मानव संवेदना का दूर-दूर तक जहाँ नामों निशान तक नहीं हैं – ''अरे, यह तो मेरे बखारों को खुबख कर देखा, डेढ़ सारे इस जून, डेढ़ सेर उस जून । छोकरे का पेट तो देखो, कमर से गले तक मानो बखिया है । कैसा बेडौल, कितना भयानक है, मईया री मईया ।''[3]

वर्चस्व की इस भूमिका में जमीनदारिन की व्यक्तिगत छबि ऐतिहासिक तानाशाही से कहीं कम नहीं – ''मर क्यूँ न गया ? बड़े नबाव के नाती हुए है । कहीं बैठकर बाप के साथ कौड़ी भाज रहा होगा और देर हो गई तो घास नहीं मिलती हैं । खुरपी भोथी है, बेट ढीला पड़ गया था, पाचास बहाने बनाता है, मुँह झौसा.............. झाड़ू उठा लाई और पीठ पर सात बार झटाझट बरसा दिए ।''[4]

बलचनमा के सन्दर्भ में कही गई दोनों उक्तियाँ जहाँ जमीनदारिन के क्रूर व्यक्तिगत चरित्र का स्पष्टीकरण करती हैं, वहीं इसका प्रतिरोध करने वाली जहाँ बलचनमा की दादी बोल उठती है – ''नहीं मालिकाइन ऐसी बात न कहिए, मेरा बालचन मुट्ठी भर से अधिक भात नहीं खाता । कोदो, मड़ुआ, मकई, साँवा, कॉवन चाहे जिसकी भी रोटी दे दो खुशी-खुशी खा लेगा ओर दो चूल्लू पानी पीकर संतोष की सांस लेता उठ जाएगा । बड़ा ही

शुभर है, तनिक भी नहीं खलेगा मलिकाइन ।"

नयी पीढ़ी के प्रति नारी को यह सजगता परम्परावाद में हस्ताक्षेप करने की शक्ति भले न रखती हो, किन्तु चेतना स्पष्ट रूप से जागृत है । नागार्जुन ने इस प्रतिरोधक सम्बादों के द्वारा नारी चेतना को एक विशिष्ट रूप दिया है जो नयी पीढ़ी के लिए स्त्रियों द्वारा दिया गया विमर्श ही है – "बलचनमा की माँ शोषकों के व्यभिचार से उबकर अत्यन्त ही दु:खी है और वह उनकी छाया से दूर हो जाना चाहती है। जिन्दगी के प्रति संघर्ष का क्रम जो जारी रहता हैं वह टूटने लगता है और अपने अस्मिता की रक्षा के लिए वह जान देना अच्छा समझती है और कहती है – "बबुआ बलचनमा मर जाना लाख गुना अच्छा है। मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं ....।"[5]

नारी की चेतना, अस्मिता की रक्षा के प्रति जागरूक है और किसी भी कीमत पर उसकी सुरक्षा करने के लिए तत्पर हैं, जो उसकी सबसे बड़ी मूल्य अवधारित सम्पत्ति है। व्यक्ति चरित्र का यह दृश्य नागार्जुन के उपन्यासों में सशक्त चेतना का का दर्शन कराता है, जहाँ नारी सारे षड्यंत्रों को समझती है और उससे जूझने की शक्ति भी उत्पन्न करती है ।

'नई पौध' में व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्रों में मुख्य नारी पात्र और उपन्यास की नायिका विश्वेसरी (विसेसरी) अनमेल विवाह के विरूद्ध लड़ती है और समाज के विभिन्न तत्वों के सहयोग से लड़ने में सफल भी होती है तो वही उसकी माँ रामेश्वरी देवी पुरानी पीढ़ी की परम्परावादी महिला है । सारी विचित्रताओं के बाद भी एक तरफ विधवा होने के चलते सामाजिक विद्रूपता की शिकार तो है ही, किन्तु अपनी पुत्री के जीवन संघर्ष में मूक रहते हुए भी आन्तरिक सहयोग की कोशिश करती हैं परन्तु अपने पिता खोखा पण्डित के बर्चस्ववादी दृष्टिकोण के चलते सफलता नहीं प्राप्त कर पाती । वह यह नहीं चाहती कि उनकी पन्द्रह वर्षीय पुत्री का विवाह साठ वर्ष के बूढ़े वर से हो – "अनमेल विवाह के भयंकर परिणामों की कल्पना से उसकी रग-रग दहक उठी, रोंगटे खड़े हो गये, बेटी को

खींचकर माँ ने धड़कते सीने से सटा लिया । विसेसरी का किशोर कलेवर रामेश्वरी के अधेड़ बाँहों के घेरे में कस गया ।''[6]

व्यक्तिगत रूप से विसेसरी के इस विवाह से उसकी माँ रामेश्वरी अत्यन्त दुःखी है। पुरानी पीढ़ी की वैशम्यताओं को झेलते हुए उनकी जर्जर ह्दय का दारूण दुःख उबल पड़ता है और अपने आश्रयदाता पिता के प्रति इस अनमेल विवाह की सारी जिम्मेदारी थोप देती हैं – ''रामेश्वरी थोड़ी देर अकेले में जाकर चटाई पर औंधी लेट गयी, भाभियों की नजर बचाकर वह बहुत कुछ सोंचती रही, लड़की के जीवन को धूल में मिलाने का उसे क्या अधिकार हैं ? पिता को यह क्या हो गया ? दुल्हे को आने तो दो उस बुड्ढे के माथे पर अंगारे न डाल दूँ तो रामेश्वरी मेरा नाम नहीं .... । आवेश की भाप निकल गयी तो उसे अपनी सामर्थ का ख्याल आया ....? मैं कर क्या सकती हूँ ? चीखूँगी और चिल्लाऊँगी और अपना सर पटकूँगी पिता जी को असह्य होगा तो मुझे किसी कमरे में बन्द करके बाहर से साकल चढ़ा देंगे । शादी तो होकर रहेगी या माहुर का प्रबन्ध करूँ कहीं से और खिला दूँ छोकरी को ।''[7]

यहाँ माँ का व्यक्ति चरित्र मानसिक अन्तर्द्वन्दों से घिरा पड़ा है। एक तरफ मायके में बापू के आश्रय में रह रही रामेश्वरी विधवा होने के चलते असहाय है, और स्वयं में वह सामर्थ्य नहीं कि इन सामाजिक वैषम्यताओं को रोक सके, किन्तु एक माँ का ह्रदय इस अनमेल विवाह के लिए राजी नहीं हैं। किन्तु वह अन्तर्मन से इन रूढ़ियों के विरूद्ध आवाज अवश्य उठाती है । वह नहीं चाहती कि यह विवाह हो । अपनी रोती हुई बेटी का अपनी साड़ी के आँचल के कूट से आँसू पोछ डालती है और उसे थोड़ी देर अकेले में रहने के लिए छोड़कर बाहर चली जाती हैं, किन्तु वह सोचना नहीं बन्द करती – ''माहे और दिगम्बर भला इस ब्याह को कैसे रोकेंगे ? यही बात रामेश्वरी के माथे में घिरनी बनकर नाचने लगी। भला जब दरवाजे पर दुल्हा आकर खड़ा हो जाएगा तो उसे किस मुँह से कोई लौटने को

कहेगा, ऐसा भी कहीं हुआ हैं ?''[8]

एक तरफ माँ होने से नारी का मातृत्व बेटी के हित चिन्ता में लगा हुआ है, तो दूसरी तरफ अभिभावक होने के चलते और अभावों में पलती पिता के आश्रय में जिन्दगी के संघर्ष को देखकर यह सोचती है – ''बाबू (पिता) जब हाथ धर के किसी भल-मानस को उठा लाए हैं तो उसकी और अपनी लाज को अलग-अलग करके थोड़े ही देखा जाएगा .... । पिता की प्रतिष्ठा रामेश्वरी के संकल्प को जड़-मूल से हिला रही थी । .... माँ-बापू अपने जानते संतान को कूँआ में थोड़े ही फेकते हैं ।''[9]

व्यक्ति चरित्र के रूप में माँ के रूप में पुरानी पीढ़ी, नयी पीढ़ी के बेटी के सबल हित चिन्ता में चिन्तित तो हैं, किन्तु विवशता उसे बार-बार अपने अभावों के प्रति सतर्क करती है । परन्तु माँ की चेतना जागृत हो उठती है और इस अनमेल विवाह के विरोध में वह कहती है – ''क्या हुआ ! धन-सम्पदा ही क्या सबसे बड़ी चीज है ? पन्द्रह साल की कच्ची छोकरी, पँचास साल के पकठोस दुल्हा के साथ किस तरह अपनी जिन्दगी काटेगी । .... फिर एक दफे रामेश्वरी के आँखों के आगे अपनी बेटी का मासूम मुखड़ा जोरों से नाच उठा और उसका सिर घूमने लगा फिर एकाएक भौहें तन गयी । अपने आप वह बुदबुदाई, नहीं होगा ! नहीं होगा यह ब्याह ।''[10]

व्यक्ति चरित्र के रूप में माँ का यह व्यक्तित्व सम्पूर्ण नारी जगत को सचेत करता है ओर किसी अत्याचार के बदले चीखने चिल्लाने के अलावा निर्णय लेने की क्षमता के विकास के प्रति संकेत करता है ।

इसके अलावा नारी पात्र में पण्डिताइन और उनकी तीन बहुएँ जो मुख्य नायिका की मामी हैं । दिगम्बर की नानी कान्ता ओर विसेसरी की सखी खंजन हैं, जिनका साधारण पारिवारिक जीवन हैं । कान्ता एक अनब्याही नारी है, किन्तु माहे की भाभी एक क्रान्तिकारी भूमिका में उपस्थित है जो माहे को झगड़ा करने से तो रोकती अवश्य है, किन्तु विसेसरी के

प्रति उनके दिल में कम स्नेह नहीं हैं । मझली बहू भी विसेसरी के इस अनमेल विवाह से खुश नहीं हैं — "यह उसकी कल्पना से परे की बात थी कि – विसेसरी जैसी सोन छड़ी को बूढ़े पीपल की डाल से लटका दिया जाएगा । वह स्वयं एक गरीब ब्राह्मण की बेटी थी, उसका बाप ईमानदार और निर्लोभी पण्डित था । पूर्वजों की अर्जित जमीन थी, पाँच बीघा, दो हट्ठे-कट्ठे बेटे थे । लड़-भिड़कर वे धरती माता की उपासना करते थे । लड़कियाँ एक नहीं तीन थी । मुदा उनमें से एक की भी शादी से उस बामन ने रुपया नहीं बनाया .... मझली बहू की आँखें छलछला आई, गला भारी हो आया ....।"[11]

मझली बहु का व्यक्ति चरित्र इस वर्चस्व के विरूद्ध है, इसलिए वह बूढ़े दुल्हे को देखकर विसेसरी के कम उम्र की चिन्ता से चिन्तित नजर आती है और उस चिन्ता में ही वे स्वयं से सम्बन्धित घटनाओं की पूर्व दीप्ति में चली जाती हैं । किन्तु नारी की सहज चेतना कहीं भी सुप्त नहीं होती और वह इस अनमेल विवाह के विरूद्ध में आन्तरिक रूप से सहयोगी है ।

सहुआइन का व्यक्ति चरित्र का वर्णन उपन्यासकार के लेखनी से कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है – "'सहुआइन बड़ी लछमिनिया थी, जब से विधवा हुई तब से तो उसके भाग मानो खूब खेलने लगे । तिरपित (सहुआइन का बेटा) का बाप सुचित छुटपन से ही पदरोगी था, मिजाज का चिड़चिड़ा और अपने को सबसे बढ़कर बुधिआर समझने वाला, जीते जी सुचिंता ने अपनी घरवाली की एक नहीं चलने दी ।"[12]

यहाँ भी पुरुष वर्चस्व की शिकार सहुआइन एक ऐसे व्यक्ति चरित्र का निर्वाहक है, जो सामाजिक मान्यताओं को अनदेखा कर जीवन यापन करती हैं । 'फतुरी' को सरइसा की नामी तम्बाकू देकर वह 'नचारी' सुना करती है । किन्तु उसका एक स्वरूप और वही देवर के बहुत दिनों गायब होने पर – "सहुआइन भौंहे चढ़ाकर पूछती कौन सा पचमरे धरा हैं वहाँ रजऊली में जो कुकुर की तरह बार-बार दौड़े जाते हो ।" किन्तु सहज रूप से

थके-मादे देवर को स्नेह देने से भी नहीं चूकती – "अच्छा बाबू तुम तनी संभालो - कोल्हू, मैं कुछ ले आऊँ पानी................ वानी.............. नहीं भाभी रहने दो, खा के तो आ रहा हूँ । फिर झूठ ! फिर ! हल्की - मीठी एक-एक चपत देवर के दोनों गालों पर पड़ जाती, स्नेह और ममता का भूखा बाईस-चौबीस साल का अमरित इस पर भाभी के सामने अपने को विछा देता।"

व्यक्ति चरित्र के रूप में विसेसरी नयी पीढ़ी का नेतृत्व करती हैं जिसमें नारी चेतना का स्वर नुखर है, अपने अनमेल विवाह के प्रति वह नाना को धिक्कारती है – "आज नाना एक कसाई को ला रहे है .... धूम-धाम से अपनी नतिनी का जिबह कराएगें।"

विसेसरी के क्रान्तिकारी व्यक्ति चरित्र का पता उस समय चलता है, जब समाज सेवी वाचस्पति से दिगम्बर उसकी प्रशंसा करते हैं – "विसेसरी बड़ी समझदार और बहादुर लड़की है, बोझा बनकर तुम्हारी गर्दन नहीं तोड़ेगी, साथ रखोगे और माकूल ट्रेनिंग दोगे तो अच्छी से अच्छी साथिन बनेगी ।"[13]

स्त्री के व्यति चरित्र में कान्ता का पुरानी पीढ़ी के प्रति आक्रोश सहज नारी चेतना का उद्घाटन करता है, जो मुखिया को फटकारते हुए कहती है – "मगर मैं अब तक क्वाँरी हूँ । दूल्हा होने को कोई राजी नहीं होता ....तुम लोग एक बुड्ढे को ले आए थे । छोकरों ने उस अहमक को खदेड़ दिया । अब वह घूम-घूमकर समूची दुनिया में कहता फिर रहा है, मुखिया की बेटी की सीध में सेंदुर तो मैं भर आया, अब गौना हो चाहे नहीं हो .... जहाँकहीं कोई मुझसे ब्याह करने को तैयार होता है । यह बुड्ढाजाकर उसे रोक देता है । एक-दो नहीं, चार-चार आदमी बुड्ढे के वह कवि बहकावे में आ चुके थे । बाबा, मैं जिन्दगी भर अनब्याही रहूँगी ?

मुखिया बुदबुदा उठा........... नहीं .... नहीं बेटी अबकी बड़ा अच्छा दूल्हा आ रहा हैं तेरे लिए ! तू भला क्वाँरी रहेगी ....?"[14]

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यास में चित्रित नारी पात्र का विविध विमर्शात्मक व्यक्ति चरित्र उभरकर सामने आता है, जो नारी के संघर्षात्मक जीवन के लिए एक विमर्श छोड़ जाता है ।

नागार्जुन के उपन्यास 'दु:खमोचन' में चित्रित नारी पात्र, व्यक्ति चरित्र के रूप में विविध विमर्शात्मक परिदृश्य में उपस्थित हैं। जिसमें नारी की सजग चेतना परम्परागत ढाँचे को, जो उसके हित में नहीं हैं को ध्वस्त करती हुई नजर आती है । नारी व्यक्ति चरित्र के रूप में माया और दुखमोचन की मामी मुख्य भूमिका में है । छोटी बहू, दुखमोचन के छोटे भाई सुखदेव की पत्नी, कंचन की बहन चमकी, हरखू की माँ, रामसागर की स्त्री और माया की माँ नारी व्यक्ति चरित्र तथा हरखू की पत्नी और उसकी माँ इत्यादि हैं । नयी पीढ़ी का चेतनागत स्वरूप सामाजिक विद्रूपताओं से लड़ता हुआ, नारी को विमर्शात्मक सम्बल प्रदान करता है । स्वाभिमान और सच्चाई पर जीती पुरानी पीढ़ी की धार्मिक आस्था लाख अभावों के बाद भी टूटने से बच जाती है। जो नयी पीढ़ी की स्त्रीत्ववादी विचारधारा में जीती हरखू की माँ के रूप में देखने को मिलता है – "हाथ-पैर धोकर दुखमोचन चारपायी पर बैठे ही थे कि एक औरत सामने आकर खड़ी हो गया, माथे पर गठरी लिए हुए, छोटी सी लड़की थी बगल में। .... कौन है ?

मैं हूँ सरकार ! हरखू की माँ ! अनाज वापस लाई हूँ ....।

इसारा पाकर लड़की ने बरामदे पर गठरी दुखमोचन के सामने रख दी ।

उन्होंने पूछा - क्या बात है ?

बुढ़िया बोली - सरकार, पच्चीस रुपया मनिआर्डर आया है आज .... अब मैं हाट-बजार से अनाज खरीद लाऊँगी । यह गेहूँ किसी दूसरे को दीजिएगा मालिक हरखू की माँ का यह इमान देखकर दुखमोचन दंग रह गये .... । अंधेरे में बुढ़िया या लड़की किसी का चेहरा सूझ नहीं रहा था । .... आखिर बुढ़िया से दुखमोचन ने कहा –

नाम तो अब दर्ज हो चुका है । कौन वापस लेगा ? ले जा अपना अनाज तू .... ।

हरखू की माँ आगे बढ़आयी बरामदे से सटकर खड़ी हुई और चाहा कि दुखमोचन के पैर पकड़ ले । .... दुहाई मालिक की । दुहाई सरकार की । यह अनाज वापस रख लिजिए । यह मामूली गेहूँ नहीं है कि आसानी से हजम होगा, धरम का अनाज है मालिक अब इस वक्त मैं झूठ कैसे कहूँ की हमारे घर में कुछ नहीं है, पच्चीस रुपया है हाथ पर । दो पौने दो मन गेहूँ हुआ सरकार तो झूठ-मूठ में कैसे कहूँ की छटाक भर भी दाना नहीं है घर में । .... टोकरी में गेहूँ डालकर बुढ़िया ने गठरी वाला कपड़ा साथ लायी लड़की को थमा दिया और उलटे आशीष देते हुए लौट पड़ी ।

पुरानी पीढ़ी की मूल्यों के प्रति सचेत हरखू की माँ नयी पीढ़ी में मूल्यागत स्थापना की घोषणा करती है जो लाख अभावों के होते हुए भी जीवन की संचित ईमानदारी को खोना पसन्द नहीं करती । स्त्री जगत की यह चेतना केवल स्त्री समुदाय की ही नहीं बल्कि पूरे समाज को व्यक्ति चरित्र के रूप में एक नया विमर्श सामने रखती है।

माया नयी पीढ़ी की जागरूक नारी व्यक्ति चरित्र है, वह समाज की सारी रूढ़ियों को नजर अंदाज करते हुए विधवा विवाह के प्रति सामाजिक वैशम्यता को नकारते हुए नयी सोच के अन्तर्गत सारी विद्रूपताओं के जाल से निकलकर एक विधवा होने के बावजूद भी कुपिल जैसे युवक से विवाह कर लेती है। दोनों मिलकर समाज सेवा करते हैं और नयी पीढ़ी को सामाजिक विद्रूपताओं के विरूद्ध लड़ने का सन्देश देते हैं ।

"बेनीमाधव की स्त्री अर्थात् माया की मँ उसे यह सम्बन्ध बिल्कुल नहीं जचा । प्राचीन संस्कारों में पली हुई माँ एक ओर थी, दूसरी ओर थी लड़की के जीवन को सुखमय देखने की लालसा में, असवर्ण विवाह तथा पुनर्विवाह का प्रस्ताव कबूल करने वाली माँ .... एक ही बुढ़िया के अन्दर दो माताएँ थी । दोनों में डटकर संघर्ष हुआ था और आखिर में यह दूसरी माँ ही जीत गयी थी ।"[15]

नागार्जुन द्वारा चित्रित नारी व्यक्ति चरित्र में माया की माँ का यह मानसिक अन्तर्द्वन्द्व प्राचीन मूल्यों के प्रति सजग तो अवश्य है किन्तु नारी के अधिकारों की मार्ग के प्रति अत्यन्त ही सचेत भी, जो सारी रूढ़ियों को तोड़कर अपनी पुत्री के हक में सोचती हैं क्योंकि जब समाज में एक विधुर व्यक्ति को कई विवाह करने के अधिकार प्राप्त हो सकते हैं तो एक विधवा नारी को एक विवाह करने की मान्यता क्यों नहीं ?

कंचन की बहन चमकी समाज के सेवा में दुखमोचन का सहयोग करती है । समाज सेवी और राजनीतिक सरोकारियों को गुड़ का सर्बत पिलाकर यह साबित करती है कि नारी भी व्यक्तिगत रूप से समाज सेवा के क्षेत्र में अपनी हिस्सेदारी उतनी ही तत्परता से दिखा सकती है । जितनी तत्परता से अन्य ।

रामसागर की स्त्री और माया ने टमका कोइली में दक्षिण तरफ बनने वाली सड़क में लगे मजदूरों को नाश्ता और दोनों जून का भोजन बनाने का जिम्मा लेकर यह साबित कर दिया कि समाज सेवा में नारी भी पुरुष के कन्धों से कन्धा मिलाकर चल सकती है । उनकी मदद करने वाली चमकी अपर्णा और पद्मा भी पीछे नहीं है, किन्तु इस पूरे कार्यक्रम में सुग्गी बुआ की याद सबको सताती रही, क्योंकि वे नतिनी के लड़के के कन-छेदन में मेहमानी करने चली गई थीं । सुग्गी बुआ जैसे नारी चरित्र का अभाव इन पूरे नारी चरित्रों को खलता है, इससे यह साबित होता है कि सुग्गी बुआ जैसे व्यक्ति चरित्र नारी पात्रों के जागरूक विमर्शात्मक पहलू को पूरे तौर से अपने में समेटे हुए हैं ।

इस प्रकार नागार्जुन का यह उपन्यास व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्रों की सामाजिक चेतना, आधिकारिक चेतना और मूल्यात्मक चेतना के प्रति नया विमर्श लेकर उपस्थित है ।

'बाबा बटेसरनाथ' में वैसे तो नारी पात्रों का अत्यन्त ही अभाव है । किन्तु व्यक्ति चरित्र के रूप में जयकिसुन की दादी ही एक मात्र है । और संकेत रूप में 'महारानी

विक्टोरिया' का व्यक्ति चरित्र उभर कर आया है। महारानी विक्टोरिया का व्यक्ति चरित्र राजशाही सामन्तवादी विचारधारा को लेकर है। जिसके तहत वह किसी वर्ग विशेष या देश विशेष पर ही राज्य नहीं करती, वरण सम्पूर्ण विश्व पर आधिपत्य स्थापित करने की कोशिश करती है। जबकि 'बाबा बटेसरनाथ' के माध्यम से नागार्जुन ने रूपवली ग्राम के सामाजिक आर्थिक सम्बन्धों का जो वर्णन किया है, जिससे परम्पराएँ एवं प्रथाएँ अपना वर्चस्व स्थापित किए हुए हैं । उसमें जयकिसुन की दादी जैसी नारी पात्र का व्यक्ति चरित्र उभर कर सामने आया है। वह अत्यन्त ही अग्रसोची और जागरूक किस्म की नारी पात्रों में स्थान रखती है । अकाल के समय को ज्ञात कर वह भाँप जाती है कि गाँव में अकाल पड़ने वाला है और व्यक्ति खाने-खाने बिना मरेंगे, इसलिए वह सुरक्षित खाद्य सामग्री संचित करके रख लेती है। उसके इस संचयी स्वभाव पर उसका पति चिढ़ता है और उसके मायके वालों को गाली देते हुए दरिद्र तो बनाता ही हैं साथ ही उसके इस व्यवहार पर हँसता भी है । किन्तु 'बाबा बटेसरनाथ' के अनुसार वही संचित खाद्य सामग्री अकाल के समय में प्राण रक्षक साबित होती है। इस तरह दादी के माध्यम से गृहस्थाश्रम के सारे बिन्दुओं में पारंगत एक सशक्त जागरूक नारी पात्र का व्यक्ति चरित्र उभर कर सामने आता है जिसका नागार्जुन ने बड़े उचित कलेवर के साथ वर्णन किया है ।

वैसे ग्राम्य इतिहास को उठाने वाले बाबा नागार्जुन के इस उपन्यास में धार्मिक आस्थाओं के बीच जीने वाली ग्राम्य नारियों का सहज आस्थाप्रद व्यक्ति चरित्र यदा-कदा प्राप्त हुआ है। जिसमें त्यौहार और उत्सवों के बीच नारी पात्रों द्वारा 'बाबा बटेसरनाथ' की पूजा धूम-धाम से होती है। यह धार्मिक आस्था जिसमें ग्राम्य नारियाँ अपने पूर्ण मनोयोग से लगी हुई है । एक विशिष्ट आस्तिक विचारधाराओं का नेतृत्व करती हैं । जिसमें जीवन के संघर्षों को भूलाकर एक आध्यात्मिक आस्था में अपने मन को लगाना पूर्ण मनोवैज्ञानिकता का परिचायक है, किन्तु राजनीतिक छल छद्म को समझने वाली महिला व्यक्ति चरित्र का वर्णन

भी यदा-कदा प्राप्त होता है। जेल से छूटकर आने वाले स्वराजियों के स्वास्थ्य पर जब जयकिसुन की माँ टिप्पणी करती है तो दयानाथ, बीरभद्र इत्यादि कहते हैं कि हम जेल की रोटी खाकर काफी मोटे तगड़े हो गये हैं, तुम भी जेल चलोगी तो हट्ठी-कट्ठी हो जाओगी। किन्तु अंग्रेजी प्रशासन को अत्याचारों, नितियों से परिचित जयकिसुन की माँ कहती है कि भला जेल जाने से कोई मोटा-तगड़ा होता है।

नारी पात्र के इस जागरूक बिन्दुओं को सामने लाकर नागार्जुन ने स्त्री वर्ग के तत्कालीन चेतना का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। समय की व्यवस्था से परिचित नारी पात्रों में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक चेतना विद्यमान है, जो ग्रामीण परिवेश में जीवन यापन करने वाला नारियों के लिए उचित विमर्श सिद्ध होता है।

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्र के व्यक्ति चरित्र के रूप में 'उगनी' का विशिष्ट स्थान है जो 'उग्रतारा' नामक उपन्यास की मुख्य नारी पात्र है। उपन्यास की कथा 'उगनी' अर्थात् 'उग्रतारा' के अनमेल विवाह से उपजे कठिनाइयों और परेशानियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। जिस दुष्परिणामों को झेलती 'उग्रतारा' की जिन्दगी अत्यन्त ही नारकीय बन जाती है, किन्तु नर्मदेश्वर की भाभी की जागरूकता 'उग्रतारा' की जिन्दगी सम्भालने में काफी मददगार सिद्ध होती है जो उस नारकीय जीवन से उग्रतारा को बाहर लाकर पूर्व प्रकाश में जीने का सुख प्रदान करती है, जो नारी के प्रति जागरूक नारी का विमर्शात्मक सहयोग है।

व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्रों में नर्मदेश्वर की भाभी मुख्य नायिका उग्रतारा के जीवन पद्धति को बदलने में कारगर साबित होती है, चूँकि अनमेल विवाह को शिकार उगनी (उग्रतारा) बाल विधवा है। पूर्व अवस्था में कामेश्वर के प्रति आकृष्ट होती है, किन्तु घर से निकलने के उपरान्त विधवा विवाह के विरोधी वर्चस्ववादियों द्वारा फँसाकर जेल भेज देने से कामेश्वर और उगनी को क्रमशः नौ और तीन महीने की सजा काटनी पड़ती है।

तीन महीने के बाद जेल से निकली उगनी असहाय हो जाती है, न चाहते हुए भभीखन सिंह से समझौता कर अनमेल विवाह की त्रासदी झेलनी पड़ती है, क्योंकि भभीखन सिंह और उगनी के उम्र में पुत्री और बेटी का अन्तर है । नौ महीने के बाद जेल से निकलने पर कामेश्वर के तलाश से उगनी मिलती है, किन्तु वह भभीखन के पुत्र की माँ बनने वाली है। इस अवस्था में नर्मदेश्वर की भाभी के पहल पर कामेश्वर उगनी को घर लाता है – ''भाभी ने दोनों को आमने-सामने बैठा दिया, नीचे फर्श पर काला कंबल विछा था । दोनों एक दूसरे की ओर रूख किए बैठे थे । उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि भाभी यह कर क्या रही है । इधर-उधर आठ-दस अगरबत्तियाँ सुलग उठी । कमरे के अंदर चंदन का सौरभ फैलने लगा । जाड़े की खुशगवार धूप तिरछे पड़ रही थी और बन्द होने पर भी रोशनदान के शीशे अन्दर प्रकाश की परछाइयाँ बरसा रहे थे, साथ-साथ सुखद गर्मी भी आ रही थी।

ऊपर फ्रेमों में मढ़े तीन-चार फोटो टँगे थे, सभी के सभी भाभी की बहन और बहनोई के पारिवारिक चेहरे थे । इनमें से किसी को उगनी ने नहीं देखा था । दो खूबसूरत कलेंडर भी निगाहों को अपनी तरफ खींच रहे थे । कामेश्वर ने हँसकर पूछा – ''कौन-सी कसरत करवा रही हो भाभी, बता भी तो दो ।'' उगनी गम्भीर हो रही थी, उसने भी भाभी की ओर देखा ।

सिंदूर भरी कटोरी सामने रखकर भाभी बोली – ''आज यह विधि पूरी होगी । मैं पुरोहित हूँ लो ! चुटकी में सिंदूर लो ! और उग्रतारा की सींध भर दो बाबू ! उठो...........।'' कामेश्वर ने चुपचाप भाभी की आज्ञा का पालन किया ।

उगनी की आँखों में इतने अधिक आँसू छलक आए थे कि बेचारी को कुछ भी दिखाई न दे रहा था ।

दोनों ने उठकर भाभी को बारी-बारी से प्रणाम किया, अच्छी तरह से पैर छूकर भाभी ने आशीष दी – ''दीर्घायु भव ! सौभाग्यवती भव !!'' दाहिना हाथ उगनी और कामेश्वर

की पीठ पर फिरता रहा, जाने कहाँ से भाभी दो अँगूठियाँ निकाल लाई बोली – "एक-दूसरे को पहना दो । फिर मिसरी का एक-एक टुकड़ा थमा दिया ।"[16]

परम्पराओं के बन्धन को तोड़कर रूढ़िवादी विचारधाराओं का विरोध करते हुए उगनी का विवाह करना भाभी के सशक्त नारी चेतना का आयाम प्रस्तुत करता है । यह घटना क्रम वर्चस्ववाद की अंगूठा दिखाता हुआ नारी का यह चेतनागत व्यक्ति चरित्र नारी के अधिकारों की प्राप्ति के प्रति सफलता का मंत्र फूँकता है और अपने तरह की जिन्दगी जीने के लिए नारी की स्वतंत्रता का उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

व्यक्ति चरित्र के रूप में गीता की माँ पुरानी पीढ़ी के नारी पात्रों का नेतृत्व करती है और यह रूढ़िवादी परम्पराओं का निर्वाहक तो है ही, सामाजिक विद्रूपताओं की निर्वाहक भी । उगनी और गीता का संग उसे रास नहीं और पूर्वाग्रह से ग्रसित गीता की माँ इसका विरोध भी करती है – "गीता की माँ मन ही मन बोली – कहाँ से यह प्लेग का चूहा आ गई? इसे क्या हमारी छाती पर ही उछल कूद मचानी थी ? एक शब्द भी मूँह से निकला तो राँड़ सुन लेती है। कुछ न भी बोलो तो बच्चों से खोद-खोद के निकाल लेती है, भारी मुसीबत में पड़ी हूँ । कहीं दूसरे जगह डेरा भी तो नहीं मिलेगा, उनसे कहूँगी तो लाठी उठा लेंगे ।"[17]

किन्तु इन सारी विषमताओं के बावजूद नयी पीढ़ी की गीता नारी चेतना का सतर्क रूप प्रस्तुत करती है । जिसमें वह नारी के सन्दर्भ में सोचती हुई उगनी के इस वैवाहिक पहलू की तरफ ध्यान आकृष्ट करती है –

"क्या देख रही थी रानी ?"

"और क्या देखूँगी !"

"अचल रहे अहिवात तुम्हारी ?"

"हाँ, जब तक गंगा-यमुना की धारा !!"

''झूठ''

''नहीं चाची, झूठ नहीं ....''

''क्या बकती हैं ''

''बकती हूँ ''

''अपने चाचा को मूँछो की नहीं देखा है ? गीता उदास हो गई । उसकी रग-रग डूबने लगी, वह सोचती रही, गंगा-यमुना चाहे मिलकर जोर लगाएं तो भी चाचा की जवानी वापस नहीं लौटा सकती वे । क्या जरूरत थी शादी की ? हाँ, थी जरूरत । छह महीने बाद चाचा किसी के पिता होंगे, शादी न होती तो कैसे पिता होते ? .... उगनी ने उसे सुस्त देखा तो बाँहों में ले लिया । मुँह बना-बनाकर हँसने लगी, बोली – ''अबके दूल्हा जी आएंगे तो मैं उनसे खुद ही कहूँगी, हमारी गितिया को आप इतना क्यों तरसाते हैं ? आप उसे ले क्यों नहीं जाते ? कब तक अकेली रहेगी ? सीता का वनवास तो कानों से सुना था, गीता का वनवास अब आँखों से देख रही हूँ।'' गीता विनोद की बातों से खिल उठी । आँखों के कोए चमकने लगे, लाज की थिरकन से बेताब होकर अपने को उसने छुड़ा लिया, बाहु-बंधन से मुक्त होकर वह भाग ही गई ।''[18]

परम्पराओं के निर्वाह में जकड़ी और अनमेल विवाह की त्रासदी झेलती मानो अपनी भविष्य के परिणाम के प्रति स्वयं के अन्दर चेतना जागृत करती हुई सी दिखायी देती है। गीता उसके सुहाग की निर्मल गंगा-यमुना संस्कृति से लम्बी एहवात धारण करने की कामना करती है किन्तु उगनी वास्तुविकला से परिचित और सचेत जान पड़ती है तभी तो कही है – ''सुन रे पगली देख ले इन हाथों को .... अभी तक तो एक ही चूड़ी फूटी है आगे सारी की सारी फूट जाएगी । इनके फूटने न फूटने में क्या रखा है ? हाँ, भगवान करे, किसी की तकदीर न फूटे ।''[19]

इस प्रकार व्यक्ति चरित्र के रूप में रूढ़ियों के प्रति यह विद्रोही स्वर नारी चेतना

को सामने लाता है । एक वृद्ध पति की किशोरी पत्नी अच्छी तरह जानती है कि उसका यह पति जीवन भर उसका साथ नहीं दे सकता तो गलतफहमी में पड़कर अखण्ड एहवात की कामना ही भला क्यों करे । 'उग्रतारा' की यह नारी चेतना सम्पूर्ण समाज को एक विमर्श प्रदान करता है । जिसमें कल्पनाओं से उबरकर नारी वास्तविकता में जाने का प्रयास करे यह संदेश भी प्राप्त होता है ।

'वरूण के बेटे' में व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्रों की मुख्य भूमिका में 'माधुरी' है जो पुरुष वर्चस्ववादी समाज के अत्याचारों को झेल नहीं पाती और विवाहिता होने के बावजूद भी ससुराल छोड़कर मायके वापस चली आती है। क्योंकि यहाँ नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत है और वह घुटन भरी जिन्दगी जीने से अच्छा उस परिवेश से बाहर निकलना ही उचित समझती है ।

अभावों में जीती जिंदगी माधुरी की माँ का संवेदनाओं से खाली नहीं है । एक नारी का सहज हृदय चेतन अपनी बेटी के लिए सजग और सचेत है – "माधुरी की माँ की आँखें भर आयी, फड़कते होठ फैल गये, बड़ी मुश्किल से ये शब्द निकले – "और हमारी सोनछड़ी की जो सराहती वही इस धरती पर नहीं रही, चली गयी सरगौली हाट ! ससुर है तो बुढ़वा ताड़ी पीकर धुत्त बना रहता है । बहिना फीकीर के मारे पलकों से नींद उड़ गयी है हमारी ....।"[20]

माँ के रूप में सजग नारी की चेतना जहाँ उसके भविष्य की मंगल कामना करती है, वहीं उसके ससुराल से लौट आने पर अपनी सारी खींझ उसी पर उतारती है – "संदूकची से एक अधपुरानी साड़ी निकालकर माँ से पहनने को कहा तो वह बड़बड़ाने लगी; छिनाल कहीं की । क्या बिगड़ता है ! मैं ऐसी ही जाऊँगी ! रानीजी की बातें तो सुने कोई आके – लाई है अपने खसम की कमाई में से एक सूत भी ?.......... गुस्सा तो मधुरी के भी जोरों का आया लेकिन सारी उबाल वह पी गई । ससुराल से भागकर ही तो आई थी बस

आ भर गई थी । पहनावे में हरे फूलों की किनारियों वाली साड़ी मात्र देह के साथ लाई थी। गले में हँसली, बाँहों में बाजू बंद कलाइयों में मरोड़दार कंगन पैरों में साटन .... अपने ये गहने उसे प्रिय थे, इन्हें हमेशा पहने रहती सो ये भी साथ आ गए थे । कड़े नहीं ला सकी थी । .... अब इस वक्त रोगही और चिड़चिड़े मिजाज वाली माँ से भला वह क्या बतकुट्टन करे ! चुपचाप शीशे धोती रही ।"[21]

माँ का यह द्वन्दात्मक उथल-पुथल समाज के प्रति विशेष आस्थावान है । किन्तु अपने आप में विचित्रता पैदा करता इसका यह मानसिक अन्तर्द्वन्द्व नारी के उचित अधिकारों का माँग प्रस्तुत करता है। जो व्यक्ति पात्र के रूप में नारी चरित्र के मानसिकता का सरल दृश्य है ।

स्त्री पात्र में बुढ़िया भोला की माँ है और मुंगल की दादी है। मोदिनी भाभी, जितिया बुआ, सकुन्ती बहन तथा मधुरी की बहन ईशा इत्यादि उपस्थित हैं ।

मछुआरों की जिन्दगी पर आधारित इसमें ग्रामीण जनता के जीवन संघर्ष का वर्णन है। साथ ही साथ मंगल, माधुरी प्रेम प्रसंग प्रमुख है।

अपने जीवन के प्रति सचेत और सजग माधुरी में चेतनागत स्वर फट पड़ते हैं और वह सारे प्रेम प्रसंगों को किनारे कर मंगल को समझाते हैं – "मंगल कभी यह भी सोचा है कि मोरंग की जो सुन्दरी सुशीला तरूणी तुम्हारी गृहलक्ष्मी होकर आयी है, इसी तरह उसने भी अपने प्रेमी को समझा-बूझा दिया होगा ....मुझे भूल जाओ मंगल ....!"[22]

मंगल के अतिक्रमण करने पर माधुरी रूपी नारी बोल उठती है –"देखो मंगल, अब हम छोकरी-छोकरा नहीं रहे । धूल-मिट्टी के बचकाने खेल काफी खेल चुके । सयाने समझकर माँ-बाप और सास-ससुर ने तुम पर जो जिम्मेदारी सौंपी है उससे जी चुराना कायरता होगी । तुम्हें अपनी घरवाली के प्रति बफादार रहना है, मुझे अपने घर वाले के प्रति। गाँव-गँवई के हम सीधे-सादे लोग ठहरे, हमारा प्रेम नगर कहीं समाज से अलग या,

संसार से बाहर आबाद हुआ है ? सुनती हूँ, बड़े आदमी जब और कामों से उब उठते हैं तो दिल के टुकड़े इधर-उधर फेंका करते हैं और दसियों घर बर्बाद कर छोड़ते हैं । मैं तुम्हारा घर बर्बाद करना नहीं चाहती, मंगल मैं नहीं चाहती कि एक औरत की सिन्दूरी माँग पर कालिख पोतती रहूँ ....।''[23]

सम्बन्धों के निर्वाह के प्रति माधुरी की यह चेतना समाज में व्याप्त विविधताओं के प्रति संकेत तो करती ही है, साथ ही माधुरी की बुद्धिमत्ता एवं त्याग के रूप में नारी जगत के सामने एक विमर्श परोसती है ।

ससुराल से लौटकर आने के बाद राजनीति और समाज सेवा में उतर पड़ती है और गढ़पोखर पर मछुआरों के अधिकारों के माँग के लिए इंकलाबाद ! जिन्दाबाद ! के नारे लगाते हुए एक जन जागरण प्रस्तुत करती है। इस तरह एक जन समुदाय का नेतृत्व कर माधुरी नारी चेतना का उदाहरण प्रस्तुत करती है। नागार्जुन ने माधुरी की जबर्दस्त चरित्र का कुछ इस तरह वर्णन किया है – ''उसके दिमाग में एक युवक मछुए का डरपोक चेहरा नाच उठा .... अपने बोड़म पति का प्रभावहीन मुखड़ा । .... कुसुम कक्कड़ का दीप्त मुखमंडल याद आया । ''लात मारो सालों की - उसने कहा था । .... मनुहार से गोली मंगल की आँखें .... गिड़गिड़ाता हुआ चुल्हाई .... नहीं अब वह कभी उस नशाखोर बुड्ढे की लात-वात बर्दाश्त करने नहीं जाएगी .... फिर से शादी कर लेगी किसी दिलेर - नेकचलन और मेहनतकश जवान से .... और, बगैर मर्द के कोई औरत अकेली जिंदगी नहीं गुजार सकती है क्या ....?''[24] माधुरी का यह अन्तर्द्वन्द नारी की सजग चेतना का बहता प्रभाव है, जिसमें पुरुष वर्चस्व के विरूद्ध कड़ा से कड़ा कदम उठाया गया है और माधुरी जैसी नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग हुई है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं नागार्जुन के उपन्यासों में व्यक्ति चरित्र के रूप में उपस्थित नारी पात्र समाज के सामने क्रान्तिकारी रूप में उपस्थित हैं और समाज की वर्चस्व

के विरूद्ध लड़ती हुई नारी की चेतना शक्ति का दर्शन करती है जो नारी वर्ग के जटिल समस्याओं के समाधान हेतु नया विमर्श देता है।

'कुम्भीपाक' नामक उपन्यास में व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्रों का नेतृत्व करने वाली इन्दिरा (भुवनेश्वरी) भी जीवन-संघर्ष के विविध पहलुओं से गुजरती है । किन्तु निर्मला के चेतनागत सहयोग से नया जीवन प्राप्त करती है, जिसमें निर्मला की भाभी रंजना की अहम् भूमिका है ।

क्योंकि यह उपन्यास वेश्याओं के जीवन पर आधारित है। जिसमें पुरुष वर्चस्ववादी समाज का भ्रष्ट चित्र उभरकर सामने आया है । नारियों के शोषण पर आधारित देहवादी विचारधारा उभकर सामने आती है, जो समाज सेवा के नाम पर कलंक का धब्बा छोड़ जाती है। बहला-फुसलाकर ले जायी गयी इन्दिरा (भुवनेश्वरी) के छद्म नाम से आश्रम में रहती है और वहाँ समाज का विद्रूप चेहरा उसके नजर में आता है, जहाँ न ही घर का या गाँव का प्रेम प्रसंग है और ना ही प्रेमी मुगल की त्याग और तपस्या जबकि वहाँ एक बिड़म्बित समाज का नंगा नाच प्रस्तुत हैं ।

कम्पाउन्डर की पत्नी निर्मला, पड़ोसिन, प्रतिभामा उम्मी की माँ और बुआ, निर्मला की भाभी रंजना, महीम की पत्नी और नहीम की माँ इत्यादि के द्वारा नागार्जुन जी ने (कुम्भीपाक) के नारी संसार का सृजन किया है । धोखे से आश्रम में लायी गयी भुवनेश्वरी की व्यथा को समझते हुए उसे बाहर निकालने का प्रयास जारी रखती है। व्यक्ति चरित्र के निर्माण में नागार्जुन जी ने नारी पात्रों के सहज स्वभाव का वर्णन किया है – ''कम्पाउन्डर की बीबी ने दिल ही दिल में अपने से कहा, 'छिनाल कहीं की' उड़ती चिड़िया की पूँछ में हल्दी लगाने वाली राँड़ । किस कदर बात बनाती है .... फूफा जी पोस्टमास्टर थे । मामा जी मिनिस्टर थे । चुड़ैल कहीं की .... ।''[25]

भुवन की बातों की सत्यता और असत्यता से परिचित निर्मला समझ जाती है कि

भुवनेश्वरी झूठ बोल रही है, किन्तु भुवनेश्वरी की भी शंका निर्मला के प्रति वैसी ही बनी है, जैसे निर्मला का भुवनेश्वरी के प्रति । मन ही मन भुवनेश्वरी कहती गयी – "और तेरे पास नित नये छैले आते हैं ठीठोली और खिलखिलाहट .... कमीज के कालर में सिन्दूर का दाग इत्र की खुशबू और रेशमी रूमाले गठर में चमकते हुए चूड़ीयों के टुकड़े ....।"[26]

सहज स्वाभाविकता के बीच भी उपन्यासकार की दृष्टि चूकती नहीं हैं । नारी समाज के सृजन में भावों के समावेश के साथ चाहे जो कुछ भी घटनाएँ घटी है, किन्तु निर्मला की जागृत नारी चेतना भुवन की वास्तविकता से परिचित होती है। भुवन की पेशोपेश में देखकर वह आगे बढ़ आयी, बाहों में लेकर छाती से लगा लिया । भीगी आवाज में कहने लगी – "ठीक है कि मैं तेरे लिए ज्यादा कुछ कर नहीं सकता, मामूली हैसियत है हमारी, लेकिन तुझे मैं सगी बहन का प्यार जरूर दे सकूँगा .... । जाने किन मुसीबतों ने तुझे यहाँ तक पहुँचाया है । जाने किस्मत तुझे कहाँ-कहाँ भटकाएगी, एक बार बिछुड़कर फिर दुबारा जाने हम कब मिल पाएंगे । .... उसकी आँखो में आँसू बहे ।"[27]

अधिकारों के प्रति सजग निर्मला का व्यक्तित्व केवल सम्बन्धों तक ही सीमित नहीं है, वह अगर भुवन को बहन मानती है, तो उससे भी कहीं ज्यादा एक नारी के प्रति नारी का चेतनागत चरित्र और सजग जागृत स्वरूप भी उभरकर सामने आता है। तभी तो भुवनेश्वरी की कलाई पकड़कर वह दृढ़तापूर्वक कहती है – "अब तुझे कोई बेच नहीं सकता ना ही खरीद सकता है, तुझपर तो अब मेरा ही हक है । मैंने तुझे अपना दिल देकर खरीद लिया है। देखूँ, कौन मेरी बहन का गला काटता है।"[28]

नारी के प्रति नारी का यह त्याग व्यक्ति चरित्र के रूप में नागार्जुन के उपन्यासों में स्त्री पात्रों का, वर्चस्व के विरूद्ध लड़ने की शक्ति का संदेश देता है, जिससे समाज को यह विमर्श प्राप्त होता है कि नारी, नारी की डूबती जिंदगी को उबारने में अत्यन्त ही सफल साबित होगी और यही कहीं सामन्तवादी वर्चस्व के चंगुल से बाहर आने का यह सबसे

सफल तरीका है ।

व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्रों में उम्मी की माँ का जीवन चरित्र भी काफी विविधताओं से भरा पड़ा है, पति को नजरअंदाज करते हुए जिस व्यक्ति से वह प्रेम करती है, उसकी बेटी भी उसी व्यक्ति से प्रेम करने लगी है। इस तरह अपने माँ के प्रेमी का पुत्र अपने पेट में पालने लगती है, यह सब देखकर उम्मी की माँ सन्नाटे में आ जाती है, किन्तु माँ के चरित्र का पता चलने पर उम्मी अपने पति को छोड़कर पहले पिता के पास वापस चली जाती है । इस जटिल अबैध सम्बन्धों के बीच नारी के कई चेतनागत स्वरूप सामने आते हैं। उम्मी क्रान्तिकारी रूप से अपने पति का त्याग कर चली जाती है। उम्मी के पति और अपने पूर्व प्रेमी के साथ रहने वाली उम्मी की माँ को दुत्कार के सिवा ओर कुछ नहीं मिलता तभी तो वह आशंक की कहानी में स्वयं के जीवन घटना का दर्शन करते हुए कहती हैं – ''परिवार की डाल से चुकी हुई औरतों के प्रति आपकी हमदर्दी मुझे अनूठी लगी । तब आप मुझे भी अपने पात्रों में शामिल कर लीजिए .... कल्पित पात्रों के प्रति जब आपकी सहानुभूति उतनी गहरी थी तो जिंदा पात्रों का दिक्कतें आपसे भला कैसे देखी जाएँगी ? मैंने आपके बारे में महिमजी से काफी सुना है । मैं आपसे फिर मिलना चाहती थी, अभी देखा न ? जरा-सी भूल हुई कि गधी-सूअर-उल्लू बना डाला । अब इनके साथ मेरा निभेगा नहीं .... ।''[29] कम्पाउन्डर की बीबी निर्मला से मुलाकात होने से उम्मी की माँ को जब ज्ञात होता है कि भुवनेश्वरी आजाद हो चुकी है तो प्रशंसा करती है –''चुटकी बजाकर उस मैना को उड़ा दिया तुमने और एक मैं हूँ, रोज लात खाती हूँ, कभी इन रगों में भी ताजा लहू दौड़ता था, अब तो बस दुर्गन्ध और बासी पानी भर गया है इनमें – उस हुक्के का पानी जिससे कई होंठ अधा गये हों ।''[30]

चम्पा और कुन्ती को भी जिन्दगी इसी नारकीय जीवन से सम्बद्ध है । नेपालिन मीना इन्हीं सब जीवन वृत्तियों से लड़ती हुई मुक्त होना चाहती हैं । मुक्ति की यह अवधारणा

लोगों को यह बताती है कि यहाँ नारी सजग है जिसमें चेतना की कमी नहीं है । इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में व्यक्ति चरित्र के रूप में नारियों को सजग चेतना विमर्श के विविध आयामों को समेटे हुए नारी जगत को एक नया संदेश प्रदान करती है।

'जमनिया का बाबा' नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों के व्यक्ति चरित्र के रूप में जो स्थापना करता है उसमें मुख्य भूमिका में 'इमरितिया' है। इमरितिया का व्यक्ति चरित्र विविधताओं से भरा पड़ा है । समाज को मूर्ख बनाकर जमनिया के मठ का मठाधीश 'जमनिया का बाबा' भोली-भाली जनता को मूर्ख बनाकर तो ठगता ही है, साथ ही साथ वह मठ नारी शोषण का अड्डा भी बना हुआ है । धर्म के आड़ में नारियों का शोषण ही कथा का मुख्य बिन्दु है, जिसमें इमरितिया जैसे कई नारी पात्र सम्मिलित हैं । गौरी नामक स्त्री पात्र वासना की पुजारिन है, जो पुरुष भोग की आदी है, इसका एक मात्र उद्देश्य पुरुष भोग की लालसा है । यह एक अतिरिक्त ऐसी महिला है जो हमेशा वासना के आग में जलती रहती है, किन्तु उपन्यासकार के इस नारी चित्र में केवल व्यक्ति चरित्र की ही गंदगी नहीं व्याप्त है, बल्कि उसके माध्यम से वह नारी शोषण के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालने की चेष्टा करता है।

इमरितिया के प्रति 'जमनीया का बाबा' आकृष्ट है, और सहज रूप से 'व्यभिचार के क्षेत्र' में वह इमरितिया और गौरी दोनों का इस्तेमाल करता है। इन्हीं महिला पात्रों में लक्ष्मी भी शामिल है जो मठ की दासी है। ढोंग ढकोसलों को बढ़ावा देने के लिए और जनता को बढ़ावा देने के लिए जनता को अपनी शक्ति दिखाकर मूर्ख बनाने के लिए 'जमनिया' मठ का यह बाबा लक्ष्मी के नवजात शिशु की बलि चढ़ा देता है। अपने छः महीने के शिशु की इस नृसंश हत्या के बाद भी लक्ष्मी कोई आवाज नहीं उठाती, यह उपन्यास के अन्त तक रहस्य ही बना रहता है। नारी व्यक्ति चरित्र के रूप में शिवनगर की नारी का व्यक्ति चरित्र जमनिया के मठ के प्रति धार्मिक अन्धविश्वास में आस्थावान है और उसके अन्दर के यथार्थ

से परिचित नहीं है –''शिवनगर की रानी साहिबा वर्ष में दो बार साधुओं को भण्डारा देती है। इस साल अब तक कार्तिक का भण्डारा नहीं हुआ, कौन करवाता .... वैशाख वाला भण्डारा रानी साहिबा का होता है या नहीं।''[31]

इस प्रकार का मठाधीश, जो अन्धविश्वास में सारे नारी पात्रों को केवल भोग्या मानता है और अपने नीहित स्वार्थ के लिए उनका इस्तेमाल करता है । नारी शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने वाली लक्ष्मी अपने शिशु के बलि पर आहत होकर पागल हो जाती है । उस बलि के पीछे व्याप्त अन्धविश्वास को जानना चाहती है तो उसका गला दबाकर मठाधीश के चेला जान से मार देते हैं । सुप्त लक्ष्मी के अन्दर जागृत नारी की चेतना मृत्यु के बाद मौन भले हो जाती है किन्तु समाज के सामने एक सन्देश अवश्य छोड़ जाती है कि नारी अपने अधिकारों की माँग के लिए हर क्षण सजग अवश्य होती हैं, किन्तु वर्चस्ववादियों के द्वारा कुचल दी जाती है।

इस प्रकार नागार्जुन 'जमनिया का बाबा' के माध्यम से मठाधीश की कलई खोलते हैं और बाद में पता चलता है कि वह मठाधीश एक सातिर मुस्लिम अपराधी है। जिसका नाम करीम बख्श है।

स्त्रीवादी चेतना के प्रति आस्थावान उपन्यासकार व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्रों के अन्दर व्याप्त चेतनागत स्वरूप का दर्शन तो अवश्य कराता है, किन्तु यह सिर्फ आन्तरिक विमर्श की समझ ही पैदा कर पाता है । अन्त में जागृत लक्ष्मी की हत्या इसका सशक्त उदाहरण है।

'पारो' में उपन्यासकार नागार्जुन ने व्यक्ति चरित्र के रूप में पारो को मुख्य नारी चरित्र के रूप में रखा है1 वैसे तो व्यक्ति चरित्र के रूप में पीसी अर्थात पारो की माँ, गुंजेश्वरी बिरजू की माँ और बिरजू की बहन अपर्णा तथा मीता जैसे नारी पात्र सम्मिलित हैं ।

अनमेल विवाह से त्रासद जिन्दगी झेलती पारो नारी जीवन से इतना दुःखी है कि

वह भगवान से प्रार्थना करती है – "हे भगवान ! लाख दण्ड दे मगर औरत बनाकर इस देश में जन्म नहीं दे।[32]

अपने जन्म के प्रति यह घृणा भाव नारी जीवन के प्रति वितृष्णा नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण समाज में व्याप्त पुरुष वर्चस्ववादी अत्याचारों से उत्पन्न उबन है। नारी की यह चेतना सम्पूर्ण समाज को यह संदेश देती है,. कि नारी का संघर्ष सिर्फ परिवार तक ही सीमित नहीं हैं। बल्कि यह समाज के प्रत्येक वर्चस्व के विरूद्ध है। पारो न चाहते हुए भी पन्द्रह वर्ष की अवस्था में पचपन वर्ष के पुरुष से ब्याह करने के लिए मजबूर है । इन जिम्मेदारियों के प्रति सजग उसकी माँ पारो के इस विवाह से अत्यन्त ही सुखी होती हैं, किन्तु अपने पति के पशुवत व्यवहार से दु:खी पारो पति में परमेश्वर की जगह एक राक्षस का निवास देखती है, और बिरजू से बोल पड़ती है – "देवता ! दानव है ऐसा आदमी । इस तरह के जन्तु से अलग ही रहने में खैरियत हैं ।"[33]

नारी जगत की यह संवेदना व्यक्ति चरित्र के रूप में नागार्जुन के उपन्यास में बार-बार प्राप्त होती हैं । जिससे यह ज्ञात होता है कि नारी चेतना के प्रति जागरूक उपन्यासकार कहीं न कहीं हर नारी व्यक्ति चरित्र में पारो की तलाश कर ही लेता है।

पितृहीन पारो जैसे-तैसे सब कुछ स्वीकार करने के लिए मजबूर अवश्य है, किन्तु आवाज उठाने में कहीं भी संकोच नहीं करती ।

इस प्रकार पारो का मुखर स्वर नारी चेतना का विविध आयाम प्रस्तुत करता है और समाज में विमर्श का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

3. ख. वर्ग चरित्र के रूप में नारी-पात्र :

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों में वर्ग चरित्र के रूप में नारी पात्रों का व्यापक समावेश है। लोक प्रचलित मान्यताओं के अनुसार नारी का जीवन तमाम बंधनों से जकड़ा हुआ है। इन्हीं जकड़न को दूर करने के लिए उनकी वैरोधिक भावनाएँ उभरकर

सामने आयी हैं । वैसे तो उपन्यासों की कथाभूमि ग्रामीण परिवेश की ही है, किन्तु उनमें विविध वर्ग की नारी पात्राएँ उपस्थित हैं । किसी भी समाज की सामाजिकता बिना नारियों के संभव नहीं है । बिना नारी के किसी भी समाज की संकल्पना संम्भव नहीं है । घर की जागरूक नारी नागार्जुन के उपन्यासों में अपने पूर्ण नारीत्व के साथ उपस्थित है । सम्बन्धों के बीच की टकराहट को अगर अनदेखा कर भी दें तो भी वर्चस्ववादियों के बर्चस्व का शिकार होने वाली नारियों की संख्या भी कम नहीं है । नारीवर्ग की परम्पराओं और रूढ़ियों ने भी कम चोट नहीं पहुँचाया है । जिसका सम्पूर्ण श्रेय परम्परावादी, सान्तवादी और वर्चस्ववादी पुरुष समाज को ही जाता है ।

वर्ग चरित्र के रूप में उच्च वर्ग की नारी पात्रों की भूमिका नारी शोषण के क्षेत्र में कम नहीं है, क्योंकि उनके सामन्ती धारणाओं के चलते अन्य नारी पात्र प्रभावित होने से बच नहीं पायी । उच्च वर्ग की नारी पात्र अहंकारी स्वभावों के चलते निम्न मध्य वर्ग की नारी पात्राएँ भी कहीं न कहीं प्रताड़ित अवश्य हुई हैं । वर्गगत चेतना अगर नारियों में व्याप्त है भी तो सीमित वर्ग स्वार्थ के चक्कर में कोई न कोई वर्ग अवश्य प्रभावित हुआ है चाहे वह निम्न वर्ग नारी पात्र हो या मध्यवर्ग नारी पात्र ।

लोकजन के कथाकार होने के चलते निम्नवर्ग की नारी पात्र और मध्यवर्ग की नारी पात्र को कथा भूमि विस्तृत है, जो पूर्ण रूपेण ग्रामीण नारी पात्र ही है । इनकी आन्तरिक कथा प्रवाह में परम्परावादी पुरुष वर्चस्व का ही उल्लेख है । जिसमें यदा-कदा उच्चवर्ग के नारी पात्र अपने भूमिकाओं में उपस्थित हैं । आँचल विशेष का कथा अपने घटना क्रम को अपने भावभूमि में समेटे हुए है। इसलिए शहरी नारी पात्रों का चेतनागत स्वरूप अल्प ही दिखाई देता है। फिर भी उनकी उपस्थिति रोचक एवं सशक्त है। उपन्यासकार ने तत्कालीन परिवेश का वर्णन किया है, जब नारियों को शिक्षा देने का प्रचलन प्राप्त नहीं था और ना ही समाज उसके प्रति जागरूक था, फिर भी ग्राम्य परिवेश से सम्बन्धित भावागमन

की सुचारूता के चलते शहर का जुड़ाव शिक्षिता नारी पात्रों की कमी खलने नहीं देती ।

संख्या के दृष्टिकोण से नागार्जुन के इन उपन्यासों में वर्ग चरित्र के रूप में अगर जिस वर्ग के नारी पात्र की संख्या सबसे अधिक है, वे हैं – अशिक्षित नारी पात्र । आँचलिकता से प्रभावित जीवन और जीवन के रग-रग में बसी ग्राम्य संस्कृति, रूढ़िवादिता और लोक परम्पराएँ अपने आप में अशिक्षित नारी पात्रों का बाजार लिए हुए खड़ा है । वस्तुतः नागार्जुन ग्राम परिवेश पर आधारित कथाओं के स्रष्टा हैं, जिनमें वर्ग चरित्र के रूप में उच्चवर्ग के नारी पात्र, मध्यवर्ग की नारी पात्र, निम्नवर्ग की नारी पात्र, ग्रामीण नारी पात्र, शहरी नारी पात्र, शिक्षित नारी पात्र, अशिक्षित नारी पात्र, अपनी-अपनी भूमिका में उपस्थित हैं ।

3. ख. । उच्च वर्ग के नारी पात्र :

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों में वर्ग चरित्र के रूप में जो नारी पात्राएँ उच्च वर्ग से सम्बन्ध रखती हैं । उनमें 'रतिनाथ की चाची' में गौरी की माँ उच्च वर्ग के नारी पात्र के रूप में उपस्थित हैं । नागार्जुन के उच्च वर्गीय नारी पात्राएँ सामन्ती विचारधारा का नेतृत्व करती हैं, जिनका वर्चस्व निम्न वर्गीय और मध्यवर्गीय नारी पात्राओं पर सीधे-सीधे दिखाई देता है ।

गौरी का गर्भ गिराने के लिए गौरी की माँ जिस नारी का इस्तेमाल करती है वह नागार्जुन के उपन्यासो की निम्नवर्गीय नारी पात्रा है – "भैंस की बीमारी के बहाने गौरी की माँ ने बुधना चमार की औरत को बुलवा भेजा, यह चमारिन इन कामों में उस्ताद थी .... गौरी की माँ ने सारी बात समझा-बुझाकर चमारिन के हाथ पर पाँच-पाँच रुपये के दो नोट घर दिए, लेकिन वह सिर हिलाने लगी । नहीं मालिकाइन, इतने में काम नहीं चलेगा, यह तो दवा का दाम भी नहीं होगा । मेरी मजदूरी आप क्या देगी, बस इतना ही ।
"दो तो तुम्हारा बँधा हुआ है ही, "गौरी की माँ ने कहा "और मैं तो इतना-सा दे रही हूँ।"

मुस्कराकर सिर हिलाते हुए चमारिन ने कहा, "यही बबुई तुम्हारी और भी तो दो बार यहाँ से बच्चे पैदा कर गई हैं । तब कहाँ मैंने तुमसे कहा – मलिकाइन ? मगर आज तो मामला ही कुछ और है ....।"[34]

गौरी की माँ का यह चरित्र उच्च वर्गीय नारी पात्रों के चेतनागत स्वरूप का वर्णन तो करता ही है, साथ ही उनके वर्चस्व का परिचायक भी है, जो चमाइन की उचित मजदूरी दिए बिना ही सारा काम करा लेना चाहती है । उच्च वर्गीय नारी पात्रों की भूमिका में गौरी की माँ का हड़कम्प है । नागार्जुन जो गौरी की माँ का परिचय देते हुए कहते हैं –"गौरी की माँ समाज के लिए बाघिन थी । इतना बड़ा कुकाण्ड हो जाने पर भी नरकुलवा में किसी ने गौरी की माँ को खुल्लम-खुल्ला कहा नहीं । गर्भ गिराने के ठीक ग्यारहवें दिन उसने सत्यनारायण की पूजा की । गाँव भर को आमंत्रित किया था । पाँच हो या छः ये जो नहीं आए उनमें से तीन तो ऐसे थे, जिनकी इस घर से पुश्तैनी अनबन थी । बाकी दो-तीन ऐसे थे जिनका ख्याल था कि सिमरिया घाट जाकर प्रायश्चित कर लेने के उपरांत ही सत्यनारायण की पूजा करवानी चाहिए थी ।

गौरी की माँ का कहना था कि बूँद भर गंगाजल में उतनी ही सामर्थ्य है, जितनी कि सिमरिया घाट की गंगा में, भी कोई कहे तो, मेरी बेटी पच्चीस बार गंगा नहा आने को तैयार है। गौ-हत्या ब्रह्महत्या का पाप तो इसने किया नहीं, फिर सहज मामूली बीमारी के लिए किसी को इतना बड़ा दंड मैं कैसे दिलवाती ?[35]

गौरी की माँ उच्च वर्ग की नारी पात्र तो है ही, साथ ही सामन्तवादी विचारधाराओं की अनुगामिनी भी है। 'बलचनमा' नामक उपन्यास में मालिकाइन नाम से सम्बोधित है । उच्च वर्गीय नारी पात्र का नेतृत्व करती है। मलिकाइन का पूरा-पूरा आतंक है, जिसका शिकार बलचनमा और उसकी दादी माँ जैसी निम्न वर्ग की औरत हैं। अहम की भावनाओं से भरी हुई अपने वर्चस्ववादी अधिकारों के प्रति सजग और सचेत हैं । "खाना-पीना,

लाला-कपड़ा और ऊपर से दो आना महिना । कौन देगा इतना ? अभी सारा काम इसे सिखाना पड़ेगा । समझाते - समझाते दिमाग का गदा चट हो जाएगा ।''[36]

मलिकाइन का वर्चस्ववादी चरित्र 'बलचनमा' की पीठ-पुजाई के साथ उभर कर सामने आता है, जो आज भी उसके स्मृति पटल पर अंकित है –''सो उस रोज घास लेकर जब मैं जरा देर से पहुँचा तो गिरहथनी हु-हु-आ उठी – मर क्यों न गया ? बड़े नबाब के नाती हुए हैं । कहीं बैठ कर बाप के साथ कौड़ी भाँज रहा होगा .... मुँह झौंसा ! इतना कहकर जब उन्हें संतोख न हुआ तो झाड़ू उठा लाई और मेरी पीठ पर सात बार झटाझट बरसा दिए । मैं ऐंचकर वहीं बैठ गया – ईह- ईह कर उठा ।''[37]

उच्च वर्ग के नारी पात्रों का नेतृत्व करती मलिकाइन अपने तेवर के साथ उपस्थित है। जिनका सामन्तवादी वर्चस्व अपने नारी अधिकारों के प्रति सजग और सचेत हैं।

उच्च वर्ग के नारी पात्रों में फूल बाबू की माँ, महीन बाबू, माँ, राधा बाबू की पत्नी (लवंगलता) और कामेन्द्र की पत्नी (कनककिशोरी) इत्यादि है ।

मलिकाइन जितना ही क्रूर स्वभाव की थी, फूल बाबू की माँ उतनी ही दयालु और विनय सर्वहारा वर्ग के प्रति उनकी नव चेतना सामान्य व्यवहार के इर्द-गिर्द ही थी । जिसका सशक्त उदाहरण हे – ''फूल बाबू का उनकी माँ ने पक्ष लिया तब जाकर मैं साथ आ पाया। नहीं तो उनके बाप भारी कसाई थे ।''[38]

इससे यह ज्ञात होता है कि उच्चवर्गीय परिवेश में रहते हुए भी फूल बाबू की माँ सामन्ती विचारधाराओं से परे और दयालु किस्म की महिला हैं।

महेन बाबू की माँ उच्च वर्गीय नारी पात्रों में धार्मिक विचारधारा की है, जो 'बलचनमा' के साथ कोमल मातृत्व का व्यवहार करती है तथा सारी संकीर्णताओं से दूर नारी जगत के लिए मिसाल कायम करती है।

राधा बाबू की पत्नी (लवंगलता) पढ़ी-लिखी घरेलू महिला की भूमिका में है, जो घर

परिवार की व्यवस्था में लगी हुई है – "उन्होंने घरेलू सुभीते को निगाह से वहाँ कुछ और सुधार किए । रसोई वाली भड़इया में धुँआ निकलने की खिड़की डलवाई, घड़े रखने के लिए लम्बोंतरो चबुतरा बनवाया, पाखाना और नहाने की जगह, बरतन बासन माजने की जगह, ईंधन और लकड़ी के मचान .... ।"[39]

इस प्रकार घर गृहस्थी के प्रति सजग उच्च वर्गीय नारी पात्रों में राधा बाबू की पत्नी बलचनमा को स्नेह तो अवश्य देती हैं किन्तु राधा बाबू के द्वारा बलचनमा को शिक्षा दिलवाए जाने का विरोध करती है । साथ ही साथ स्त्री शिक्षा की विरोधी भी हैं ।

कामेन्द्र बाबू की पत्नी कनककिशोरी एक नेता की पुत्री है जो पढ़ी-लिखी महिला है, जो खर्चीले स्वभाव की महिला थी । जीवन की आनन्दोत्सव में जीना चाहती थी ।

शिवनगर की रानी 'जमनीया के बाबा' नामक उपन्यास में उच्च वर्ग के नारी पात्र का प्रतिनिधित्व करती है। धार्मिक आस्थाओं वाली सन्त महात्माओं के भाव जगत में जुटी रहती है। साधुओं को भण्डारा इत्यादि देते है, बेनी माधव की पत्नी ऊँची नाक वाले खानदान की लड़की है। उच्च वर्ग की नारी पात्रा होते हुए भी सजग और सचेत है ।

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में उच्च वर्ग की नारी पात्राओं का सहज और स्वाभाविक चित्र उभरकर सामने आता है । जिसमें उच्च वर्गीय परम्परा का निर्वाह तो है ही, सामन्तवादी विचारधाराओं के चलते फिजूल खर्चा भी है । ये उच्च वर्गीय नारी पात्राएँ सम्पूर्ण समाज और वर्ग को स्वमेव प्रभावित करती है ।

3. ख. II. मध्य वर्ग के नारी पात्र :

वर्ग चरित्र के रूप में मध्य वर्ग के नारी पात्र में 'रतिनाथ की चाची' नामक उपन्यास में गौरी मध्य वर्ग के नारी चरित्र के रूप में हैं ।जिसका जीवन वैधव्य का शिकार होता है ओर सामाजिक रूढ़ियों ओर विविधताओं से भरा पड़ा है । पंण्डिताइन जो एक सहज ग्रामीण महिला हैं जिनसे गौरी का देवर अपने बुरे दिनों में सलाह मशाविरा करता है, उचित

मार्ग निर्देशन करते हुए पण्डिताइन यह साबित करती है कि नारी अपने बुद्धि कौशल के आधार पर उचित समय पर उचित निर्णय लेने में सक्षम है – 'पाण्डिताइन जयनाथ को समझाते हुए कहती है, बुरा न मानना जयनाथ बाबू मे दमयन्ती नहीं है, जो हाथ धोकर उमानाथ की माँ के पीछे पड़ जाँऊ । मेरे दिल में मुसीबत की मारी उस औरत के लिए बड़ा दर्द है .... जाने गंगा भाई उमानाथ की माँ को मैं अपनी सगी बहन समझती हूँ । इस दुर्घटना के बाद भी उसके प्रति मेरा स्नेह ज्यों का त्यों हैं ।''[40]

मध्यम वर्ग के जीवन यथार्थ से जुड़ी जयनाथ की बहन सुमित्रा वैधव्य का जीवन जीती एक सुचरित्र महिला है जिसकी देवरानी चन्द्रमुखी है। पारिवारिक भूमिकाओं में इनका जीवन संघर्षमयी होते हुए भी सहज है। कथा वर्णन के दौरान मध्यम वर्ग की नारी पात्रों में रतिनाथ की नानी और दो मामी का वर्णन प्राप्त होता है। जिनका सहज पारिवारिक कौशल यदा-कदा मिलता है।

'नई पौध' की पण्डिताइन, रामेश्वरी और मुख्य स्त्री पात्र विसेसरी तथा खोखापण्डित की तीन बहुएँ महेश्वर की भाभी, दिगम्बर की नानी, क्रान्तिकारी पात्रा कान्ता तथा विसेसरी की सहेली खंजन मध्यवर्ग नारी पात्रों में हैं । मध्यवर्गीय नारी पात्रों का चित्रण नागार्जुन ने जिस व्यवस्था के अन्तर्गत किया है, उसमें शिक्षा का अभाव है। नारी पात्रों के अशिक्षित होने के चलते मध्यवर्ग का पूरा नारी परिवेश शोषण का शिकार है । वह रूढ़ियों एवं परम्पराओं का विरोध तो करती है, किन्तु अशिक्षित होने के कारण निर्णय क्षमता के प्रति उतनी सजग नहीं हैं जितनी की आवश्यकता है, फिर भी कान्ता और खंजन रूढ़ियों से लड़ती अवश्य हैं और विभिन्न दृष्टिकोणों के प्रति सजग होकर नारी चेतना के तरफ ध्यान आकृष्ट करती हैं ।

'पारो' उपन्यास की पार्वती अनमेल विवाह परम्परा का आन्तरिक विरोध करती है, किन्तु पितृहीन होने के चलते अपनी माँ की उपेक्षा का शिकार भी होती है । पार्वती की माँ

पीसी वैधव्य जीवन की जिम्मेदारियों के प्रति सजग अवश्य है, किन्तु अशिक्षित होने के चलते पन्द्रह वर्षीय पारो का विवाह साठ वर्षीय वृद्ध से कर देती है।

'पारो' की मामी गुंजेश्वरी घरेलू महिला के रूप में गृहस्थी के व्यवस्थाओं में जुड़ी है । राजेश्वरी की पुत्री अपर्णा और उसकी सहेली मीता मध्यम वर्गीय नारी पात्रों की नयी पीढ़ी का नेतृत्व करती है । जो अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत हैं । अपने भाई विरजू के प्रति कम उम्र पर शादी होने का विरोध करती अपर्णा नयी पीढ़ी के जागृत होने का संदेश प्रदान करती है। जिनमें मध्यम वर्गीय रूढ़ियों का विरोध करने की क्षमता कूट-कूट कर भरी पड़ी है।

'दुखमोचन' में मध्यमवर्गीय नारी पात्रों में दुखमोचन की मामी, छोटी बहू माया और माया की माँ ससुराल पक्ष से मध्यम वर्ग नारी का चित्र उपस्थित करती है। दुखमोचन की मामी पारिवारिक भूमिका में सहज नारी की भूमिका में है जो मध्यम वर्गीय संघर्षों में जूझते हुए भी अपने अधिकारों के प्रति सचेत हैं ।

'कुम्भीपाक' उपन्यास में कम्पाउण्डर की पत्नी निर्मला और इन्दिरा (भुवनेश्वरी) मध्यम वर्गीय नारी पात्रों का नेतृत्व करती हैं और अपनी सजग चेतना के द्वारा सामाजिक विद्रूपताओं के विरूद्ध लड़ती नजर आती है और पुनः अपने अधिकारों को प्राप्त कर जीवन जीने के प्रति संतुष्ट हैं ।

नारी अधिकारों के प्रति संवेदनशील प्रतिभामा, भुवन को आश्रय देकर जागरूक नारी का उदाहरण प्रस्तुत करती है। मध्यम वर्गीय नारी पात्राओं में सबसे विचित्र भूमिका में उम्मी और उसकी माँ हैं । जिनकी जिंदगी अवैधानिक प्रेम सम्बन्धों के मध्य नरक बनकर रह जाती है । आश्रम की बुआ चम्पा की कहानी कम विचित्रताओं से भरी-पड़ी नहीं हैं जो पुरुष वर्चस्ववादी विचारधारा के बीच पीसती हुई नारी का दर्शण इस प्रकार करती है – "आप पढ़े-लिखे लोग जब चुप्पी साधे हुए हैं, तो मुझ जैसी जाहिल औरत क्या सोंचेगी ? मर्द जो भी

लीक खींच देते हैं, हमारे अकल गैरिया की तरह फुदक सकती है, दूर की उड़ान नहीं भर सकती ।''[41]

नारी का यह चित्र स्वरूप मध्यम वर्गीय नारी पात्राओं की विवश भरी जिन्दगी का दस्तावेज प्रस्तुत करती है। भुवनेश्वरी (इन्दिरा) मध्यम वर्गीय सोच की पात्रा है, जिसका जीवन सामाजिक वैशम्यताओं का शिकार है, किन्तु निर्मला जैसे सजग नारी के सहयोग से उन विषमताओं से उबर पाने में सफल होती है। मध्यम वर्गीय विषमताओं से भरी जिन्दगी के प्रति संकेत करते हुए स्वयं के त्याग के प्रति आस्थावान हो उम्मी की माँ कहती हैं – ''लेकिन मेरी इस निर्ममता से कई प्राणों में जीवन का रस छलकेगा, कई सूखी नदियों में पानी के रेले आ जाएंगे । देखा नहीं है ....।''[42]

रंजना जैसी किस्मत की मारी नारी को शरण देकर अपने त्याग का मिशाल कायम करती है। रंजना के साथ-साथ निर्मला भी भुवन को उबारने में कम सहयोग नहीं करती बल्कि सम्पूर्ण घटना का मुख्य सूत्रधार है। इनके एहसानों तले दबी भूवनेश्वरी सहज हित चिन्ता में बोल पड़ती है – ''दीदी तुम मुझसे अलग ही रहती तो अच्छा था । मैं अभागिन हूँ, जीवन भर अभागिन ही रहूँगी । अन्देशा इसी बात का है कि मेरी बदनसीबी कहीं तुमको भी न छू ले ।''[43]

'कुम्भीपाक' में मध्यम वर्गीय नारी पात्रों में पारिवारिक भूमिका में महीम की पत्नी और उनकी माँ भी है । ''जिनका जीवन निर्मला और भुवन की यथार्थता से अलग है। जहाँ ये परिवार के लिए जीती हुई नजर आती है, समाज के लिए नहीं । निर्मला जैसी मध्यम वर्गीय नारी पात्र अपनी बुद्धिमता से सम्पूर्ण नारी समाज के लिए भुवन को बचाकर एक विमर्श प्रस्तुत करती है।

'उग्रतारा' में नर्मदेश्वर की भाभी गीता और गीता की माँ मध्यम वर्गीय नारी पात्रों के रूप में उपस्थित है । नर्मदेश्वर की भाभी पढ़ी-लिखी महिला है, जो समाज के बारे में नयी

सोच रखती हैं । इसीलिए शान्ति प्रिय होने के कारण वह नर्मदेश्वर को सलाह देती है – "पिस्तौल का क्या करोगे ? छिछोर मन का इलाज कारतूस की पेटी से नहीं होगा । स्त्री-पुरुषो में समान रूप से समझदारी पैदा होगी और मनोरंजन के कई और साधन निकल आएँगे, तभी व्यभिचार घटेगा । देहात में खाते-पीते परिवारों के अधेड़ भारी मुसीबत पैदा करते हैं । उगनी जैसी लड़कियों के लिए ज्यादा संकट उन्हीं की तरफ से आता है । दूसरा संकट है डरपोक नौजवानों की छिछली सहानुभूति, इन संकटों का मुकाबला हम पिस्तौल से नहीं कर सकते ....।"[44]

मध्यम वर्गीय नारी चरित्र का सहज स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करते हुए नागार्जुन सामाजिक मान्यताओं के मध्य संघर्ष करती नारी जीवन के दर्शन को समझाने का सफल प्रयास करते हैं । जिनमें मध्य वर्ग का नारी जीवन चरित्र उभरकर सामने आता है।

3. ख. III. निम्न वर्ग के नारी पात्र :

नागार्जुन के उपन्यासों में निम्नवर्ग के नारी पात्रों की अहम भूमिका है। कथा की रोचकता और विमर्शात्मक परिवेश में निम्न वर्गीय जीवन चरित्र पूर्ण रूप से मिला-जुला है।

'रतिनाथ की चाची' में उमानाथ की माँ अर्थात गौरी दमयन्ती (दम्मो फूफी) रामपुर वाली चाची तथा चमारिन, गौरी की पड़ोसन शकुन्तला और जनककिशोरी तथा रतिनाथ की प्रेमिका बागों आदि मध्यम वर्गीय नारी चरित्र अपने संघर्षमयी जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है। निम्न वर्गीय नारी पात्र के जीवन चरित्र का वर्णन करते हुए उपन्यासकार कहते हैं –"दमयन्ती ने टोल पड़ोस की प्रमुख और मुँहजोर औरतों को इकट्ठा किया । दोपहर के बाद का समय था, अपने-अपने परिवार को खिला-पिलाकर खुद खा-पीकर औरतें जब निश्चिंत होती है तो ज्ञान-गोष्ठी का सबसे निर्विघ्न यही उनका समय होता है। एक-दूसरे के सुख दु:ख की चर्चा जो मौजूद न रही उनका छिद्रान्वेषण, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, काशी प्रयाग, गंगा, यमुना और जाने क्या-क्या । आज की गोष्ठी में रामपुर वाली

चाची, सन्नों की माँ, दम्मो, फूफी, शकुन्तला और जनक किशारी शामिल हुई थी ।"[45]

निम्न मध्यवर्गीय नारी पात्राओं का यह चित्र ग्राम्य परिवेश में जीने वाली नारियों के जीवन स्तर का परिचायक है। इस परिवेश में जीने वाली नारी पात्राओं का जीवन बहुविध विषमताओं से भरा होता है। जिसके बारे में उपन्यासकार संकेत देता है – "गौरी कुछ बोली नहीं मन ही मन अपनी स्त्री जाति पर उसे क्रोध हुआ - ओ अभागी औरतो मुझे क्या हो गया है, यह तुम भलीभाँति जानती हो । तुम्हें रत्ती-रत्ती पता है कि इस तरह का चेहरा एक स्त्री का कब होता है ? इस तरह की झेंप, इस तरह का संकोच किसी विधवा की मुखाकृति पर कब छाया रहता है ? यह भी तुम भलीभाँति जानती हो, फिर क्यों मेरा दिमाग चाटने आई हो ? तुम्हें जिसका खटका है, उसी दुर्भाग्य का मैं शिकार हूँ । मेरी नियति के साथ क्यों मखौल करने आई हो ....।"[46]

निम्न वर्गीय परिवेश में नारी पात्रों की मानसिकता का यह स्वरूप उनके अशिक्षा का वर्णन तो करता ही हैं, साथ ही साथ गौरी के सजग चेतना का दृश्य भी उपस्थित करता है।

'बलचनमा' में निम्न मध्यवर्ग नारी पात्र में उसकी माँ दादी और बहन का चित्रण है। जीवन संघर्ष के प्रति सजग उसकी माँ और दादी पारिवारिक भूमिका में उपस्थित हैं तो वहीं सामन्तवादी वर्चस्व की शिकार उसकी बहन 'रेवनी' स्त्री जीवन के प्रति सजग और सचेत है। खबासिन नौकरानी के रूप में निम्न वर्गीय नारी की विचित्रताओं को सामने लाती हैं – "कभी-कभी खबासिन चिंग्धाड़ मारकर रो पड़ती थी । कोंचा खोलकर नंगी हो जाती और हाय बाप हाय बाप करती हुई जीभ निकलती – ही ही ही ही मैं काली हूँ, पोखर पर जो बौना पीपल है, उसी पर रहती हूँ, खा जाऊँगी समूचा गाँव । बकरा दो बकरा ....।"[47] रूढ़ियों और अन्धविश्वास में जकड़ा निम्नवर्ग का समाज नारी पात्रों में उसी तरह के जीवन दृश्य को स्थापित किए हुए हैं । वहाँ अकारण ही अन्धविश्वासी प्रवृत्ति की

सम्प्रभुता है, जिसके बीच समस्त जीवन परिदृश्य अस्त-व्यस्त नजर आता है। इनमें धनवंती, चुन्नी की पत्नी, सुगनी जैसी नारी पात्र अपने निम्नवर्गीय नारी जीवन के संघर्षो का परिचय प्रदान करती नजर आती है।

'बाबा बटेसरनाथ' में वैसे तो नारी चरित्र के रूप में निम्न वर्ग का नेतृत्व करती जयकिसुन की दादी एक मात्र नारी पात्र है, किन्तु कथा के सहज आन्तरिकता को खगालने पर पूरा कथा परिवेश निम्न वर्गीय नारी पात्रों के त्रासदी से हटकर नहीं है, क्योंकि जहाँ निम्नवर्गीय पुरुष प्रताड़ित हो रहा है वहाँ उसके सम्बन्धियों में पत्नी, माँ, बहन इत्यादि भी उस प्रताड़ना से परे नहीं है । निम्न वर्ग के नारी पात्र की चेतना का सजग रूप अकाल के उन क्षणों में दादी के संचयी प्रवृत्ति के रूप में कथा में उपस्थित हैं । जहाँ निम्न वर्ग के नारी पात्र की दूरदर्शिता सहज रूप में प्रकाशित होती है।

'वरुण के बेटे' में भोला की माँ बुढ़िया मधु और जगत भी निम्न वर्गीय नारी पात्रा हैं, जिससे माधुरी मंगल की माँ खुरखुन की पत्नी जितिया बुआ, मोदनी की मामी, सकुन्ती बहन, माधुरी की बहन तारा, मंगल की बहन जिलेबिया, सिलेबिया इत्यादि नारी पात्र हैं ।

इसमें माधुरी निम्न वर्ग के नारी पात्र का नेतृत्व करती है। कथा में निम्न वर्गीय नारी पात्रों का प्रेम सम्बन्ध वर्णित है । मंगल ओर माधुरी का प्रेम सम्बन्ध लम्बे समय तक चलता है, जिनमें निम्न वर्ग के नारी पात्र की अवधारणा उभरकर सामने आती है । मंगल के प्रेम में पागल माधुरी गुनगुनाने लगती है –

"जिनगी भलें, पह ऽ ऽ ऽ ऽ ड़, उमिर भले क ऽ ऽ ल !
नई फेकड नई फकड़ आहे मोर दिलचन,
नेहिया पिरीतिया के ज ऽ ऽ ऽ ऽ ल !!
आवड़ आवड । देखि जा ह ऽ ऽ ऽ ऽ ल ऽ ऽ
डमिर भेल का ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ल !!!"[48]

निम्न वर्गीय नारी जीवन का सजग रूप उस समय पूरे चेतना के साथ दिखायी पड़ता है जब माधुरी अपने प्रेम मंगल को अपनी पत्नी के प्रति वफादार होने की सीख देती है और स्वयं को पति के प्रति । इस प्रकार माधुरी के सजग नारी चेतना का दर्शन व्यापक स्तर पर होता है।

'दुखमोचन' में कंचन की बहन, चमकी हरखू की माँ रामसागर की स्त्री माया और माया की माँ इत्यादि निम्न वर्गीय नारी पात्र अभावग्रस्त एवं संघर्षमयी जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं । वैसे तो हरखू की माँ और रामसागर के स्त्री ही मुख्य भूमिका में उपस्थित हैं किन्तु लाख अभावों की त्रासदी झेलती हुई हरखू की माँ अपनी ईमानदारी की मिसाल कायम करती है। अभावग्रस्त जीवन जो लोग से कोसो दूर है और नारीगत दुर्गुणों से परे । अकाल पीड़ितों के लिए बट रहा अन्न हरखू की माँ प्राप्त तो कर लेती है किन्तु बेटे द्वारा भेजे गए मनिआर्डर की रकम प्राप्त करते ही अन्न वापस करने के लिए दुखमोचन के दरवाजे पर आ धमकती है। हरखू के माँ की यह ईमानदारी देखकर दुखमोचन हक्का-बक्का रह जाता है। ईमानदारी की प्रतिमूर्ति हरखू की माँ निम्न वर्गीय नारी पात्रों के अभाव ग्रस्त जीवन के बीच एक विमर्शात्मक नारी चरित्र के रूप में दिखाई पड़ती हैं ।

'उग्रतारा' में उगनी की माँ और उगनी निम्न वर्ग के नारी पात्रों के रूप में दिख पड़ती है। सामाजिक विद्रूपता का शिकार उगनी वैधव्य जीवन के पश्चात प्रेम प्रपंच में प्रताड़ित होती है और विभिन्न जीवन संघर्षो के बाद जब उसका मन पसन्द व्यक्ति उसका पति बनता है तो वह सोचती है –"आज वह नए सिरे से सुहागिन बनी थी। उसकी माँग में आज नए सिरे से सिंदूर भरा गया था । आज ! कल तक कामेश्वर उगनी का प्राणबल्लभ था, आज वह उसका सब कुछ था । अन्दर पल रहे चार महीने के भ्रूण को उसको निश्चल आशीष मिल गई थी ....।"[49]

उचित आश्रय मिल जाने के कारण भाव विह्वल उगनी के जीवन संघर्ष में

प्रताड़नाओं का सिलसिला कम होता है, तब उसे अपने सगे सम्बन्धी धीरे-धीरे याद आते है। माँ की याद में माँ द्वारा बनाए गए बहाने की स्मृति पटल पर लाती है – "नहीं माँ, यह पानी नहीं है। आँसू है ये तो, मैं दूध पीती बच्ची कहाँ हूँ, मुझे बहलाओं नहीं माँ। पानी होता तो इतनी जल्दी सूख कैसे जाता ?.............. तुम्हारी उम्र क्यों आठ-दस महीनों में ही बीस वर्ष बढ़ गयी है ? सूखी चमड़ी का यह फीकापन इन आँखों से नहीं देखा जाता माँ ....।[50]

इस प्रकार उगनी का माँ के प्रति संवेदनशील हृदय, नारी का नारी के प्रति सजग रूप प्रस्तुत करता है। जबकि अपार अभावों के बाद भी सुगनी का आत्मिक प्रेम माँ के प्रति छलक उठता है। जहाँ निम्न वर्ग के नारी पात्र के भावभूमि का गहन चित्र जीवित हो उठता है।

'जमनिया का बाबा' में जमनिया मठ की दासी इमरितिया, गौरी और लक्ष्मी पुरुष वर्चस्वादी समाज के शोषण का शिकार हैं। इनमें इमरितिया निम्न वर्ग के नारी पात्रों का नेतृत्व करती है। किन्तु संघर्षमयी जीवन का अन्त दिखता नहीं, तो भिखरिन के बारे में सोचती इमरितिया सोचती ही जाती है – "उस औरत में और मुझमें क्या फर्क है ? मैं भी दूसरों का दिया हुआ खाती हूँ। उसकी ही तरह मेरा भी कोई अपना नहीं है, क्या पता इस औरत का कोई अपना हो और वह भी अलग कहीं भीख माँग रहा हो .... ।"[51]

इमरितिया का यह मानसिक अन्तर्द्वन्द्व बेतरतीव जीवन यापन को लेकर है। जहाँ नारी की त्रासदी विभिन्न रूपों में काल के तरह मुँह बाये खड़ी है। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से जूझती इमरितिया बड़बड़ाते हुए स्वयं कहती है – "इमरितिया तू बड़ी बेबकूफ है। तुझसे बढ़कर गधी इस दुनिया में और कोई नहीं होगी .... नहीं तू गधी भी नहीं है, काठ है, पत्थर है, कूड़े का ढेर है तू, तू भला गधी कैसी होगी। वह तो एक अच्छी भली जीव होती है चार पैरो वाली मादा, सही सलामत कपड़ों के गट्ठर ढोकर घाट तक पहुँचाती है, फिर उन्हें वापस लाद लाती है। तू कोन सा काम करती है ? किसका बेझा ढोती है।"[52]

इस मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों में जीवन यापन करती सामाजिक वैषम्यता का शिकार इमरितिया निम्न वर्गीय महिलाओं में अकेली नहीं है जो भयावहता से लड़ती हो किन्तु इमरितिया की भयावहता अलग है और गौरी की अलग । इमरितिया गौरी के बारे में सोचती है – "हमसे गौरी खुलेआम कहा करती – "मैं डायन हूँ, कच्चा चबाने के लिए मुझे आदमी ही चाहिए और हमेशा चाहिए .... दस वर्ष का लड़का हो तो भी चलेगा, सत्तर साल का बुड्ढा हो तो भी चलेगा ।"[53]

उत्तप्त काम वासना की शिकार गौरी का जीवन परिदृश्य अत्यन्त ही निम्न स्तरीय नारी जीवन का संकेत प्रदान करता है। जिसमें उसकी भोग की लालसा अत्यन्त ही चरम पर हैं । जहाँ पुरुष वर्चस्ववादी समाज में स्त्री भोगकी वस्तु है वहाँ गौरी के लिए पुरुष।

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्र वर्ग चरित्र के रूप में निम्न मध्य वर्ग की उपस्थिति का प्रमाण तो मिलता ही है, साथ ही साथ निम्न वर्गीय पात्रों के जीवन की विविध चेतनाएँ सम-विषम रूप में दृष्टिगोचर होती है।

3. ख. IV. ग्रामीण नारी पात्र :

वर्ग चरित्र के रूप में नागार्जुन के उपन्यासों में ग्रामीण नारी पात्रों की भरमार है । ग्रामीण अंचल विशेष की कथाभूमि पर आधारित सभी उपन्यास ग्राम्य संस्कृति के बारे में ही सारी कथा कही गयी है तो भला उसमें ग्रामीण नारी पात्रों का आधिक्य क्यों न हो ।

'रतिनाथ की चाची' में दम्मो फूफी, गौरी, रूपरानी, रामपुर वाली चाची, प्रतिभामा इत्यादि महिलाएँ ग्रामीण नारी पात्र ही हैं । ग्राम्य जीवन में पली-बढ़ी सारी ग्राम पात्राएँ ग्रामीण सजींदगी से ओत-प्रोत है, जिनमें ग्राम्य संस्कृति की रूढ़ियाँ, परम्पराएँ और अन्धविश्वास व्याप्त है। साथ ही धार्मिक आस्थाओं के साथ ढोंग और ढकोसलों की भी भरमार है। किन्तु इसके साथ अपने अधिकारों के प्रति सजगता भी विद्यमान है। ग्रामीण नारी पात्रों का ग्राम्य परिवेश में कहीं पण्डिताइन के रूप में शकुन्तला जनक किशोरी के रूप में, बागों,

सुशीला के रूप में तो कहीं चन्द्रमुखी, सुमित्रा के रूप में तो कहीं रतिनाथ की नानी तथा मामी के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

'बलचनमा' की मलिकाइन (जमींदारिन) और उसकी दादी माँ, बहन (रेवनी) जमीनदारिन की नौकरानी खबासिन, फूलबाबू की माँ, धनवती, चुन्नी की पत्नी, सुगनी इत्यादि ग्रामीण नारी पात्र है। ग्राम परिवेश में जमींदारी वर्चस्व की निर्वाहक जमींदारिन पूर्ण ग्रामीण संस्कृति की निर्वाहक हैं तो वहीं नयी पीढ़ी का विचारधारा का शिकार भी । परम्पराओं की शिकार नयी पीढ़ी एक तरफ ग्राम रूढ़ियों के विरोध में खड़ी होती है। तो वहीं ग्रामीण नारी पात्र धार्मिक आस्थाओं के मध्य ढोंग-ढकोसलों को ढोने में अपनी जिन्दगी खर्च करती हैं।

'नई पौध' की पण्डिताइन रामेश्वरी तथा खोखा पण्डित की तीनों बहुएँ, मझली बहू फूलकुमारी, माहे की भाभी विसेसरी ललाईन कान्ता, खंजन इत्यादि ग्रामीण नारी पात्र हैं । मुख्य नारी पात्र विसेसरी नयी पीढ़ी का नेतृत्व करती है तो वहीं पुराने ढांचे में पली ग्राम्य-संस्कृति में ढली रामेश्वरी इत्यादि सहुआइन सहित पुरानी पीढ़ी की ग्राम्य बधुएँ संघर्षमयी जीवन में ग्रामीणांचल की सोधी महक लेते हुए किनारा खोजती नजर आती है। माहे की भाभी का सरल ग्राम्यजीवन शान्ति की माँग चाहता है, तो विसेसरी का संघर्ष क्रान्ति। ललाइन, सहुआइन और पण्डिताइन घिसती-पिटती रूढ़ियों के मध्य पिसती हुई नजर आती हैं तो वहीं रामेश्वर का मानसिक अन्तर्द्वन्द पिता के प्रति संवेदनशील भी और पुत्री के प्रति जिम्मेदार भी । ग्राम संस्कृतियों के निर्वाह में विसेसरी और रामेश्वरी का संघर्ष नारी चेतना का सहज उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

'बाबा बटेसरनाथ' की दादी माँ ग्रामीण नारी पात्र की सबसे पुरानी पीढ़ी की प्रतीक है। जिसके द्वारा ग्राम संस्कृति में लगाया गया वटवृक्ष ग्राम्य इतिहास का लेखा जोखा प्रस्तुत करता है और पुरानी यादों के मध्य ग्राम्य संस्कृति में जीने वाली ग्राम्य सुन्दरियों के

सहज आत्मीय स्वभाव का वर्णन करता है। दादी माँ के ग्रामीण स्वभाव में ग्राम्य नारी की झलक प्राप्त होती है तथा वर्णन के दौरान महारानी विक्टोरिया का नाम भी एक जगह उद्धृत है।

'वरुण के बेटे' में बुढ़िया खुरखुन की पत्नी, मंगल की माँ, जितिया बुआ, मेदिनी भाभी, सकुन्ती बहन, तीरा जिलेविया, सिलेबिया तथा मुख्य कथा नायिका माधुरी ग्रामीण नारी पात्रों के रूप में मौजूद हैं । बदलती ग्राम अवधारणाओं के बीच सारा नारी चरित्र अपने अपने तरह के संघर्ष में लगा हुआ है और उन्हीं बदलती व्यवस्थाओं के मध्य मछुआरे समाज का नेतृत्व करती माधुरी ग्रामीण नारी पात्र के सशक्तिकरण का उदाहरण बन जाती है। जिससे ग्रामीण नारी पात्र के सजग चेतना का चित्र नजर आता है।

'पारो' की पार्वती का जीवन संघर्ष ग्रामीण वैशम्य के प्रति विद्रोह है जिसमें नारी का चिंतक स्वरूप दिखलाई पड़ता है। ग्राम्य परिवेश में जीने वाली पीसी, बिरजू की नानी उसकी माँ गुजेश्वरी, बहन अपर्णा और माता इत्यादि का समावेश ग्रामीण नारी पात्र के रूप में हुआ है।

'दुखमोचन' की भाभी छोटी बहू, कंचन की बहन चमकी हरखू की माँ मायों और उसकी माँ रामसागर की स्त्री ग्रामीण नारी पात्र हैं । नयी पीढ़ी में रामसागर की स्त्री कंचन की बहन चमकी ग्राम संस्कृति के सामाजिक सरोकार में सहयोग प्रदान कर जागृत नारी के रूप में दिख पड़ती है तो वहीं हरखू की माँ की ईमानदारी ग्राम्य संस्कृति की रचनावली प्रवृत्ति का उद्घाटन करती है।

'कुम्भीपाक' की महीम की माँ और उसकी पत्नी 'उग्रतारा' की उगनी नर्मदेश्वर की भाभी गीता और उसकी माँ तथा उगनी की माँ भी ग्राम परिवेश में पलने वाली ठेठ ग्रामीण नारी पात्र है । महीम की माँ और पत्नी का घरेलू ग्राम्य जीवन सहज आँचलिकता से प्रभावित है तो वहीं क्रान्तिकारी नर्मदेश्वर की भाभी ग्राम्य जीवन की सारी रूढ़ियों को तोड़

कर वर्चस्व के विरूद्ध झंडा बुलन्द करती है, जिसमें नारी चेतना का प्रखर रूप अपनी छाप छोड़ जाता है ।

'जमनिया का बाबा' में इमरितिया गौरी और लक्ष्मी का दासी जीवन ग्राम्य नारी पात्र के रूप में प्रतिष्ठित है। इमरितिया जहाँ मानसिक अन्तर्द्वन्द में फँसी है, वहीं लक्ष्मी और लक्ष्मी का नवजात शिशु धार्मिक ढकोसले का शिकार होते हैं, तो वहीं ग्राम परिवेश की गौरी का उत्तप्त वासनात्मक रूप पुरुष को ही भोग की वस्तु के रूप में इस्तेमाल करता है। अनेक विविधताओं के मध्य इनकी जिंदगी ग्राम्य परिवेश की दासी प्रथा की याद दिला जाता है। जहाँ मूल्यगत अवधारणाएँ कहीं फूटती है तो कहीं टूटती है। किन्तु वे ग्रामीण नारी पात्राओं के संघर्षमयी जीवन के चेतनात्मक पहलू से अनदेखी नहीं है । ग्राम्य संस्कृतियों की अपनी विशिष्ट परिपाटी का निर्वाहन करती ये ग्रामीण नारी पात्राएँ नागार्जुन के उपन्यासों की मुख्य चरित्र हैं ।

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में ग्रामीण नारी पात्रों का विविधस्वरूप आंचलिकता से ओतप्रोत तो है ही, साथ ही ग्रामीण वैषम्य को उजागर करने में सफल भी है।

3. ख. V. शहरी नारी पात्र :

शहरी नारी पात्रों के रूप में नागार्जुन के उपन्यास की कथाभूमि, कोई विशेष जगह नहीं घेरती । 'बलचनमा' में महेन बाबू की माँ, कामेन्द्र की पत्नी जनक किशोरी, शहरी नारी पात्र हैं । जो पारिवारिक भूमिका के मध्य जीती जागती जीवन के उथल-पुथल को सम्भाले हुए है, तो वहीं 'कुम्भीपाक' की प्रतिभामा, उम्मी की माँ और उम्मी, कम्पाउण्डर की पत्नी, भुवनेश्वरी चम्पा हुआ शहर की आधुनिकता में संघर्षरत हैं । जहाँ घोर नारकीय जीवन में अधिआरे के अलावा और कुछ नहीं है।

'जमनिया का बाबा' में शिवनगर की रानी एक सम्भ्रान्त शहरी नारी पात्र है जो धार्मिक आस्था में रमकर साधु-सन्यासियों के लिए भण्डारे लगवाती है, किन्तु वही आश्रम की

लिजलीजाती जिन्दगी की फिसलन बनकर उम्मी की माँ प्रेम प्रपंच में फँसकर एक नए प्रेम प्रसंग की दुनिया बुनती है। जिसमें ये शहरी नारी पात्र माँ-बेटी होने के बावजूद भी एक ही पुरुष से प्यार कर बैठती है । शहरी जीवन को अत्याधुनिकता से प्रभावित उम्मी का वासनात्मक रूप अपने माँ के प्रेमी को छीन लेता है, तो वही माँ का वासनात्मक घिनौना रूप अपनी बेटी की दुनिया में जहर घोल देता है। किन्तु आदर्श की स्थापना करती कम्पाउण्डर की पत्नी निर्मला, भुवनेश्वरी को वेश्यावृति का अड्डा बना आश्रम से मुक्ति दिलाकर एक स्तुत्य कार्य करती है।

इस प्रकार शहरी नारी पात्रों की आधुनिक जिंदगी जितना ही पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है तो उतना ही एक तरफ निर्मला जैसी मुक्तिवादी शहरी नारी पात्र आदर्श का मानदण्ड स्थापित करती है।

हम देखते हैं कि नागार्जुन के उपन्यासों में इन शहरी नारी पात्रों की संख्या भले ही कम हो किन्तु उनमें एक तरफ जहाँ भारतीय संस्कृति की झलक मिलती है तो वहीं दूसरी तरफ पाश्चात्य संस्कृति की झलक भी है । एक तरफ नारी सब कुछ झेलने को तैयार है तो दूसरी तरफ क्रान्तिकारी नारी चेतना फैलाने के लिए भी तैयार है ।

3. ख. VI. शिक्षित नारी पात्र :

नागार्जुन के उपन्यासों में शिक्षित नारी पात्रों का अभाव है । तत्कालीन परिवेश में नारी की स्थिति शिक्षा के प्रति अत्यन्त कमजोर दिखती है । कुछ जागरूक पारिवारिक परिवेश में शिक्षा प्राप्त करने वाली शिक्षित नारियाँ यदा-कदा ही मिलती हैं ।

'बलचनमा' में कामेन्द्र की पत्नी पढ़ी-लिखी शिक्षित नारी पात्र है, जो अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत है। वहाँ शिक्षा एक नयी चमक के साथ उपस्थित है।

'नई पौध' की ललाइन, 'कुम्भीपाक' की रंजना ओझा, चंपा, पढ़ी लिखी शिक्षित नारी पात्र है जो शहर के आधुनिक परिवेश में रहते हुए भी अपने मूल्यों के प्रति सचेत हैं ।

खोती हुई संस्कृति के प्रति सजग भी हैं और नारी विषयक मूल्यात्मक अवधारणाएँ तो कूट-कूट कर भरी हैं – जिसका जीता जागता उदाहरण सिर्फ और सिर्फ रंजना है। जबकि चम्पा तो आधुनिक फिसलन की शिकार है जो पुरुष वर्चस्व की गृह-दृष्टि से बच नहीं पाती।

'उग्रतारा' को नर्मदेश्वर की भाभी शिक्षित नारी पात्रों में आदर्शात्मक स्वरूप लेकर उपस्थित है, जो शिक्षित होने के कारण सारी रूढ़ियों को तोड़ते हुए उगनी की शादी कामेश्वर से कराने में सफल हो जाती है। उगनी की शादी का सम्पूर्ण श्रेय नर्मदेश्वर की भाभी को है, जो कामेश्वर और उगनी को मिलाकर अत्यंत प्रशंशित कार्य करती है। 'उग्रतारा' की गीता शिक्षित नारी पात्र है जो उगनी के संवेदना को भली-भाँति समझती है और शिक्षित होने के चलते उगनी के अनमेल विवाह पर अफ़सोस व्यक्त करती है।

'जमनिया का बाबा' में शिवनगर की रानी शिक्षित नारी पात्र नागार्जुन के उपन्यासों में अपनी सशक्त भूमिका में उपस्थित हैं। जहाँ अपने शिक्षा का समुचित उपयोग समाज कल्याण और नारी हित में करती हुई नजर आती है, क्योंकि बाबा नागार्जुन के सारे उपन्यास आँचलिकता पर आधारित है । इसलिए इनमें शिक्षित नारी पात्रों की संख्या का अभाव, दिखता तो है किन्तु अल्प संख्या में समोवेशित शिक्षित नारी पात्र नारी चेतना के रूप में विमर्शात्मक पहलू को प्रतिष्ठा प्रदान करती है।

3. ख. VII. अशिक्षित नारी पात्र :

नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग चरित्र के रूप में अशिक्षित नारी पात्र की भारी संख्या है। आँचलिक पृष्ठभूमि की कथाओं में ग्राम्य संस्कृति की रूढ़िवादी परम्परा के अन्तर्गत अधिकतम संख्या अशिक्षित नारी पात्रों का ही है। तत्कालीन परिवेश में भारत जल्दी ही स्वतंत्र हुआ था, और ग्रामीण क्षेत्रों में नारी शिक्षा का अभाव था । एक तो दूर-दूर बसे हुए स्कूल और कालेजों के चलते मिथिलांचल के धरती पर अकेली लड़कियों का दूर-दूर तक जा पाना कठिन और लोक प्रचलन के विरूद्ध कार्य था।

नारी शिक्षा के प्रति समाज में जागरूकता का अभाव रहा और मिथिलांचल में आवागमन के साधनों की कमी से ग्रामीण महिलाएँ शिक्षा से वंचित रहीं, वैसे नागार्जुन की कथा-भूमि में 'रतिनाथ की चाची' की मुख्य नारी पात्र उमानाथ की माँ अर्थात गौरी, अशिक्षित नारी पात्र ही है। दमयन्ती अर्थात दम्मो फुआ गाँव की औरतों में अत्यन्त ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय है। किन्तु अशिक्षित रामपुर वाली चाची, गौरी की माँ, पंडिताइन, चमारिन, सुलेखा, सुमित्रा, चन्द्रमुखी आदि नारी पात्र अशिक्षित नारी पात्र हैं । ये पढ़ी-लिखी भले न हो, किन्तु जीवन के लम्बे अनुभव से प्राप्त ज्ञान किसी भी तरह एक शिक्षित अनुभवी से कम नहीं है। यही नहीं सारे कुटिल चक्रान्तों के उस्ताद भी हैं । ग्राम्य परिवेश में होने वाली सतही घटनाओं में इनकी अहम भूमिका भी है। कुटिल चाल चलने में ये अत्यन्त ही माहिर है। गौरी की माँ जिस चमारिन को गौरी के गर्भपात के लिए बुलाती है, वह अशिक्षित होते हुए भी अपने अधिकारों के प्रति सजग है। अवैधानिक कार्य के बदले जो रकम पाती है उससे वह संतुष्ट नहीं होती, और कहती है कि इससे पहले तो हमने बहुत सारे कार्य किए लेकिन यह तो मामला ही कुछ और है। गौरी की माँ की मजबूरियों का फायदा उठाते हुए चमारिन बोलती है – ''अगर थाने में किसी ने जाकर चुगली कर दी तो मुझे जेहल-डामुल होगा । तुम लोग तो धन वाली हो, हाकिम भी तुम्हारी तरफदारी कर लेगा, कितने जोखिम का काम है पेट गिराना, पता चल जाए तो सरकार मेरा सत्यानाश कर देगी ।''[54]

'बलचनमा' में जमीनदारिन (मलिकाइन) बलचनमा की माँ और दादी, उसकी बहन, खेती तथा (जमीनदारिन) के घर में काम करने वाली खबासिन, फूल बाबू की माँ, राधा बाबू की पत्नी और उसकी ननद धनवन्ती, चुन्नी की पत्नी, सुगनी ये अशिक्षित नारी पात्र हैं, जो ग्राम्य जीवन में अपने तरह के अलग बुद्धि कौशल के परिचायक हैं ।

मलिकाइन अशिक्षित होने के बावजूद भी सामन्ती वर्चस्व में अंधी हैं और अन्य वर्गीय नारी ; पुरुष के साथ उनका वही वर्चस्ववादी व्यवहार है । कुटिल बुद्धि के संचालन में

शिक्षा आड़े नहीं आती । सारे राजशाही व्यवस्थाओं को अपने हाथ में लेकर चलाने में भी सफल है ।

'नईपौध' के अशिक्षित नारी पात्रों में पण्डिताइन, रामेश्वरी, माहे की भाभी सहुआइन, कान्ता, खंजन तथा अन्य सहेलियाँ हैं । अशिक्षित होने के बावजूद भी रामेश्वरी अपनी बेटी के साथ होने वाले अन्याय के प्रति सचेत है और पिता द्वारा किए जा रहे इस अनमेल विवाह से पुत्र के भविष्य की चिन्ता भी सताए जा रही है। पिता के प्रति उसका आक्रोश उभर कर सामने आता है – "अपनी बच्ची के सौन्दर्य पर जहाँ उसे अभिमान था, वहीं अपने आप के राक्षसी लोग पर उसके मन में घृणा ही घृणा थी । कई बार वह सोचती कि बिसेसरी को कनेर की गुठली घिसकर पिला दे । क्या करेगी जीकर बिसेसरी ? ऐसी जिन्दगानी से मौत लाख गुना बेहतर !! मगर माँ का मोह रामेसरी के परिताप पर मानी चंदन का लेप चढ़ा जाता, वह सोती हुई बिसेसरी को खींचकर अपनी छाती से सटा लेती ओर होंठो को आहिस्ते से चूमकर गाल से गाल सटाकर अपनी बेचैनी पर हावी हो जाती । साँस अपनी स्वाभाविक गति पर आ जाती और फिर निद्रा देवी का बुखार बेचारी की अंदर दाखिल कर लेता ।"[55]

'बाबा बटेसरनाथ' की दादी प्राचीन ग्रामीण संस्कृतियों की निर्वाहक है तो वही 'वरुण के बेटे' की बुढ़िया खुरखुन की पत्नी मंगल की माँ, सकुन्ती मोदिनी मनी, जितिया बुआ, तीरा, जिलेबिया, सिलेबिया आशिक्षित नारी पात्र हैं । किन्तु मुख्य नारी पात्र माधुरी अशिक्षित होने के बावजूद भी एक क्रान्तिकारी नारी के रूप में अपनी भूमिका निभाती हैं । वह नारे लगाने के लिए मंगल को उकसाती है । किन्तु मंगल के गायब जोश को देखकर माधुरी से रहा नहीं गया । वह बेंच से उठकर फिर आगे आ गयी पुलिस भान के पिछले छोर पर खड़ी हो गयी, बांये हाथ से उसने ऊपर लटकती जंजीर को थाम लिया और दाहिना हाथ घुमा-घुमाकर नारे लगाने लगी, लोग दुगुने-चौगुने जोश में जबाबी जोर देने लगे –

'इन्कलाब ! जिन्दावाद ! 'मछुआ संघ - जिन्दाबाद ! हक की लड़ाई जितेंगे - जितेंगे गढ़ पोखर हमारा है ।''[56]

'पारो' नामक उपन्यास में पार्वती की माँ पीसी, बिरजू की नारी, बिरजू की माँ आशिक्षित नारी पात्र हैं ।

'दुखमोचन' में छोटी बहू, मामी, कंचन की बहन चमकी, हरखू की माँ माया और उसकी माँ, रामसागर की पत्नी, अशिक्षित नारी पात्र की भूमिका में हैं । किन्तु जीवन संघर्ष असंतुलित परिधि से बाहर निकालने में मदद करता है।

'उग्रतारा' की गीता की माँ उगनी की माँ 'जमनीया का बाबा' में इमरितिया गौरी और लक्ष्मी अशिक्षित नारी पात्रों के रूप में नागार्जुन के उपन्यासों में उपस्थित है ।

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग चरित्र के रूप में नारी पात्रों का आधिक्य हैं । जिनकी जीवन शैली ग्राम्य संस्कृति, रूढ़ियों ढोंग और ढकोसलों पर आधारित अवश्य है, किन्तु वे अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत हैं ।

संदर्भ :

1. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 40
2. वही, पृ. 40
3. बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 120
4. वही, पृ. 13
5. वही, पृ. 128
6. नयी पौध : नागार्जुन, पृ. 66
7. वही, पृ. 167
8. वही, पृ. 67
9. वही, पृ. 67
10. वही, पृ. 72
11. वही, पृ. 180
12. वही, पृ. 102
13. वही, पृ. 103
14. वही, पृ. 39
15. दुखमोचन नागार्जुन, पृ. 73
16. उग्रतारा : नागार्जुन, पृ. 53
17. वही, पृ. 139
18. वही, पृ. 25
19. वही, पृ. 27
20. वरुण के बेटे : नागार्जुन, पृ. 73
21. वही, पृ. 97
22. वही, पृ. 176
23. वही, पृ. 77
24. वही, पृ. 19
25. कुम्भीपाक : नागार्जुन, पृ. 113
26. वही, पृ. 113
27. वही, पृ. 13
28. वही, पृ. 12
29. वही, पृ. 113
30. वही, पृ. 17
31. जमनिया का बाबा : नागार्जुन, पृ. 89
32. पारो : नागार्जुन, पृ. 38

33. पारो : नागार्जुन, पृ. 59
34. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 25
35. वही, पृ. 25
36. बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 128
37. वही, पृ. 130
38. वही, पृ. 157
39. वही, पृ. 106
40. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 27
41. कुम्भीपाक : नागार्जुन, पृ. 183
42. वही, पृ. 198
43. वही, पृ. 152
44. वही, पृ. 15
45. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 53
46. वही, पृ. 35
47. बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 141
48. वरुण के बेटे : नागार्जुन, पृ. 56
49. उग्रतारा : नागार्जुन, पृ. 36
50. वही, पृ. 58
51. जमनिया का बाबा : नागार्जुन, पृ. 113
52. वही, पृ. 22
53.वही, पृ. 45
54. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 26
55. नयी पौध : नागार्जुन, पृ. 55
56. वरुण के बेटे : नागार्जुन, पृ. 52

चतुर्थ अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी की भूमिका

चतुर्थ अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी की भूमिका

उपन्यासकार नागार्जुन के उपन्यासों में नारी अपनी विविध भूमिका में उपस्थित है। जीवन-संघर्ष का क्रम कहीं ग्राम्य क्षेत्र में है, तो कहीं शहरी क्षेत्र में । शहरी क्षेत्र की नारियाँ भी अपने अधिकारों के लिए लड़ती दिख पड़ती हैं, तो वहीं ग्राम्य जीवन में संघर्षशील नारियाँ भी अपने अधिकारों के प्रति चैतन्य हैं । नारी पात्रों के चित्र नागार्जुन के उपन्यासों में उनके आधिकारिक माँग को लेकर है । जहाँ परिवार में अधिकार खोती नारी सम्बन्धों के बीच घुटती हुई नजर आती है, तो वहीं सामाजिक विषमताओं की शिकार नारी उन विषमताओं के विरोध में उठ खड़ी होती हैं । परिवार में नारी सम्बन्धों के निवार्ह में अपनी जिन्दगी खपा देती है। फिर भी उसका आधिकारिक क्षेत्र अत्यन्त सीमित है, जिसकी माँग के लिए वह अनवरत संघर्षरत हैं । समाज के कुछ तत्वों द्वारा छली गयी नारी अपने चेतनागत स्वरूप की मजबूती प्रदान करने में लगी है। वह मजबूती उसकी अपनी अकेले नहीं बल्कि सम्पूर्ण नारी वर्ग के हित के लिए है, परिवार में अभाव की जिन्दगी जीती नारी धार्मिकता के प्रति आकृष्ट होती है। जहाँ उसे एक मजबूत मानसिक सम्बल प्राप्त होता है।

वैसे तो धार्मिक ढोंग-ढकोसलों की शिकार जमनीया के मठ जैसी लक्ष्मी बहुतेरी हैं, किन्तु वे अपने अधिकारों के प्रति मौन नहीं रहतीं । धन और सम्पदा से परिपूर्ण उच्च वर्गीय परिवारों की नारियों का चित्र जो नागार्जुन के उपन्यासों में प्राप्त होता है। वह मिथिला की भूमि का सहज नारी चित्रण है।

आर्थिक भूमिकाओं में नारी का योगदान घर-गृहस्थी के माध्यम से कृषि उत्पाद के माध्यम से और मितव्ययीता के माध्यम से प्राप्त होता है ।

ग्रामीण क्षेत्र की नारी पात्र कम पढ़ी-लिखी होने के कारण काम काजी नारियों के रूप में कम ही नजर आती हैं, फिर तो औसतन उनकी संख्या कम भी नहीं है ।

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी की भूमिका का अवलोकन करें तो नारी की पारिवारिक भूमिका नारी की सामाजिक भूमिका, नारी की आर्थिक भूमिका एवं काम-काजी नारी की भूमिका प्राप्त होती है।

पारिवारिक भूमिका में नारी अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करती नजर आती है। समाज में विविध वैषम्यताओं से लड़ती नजर आती हैं ।

धार्मिक भूमिका में गहरी आर्थिक अवस्था का निर्वाहक तो हैं ही किन्तु ढोंग-ढकोसलों के प्रति चैतन्य भी है । नारी के आर्थिक व्यवस्था विविध रूप में प्राप्त होती है। काम-काजी नारी की भूमिका में नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी आधुनिक परिवेश में अपने अधिकारों के माँग के लिए लड़ती हुई नजर आती है।

4. क. नारी की पारिवारिक भूमिका :

मनुष्य एक सामाजिकता में जीता है और परिवार समाज की इकाई है, मनुष्य समाज के अन्दर पलता बढ़ता है, जिसकी देख-रेख परिवार के बीच होती है, पारिवारिक संस्कारों में बंधा व्यक्ति सामाजिक बन्धन से बंधा रहता है। परिवार में नारी की अहम भूमिका होती है । नारी कहीं माँ के रूप में है, कहीं दादी के रूप में, कहीं चाची, बहन, तो कहीं पत्नी और प्रेमिका भी, किन्तु सबसे महत्वपूर्ण भूमिका नारी के पारिवारिक सम्बन्धों के निर्वाह में अगर वह माँ है तो पुत्र के प्रति जिम्मेदार है, पत्नी हैं तो पति और अन्य व्यक्तियों के प्रति या यूँ कहें कि नारी के बिना परिवार की संकल्पना ही सम्भव नहीं है ।

'रतिनाथ की चाची' जीवन के सारे संघर्षों को झेलने के बाद भी रतिनाथ का ख्याल रखती है । अपने दुःखों की चिन्ता कम, रतिनाथ के सुख-सुविधा का ख्याल अधिक है – ''इस मातृहीन बालक का अपनी चाची के प्रति बहुत ही गहरा स्नेह था । चाची भी रती को खूब मानती थी । पिछले चार माह में यह स्नेह और भी घना हो उठा, चारों ओर से लांछित, चारों ओर से तिरस्कृत होकर उमानाथ की माँ जब भूखे पेट ही सो जाना चाहती थी

तो रतिनाथ सत्याग्रह कर देता ऐसी क्या बात है चाची कि तुमने खाना पीना छोड़ रखा है ? अच्छा नहीं खाना है, न खाओ, मगर कल मैं भी नहीं खाऊँगा, नहीं खाऊँगा, नहीं खाऊँगा । इतना कहकर वह चाची की पीठ से सटकर बैठ जाता और उसके रूखे बालों में अपनी नन्ही-नन्ही अँगुलियाँ उलझाने लगता । चाची की देह सिहर उठती और जयनाथ याद आ जाते, तब वह उठ बैठती, और दो-चार कौर भात खा लेती ।''[1]

पुत्र के रूप में मातृहीन बालक के प्रति स्नेह रखने वाली 'रतिनाथ की चाची' वैधव्य का तिरस्कृत जीवन जीने के लिए मजबूर हैं । विभिन्न लांछनाएँ लगती रहती हैं । उसके बावजूद भी मातृ तुल्य स्नेह में रति को बाँधे रखती है – ''हाँ चाची ही थी, उसी ने नींद में विभोर रतिनाथ को उठाकर दाल-भात और बैंगन का चोखा खिला दिया रती बराबर आँखें मूँदे ही रहा । खिला-पिलाकर कुल्ली कराकर चाची ने उसे अपने पास सुला लिया । खुद उसने कुछ नहीं खाया बचा भात बाहर डाल दिया था ।''[2].

पारिवारिक बंधनों से बंधी नारी की दुश्चिन्ता तब बढ़ती जाती है, जब वह दीन-हीन होकर अकेली रह जाती है । वैधव्य जीवन के फिसलन के कारण परिवार में सामाजिक त्रासदी झेलती रतिनाथ की चाची अपने को अकेला महसूस करती है – ''उस रात चाची को नींद नहीं आई । जिसके माथे पर विपत्ति का इतना बड़ा पहाड़ हो, वह भला कैसे सोए ? भादों, आसिन, कातिक, अगहन, पूस, माघ, फागुन और यह चैत - आठवाँ महीना चल रहा था । पेट में बच्चा ऊधम मचाने लगा था । चाची को ख्याल आया जयनाथ का चेहरा और फिर उसने सोए हुए रती का मुँह चूम लिया । उमानाथ की माँ जानती थी कि जयनाथ देवघर था और आजकल काशी में है। बेचारी ने कई बार चिट्ठी लिखवाना चाहा, मगर किससे लिखवाती ? जयनाथ वादा कर गए थे कि दस दिन में ही मैं बाबा (वैद्यनाथ) को जल डालकर आ रहा हूँ ।''[3]

इस मुसीबत का सामना जिसे करना चाहिए वह कहीं यों बाबा वैद्यनाथ और

काशी विश्वनाथ के ईद-गिर्द गाल बजाता फिरे ? छिः ! ऐसा था तो मुझे भी साथ ले लिया होता । हे भगवान ! पानी में डूब मरने के अतिरिक्त क्या और कोई उपाय नहीं है ? सुनती हूँ, लहेरियासराय के सरकारी अस्पताल की डाक्टरनी गर्भ गिराने में बहुत कुशल है .... मगर वहाँ तक मैं पहुँचूँगी कैसे ?''[4]

इस प्रकार पारिवारिक जिन्दगी जीती हुई भी रतिनाथ की चाची स्वयं को अकेला महसूस करती है और रती के लालन-पालन में दिन-रात लगी अभावों की जिन्दगी जीती समाज में उपेक्षित और तिरस्कृत होती, किन्तु जीवन संघर्ष में पारिवारिकता से परे नहीं सोचती । गौरी की माँ अपने परिवार की जिम्मेदारी उठाने वाली अकेली औरत हैं । परिवार के जिम्मेदारियों के प्रति सजग गौरी की माँ अपनी बेटी को सामाजिक लांछनाओं से बचाने के लिए हर सम्भव प्रयास करती है । एक माँ के रूप में अपने पारिवारिक कर्तव्य का निर्वाह करती है । पहले तो उसे गौरी पर बहुत गुस्सा आता है – ''गौरी की ठुड्डी छूकर कर्कस स्वर में उसने पूछा, यह क्यों कर आयी है तू ? ''इस खानदान में जो किसी ने नहीं किया, इस अभागिन ने वही कर डाला ! हे दूर्गा ! हे कपिलेश्वर ! अब मैं इसका क्या इलाज करूँगी ?''[5] इस प्रकार वह अपने कुल खानदान और अपनी बेटी की मर्यादा के प्रति सजग और चिंतित है ।

इस तरह गौरी के विषम में चिंतित उसकी माँ के मनःपटल पर उस समय की बात याद आयी जब गौरी के विधवा होने पर माँ ने उसे पितृगृह में रहने की अपेक्षा की थी । किन्तु गौरी ने कहा था – ''बापू ने कुश तिल जल लेकर मुझे दान कर दिया, फिर मेरा इस घर में रहना अनुचित नहीं हागा । माँ ! विवाहिता के लिए पितृकुल का अमृत भी पतिकुल का माड़ या पीने का साधारण जल की तुलना में तुच्छ है । माँ तभी तो तुमने अपनी नानी के धन पर लात मार दिया था है ना माँ ।''[6]

माँ को अपनी बेटी पर दया आ जाती है और माँ बेटी लिपटकर घंटों रोती हैं ।

गौरी वैधव्य जीवन में माँ बनने वाली थी, जिसे समाज निकृष्ट दृष्टि से देखता है किन्तु अपनी बेटी के अधिकारों के सजग उसकी माँ उस परिस्थिति का डटकर मुकाबला करती है। शाम को सुखो की सास जब आकर बताती है कि गाँव घर में गौरी की चर्चा किस तरह हो रही है । कैसे इस घटना को लेकर औरतें छिः, छिः, थू, थू, कर रही है । मर्दों का क्या है, इस बारे में सुक्खों की सास जरा भी जानकारी नहीं रखती थी ।

सुक्खो के प्रति उत्तर में छाती ठोंकती हुई वह बोली – "देखे कौन क्या बिगाड़ता है ? मैं रूई का फाहा नहीं हूँ कि लोग फूँक देंगे और उड़ जाऊँगी ।"[7]

गौरी की माँ समाज के लिए बाघिन थी । इतना बड़ा कुकांड हो जाने पर भी तरकुलवा में किसी ने गौरी की माँ की खुल्लम-खुल्ला कुछ न कहा । गर्भ गिराने के ग्याहरवें दिन उसने सत्यनारायण की पूजा करवायी, गाँव भर को आमंत्रित किया ! कुछ लोगों का मानना था कि सिमरिया घाट जाकर प्रायश्चित किया जाए, किन्तु गौरी की माँ का कहना था कि बूँद भर जल में उतना ही सामर्थ्य है जितना सिमरिया घाट की गंगा में । मेरी बेटी ने गौ हत्या या ब्रह्महत्या का पाप नहीं किया है ।

इस तरह वह धार्मिक रूढ़ियों और अन्धिविश्वासों के प्रति सजग और जागरूक है।

सुमित्रा और चन्द्रमुखी भी अपने परिवार के उत्तरदायित्वों के प्रति कर्मनिष्ठ सजग और सचेत है। वे अपने दायित्वों का निर्वाह भली-भाँति करती हैं। प्रतिभामा ताराचरण की माँ, शकुन्तला और रामपुर वाली चाची भी अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह उचित ढंग से करती हैं । कमलमुखी जो कि गौरी की बहू है वह एक तरफ तो अपने परिवार के दायित्वों के प्रति सजग है, किन्तु दूसरी तरफ गौरी के विषय में जानकर उसके प्रति दुर्व्यवहार करती है ।

इस प्रकार 'रतिनाथ की चाची' सभी नारी पात्रों में जहाँ एक तरफ अपने उत्तरदायित्वों को लेकर सजगता है । वही उनके अन्तर्मन में धार्मिक रूढ़ियों का भी

अन्तर्द्वन्द चलता दिखायी देता है ।

'बलचनमा' उपन्यास में नारी की पारिवारिक भूमिका के अन्तर्गत बलचनमा की दादी अपने परिवार के प्रति सजग है। वह बलचनमा को गाँव की जमीनदारिन के यहाँ ले जाती है और मलिकाइन के पैर पकड़ लेती है – "आज से आप ही इस निभावो की माँ-बाप हुई गिरहथिनी । आपका जूठन खाकर इसका भाग चमकेगा ....।"[8]

दरिद्रता की मारी हुई 'बलचनमा' की दादी मलिकाइन से कुछ काम देने का आग्रह करती है। अभाव की त्रासदी झेलती 'बलचनमा' की दादी परिवार की दयनीयता को समाप्त करने के लिए बलचनमा को जमीदारिन के यहाँ रखवा देती है । बलचनमा की माँ पारिवारिक कर्तव्य निर्वाहन के प्रति सजग और सचेत है। अभावों से जूझती जिन्दगी में खाने-खोने और दाने-दाने के लाले पड़े हैं । सास की भूख मिटाने के लिए बलचनमा की माँ जिन परिस्थितियों से गुजरती है उसकी बलचनमा सोचता है – "दादी को रोटी हजम नहीं होती थी, चावल जरूरी था, लाख छटपटाया, बड़ी, मझली या छोटी किसी मलिकाइन ने मुट्ठी भर चावल नहीं दिया । माँ ने जाकर मझलें से कहा तो उनकी आँखें घूम गयी बोले, बखत पड़ता है तो घिघियाकर हमारे यहाँ दौड़ती है ....।"[9]

इस प्रकार गालियाँ सुनती हुई अपने पारिवारिक जिम्मेदारियों से न मुकरने वाली बलचनमा की माँ नारी जीवन के पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करती है। पुत्री की काम पर ले जाने वाली बलचनमा की माँ अपने सहयोग के लिए मालिक के घर पहुँच तो जाती है। किन्तु सामन्ती विचारधारा की लोलुप दृष्टि से बचा नहीं पाती किन्तु माँ के फर्ज का निर्वाहन करती लात जूते खाने के बाबजूद भी अपनी पुत्री रेबनी और माँ की भूमिका में पुत्री की इज्जत बचाने में सफल हो जाती है – "बबुआ बलचनमा मर जाना लाख गुना अच्छा है, मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं ।"[10]

फूल बाबू की माँ और महेन बाबू की माँ बलचनमा में अपने पारिवारिक दायित्व

बोध के साथ उपस्थित हैं । उच्च वर्गीय परिवार को होने के चलते परिवार में धार्मिक वातावरण का विस्तार करती है। 'बलचनमा' की मलिकाइन (जमीनदारिन) हैं जो अपने परिवार में पूरे अधिकार के साथ शासन करती हैं । नौकरों से काम कराने का उनका अनुठा तरीका है । छोटी मलिकाइन का सातिराना अंदाज परिवार के सारे नौकरों को भौंचक कर देता है – "मालिक घर में रहे या न रहें ? मालिकाइन खुद ही गृहस्थी का सारा काम संभालती थी । यह जनानी बड़ी चालाक थी । दबकर, झुककर, तनकर या ऐंठकर जैसे भी हो अपना मतलब पूरा करने में ओस्ताद थी ।"[11]

पारिवारिक भूमिका में राधा बाबू की पत्नी पति की सेवा में दिन व्यतीत करती है और सम्पूर्ण चेतना के साथ नारी में निहित गुणों के आधार पर परिवार के प्रत्येक सदस्यों पर निगाह रखती है। परिवार के नौकर के प्रति कोमल व्यवहार करने वाली राधा बाबू की पत्नी नौकरों के खान-पान की भी व्यवस्था करती है।

इस प्रकार बलचनमा में राधा बाबू की पत्नी की पारिवारिक भूमिका अत्यन्त सहिष्णु महिला के रूप में हैं, जो राधा बाबू के प्रति ध्यान तो रखती ही हैं, उनके साथ गाँधी आश्रम में जा बसती हैं । वहाँ स्थान पसन्द कर भड़इया मे धुआँ निकलने की व्यवस्था, पानी निकलने की व्यवस्था करके उस स्थान को एक सुव्यवस्थित पारिवारिक माहौल प्रदान करती है ।

बलचनमा की माँ और बहन रेवनी के अलावा उसकी पत्नी भी सौम्य स्वभाव पारिवारिक महिला है जो परिवार के सदस्यों की देख-रेख बड़े सजिन्दगी के साथ करती है और बलचनमा का घर सम्भाल लेती है । और एक पुत्री को जन्म देकर सम्पूर्ण घर में खुशहाली भर देती है । अपने सामाजिक परिवेश का वर्णन करते हुए बलचनमा स्वयं कहता है – "पहले कुछ दिनों तक माँ ने सुगनी को खेत में नहीं जाने दिया, पीछे मगर वह मान गयी । गरीबों के यहाँ यह सब चोचले नखरे नहीं चलते, बहू हो चाहे बेटी खेत में काम करने

जाना पड़ेगा, पानी भरना होगा, माल-मवेसी चराने होंगे, सिंगार-पटार में बर्बान करने लायक बखत गरीब घर की जनानी को कहाँ से मिलेगा भैया ? बड़ी जाति वाले चाहे कितना भी गरीब हो, उन्हें घर की औरते रोजी धंधा के कामों में मर्दों का हाथ नहीं बटा सकती । उनके यहाँ औरते निकम्मी-निट्ठली बैठी रहती है । जितना ही बड़ा खानदान होगा, औरतों में उतना जास्ती निट्ठल्लापन पाओगे । हमारी औरतें मेहनत मजूरी का दाना खाती है । अपनी माँ बहन और बहू-बेटियों के हाथ-पैर हमारे यहाँ सिर्फ छूने मसलने या नाचने थिरकने का सामान नहीं हुआ करते, हमारी जिन्दगी का सहारा है ये हाथ पैर ।"[12]

इस तरह बलचनमा के इस लम्बे कथन में उपन्यास में पारिवारिक भूमिका में उपस्थित नारी पात्रों की सारी स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

'नई पौध' में नारी की पारिवारिक भूमिका सारी परम्पराओं को तोड़ती नजर आती है। अगर नारी अपने घरेलू कर्तव्यों के पालन में दिन-रात लगी रहती है, तो वहीं साधिकार पारिवारिक परिवेश में अपनी गहरी पैठ बनाने के लिए छटपटाती नजर आती है । रामेसरी को पारिवारिक जीवन व्यथा वैधव्य की त्रासदी से प्रारम्भ होती है । एकलौती पुत्री विसेसरी की शादी की चिन्ता दिन-रात सताए रहती है। रामेसरी अपने मायके में पिता के परिवार में शरण लेती है । सहज पारिवारिकता में पलती रामेश्वरी की पुत्री विसेसरी नाना की नजरों में विवाह करने योग्य हो चली । विसेसरी पारिवारिक रूढ़ियों के चलते कम उम्र में ही विवाह करने के लिए तैयार करायी जाती है। साठ वर्ष के दूल्हे को देखकर विसेसरी की माँ रामेश्वरी के हृदय में पिता के प्रति घृणा भाव भर जाता है जो इस पन्द्रह वर्ष की सोन छड़ी को साठ वर्ष के वृद्ध से ब्याहना चाहता है । रामेश्वरी का यह पारिवारिक संघर्ष विस्तृत रूप धारण करता है और बम पार्टी के नवयुवकों के सहयोग से यह ब्याह होने से रोक लिया जाता है । रामेश्वरी का यह पारिवारिक संघर्ष अपने तरह का एक विशेष प्रभाव छोड़ जाता है, जिससे माँ के पारिवारिक दायित्व का निर्वाहन करते हुए वह विसेसरी की जिंदगी नरक

होने से बचा लेती है । तीनों बहुओं के साथ पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाहन करती रामेश्वरी अपनी भाभियों के उचित मर्यादित स्थान देती है । विसेसरी के प्रति तीनों भाभियों का पारिवारिक स्नेह बरकरार है । जिनके सहयोग से विवाह न होने की लांछना को धोने में सफल होती है ओर विवाह के बाद कामेश्वर के साथ पारिवारिक जीवन व्यतीत करती हैं।

इस प्रकार 'नई पौध' में सहुआइन, पण्डिताइन, मझली भाभी आदि का विशेष पारिवारिक जीवन है ।

'वरुण के बेटे' में भोला की माँ बुढ़िया पारिवारिक रूप में काफी प्रतिष्ठित महिला है, जिसके सहज पारिवारिकता का परिचय तब प्राप्त होता है जब परिवार के अन्य सदस्य उसके उचित मन का सम्मान करते हैं । खुरखुन की पत्नी सामान्य पारिवारिक भूमिका में उपस्थित है । माधुरी जी 'वरुण के बेटे' की मुख्य नायिका है । अपने पारिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति सजग और सचेत हैं – ''मंगल का ख्याल भुलाकर माधुरी इधर-उधर के कामों में और बात-चीत में उलझी रही । भाई-बहनों को खाना बनाकर खिलाया और खुद खाया । हँडिया फिर उसी तरह अन्दर झोपड़ी में टाँग दी । बिसुनी बाबा को टिकिया सुलगाकर दिया । बीच-बीच में भेंड़ से जा-जाकर मछलियों का भी अपना मोर्चा सँभाल आई थी।''[13]

अपने पारिवारिक दायित्वों के प्रति सजग माधुरी अपने प्रेमी मंगल के ख्यालों तक को भूल जाती है। भाई-बहन की देख-रेख में समय व्यतीत करती है। माधुरी की पारिवारिक भूमिका भाई-बहनों के प्रति पूर्ण जिम्मेदाराना है तो वहीं प्रेमी के प्रति पूर्ण आस्थावान और माँ के प्रति श्रद्धा भाव । माधुरी के इस मधुर पारिवारिक व्यवहार से प्रभावित है। माधुरी के सन्दर्भ में सोचती हुई माधुरी की माँ की आँखें भर आती है । निकम्मे ससुर की प्रताड़ना से माधुरी मायके में रहती है । माधुरी के सास का मर जाना, माधुरी की माँ को बहुत खलता है। माधुरी के पारिवारिक व्यवहारों से खुश उसकी माँ कहती है – ''और जो हमारी सोन

छड़ी को सराहती, वही इन धरती पर नहीं रही ; चली गई है सरगौली हाट ! ससुर है तो बुढ़वा ताड़ी पीकर धुत्त बना रहता है ! बहिन फिकिर के मारे पलकों से नींद उड़ गई है हमारी .... रो पड़ी माधुरी की माँ ।''[14]

माधुरी की माँ की चिन्ता पुत्री के प्रति पारिवारिक दायित्व निर्वाह में सजग ओर सचेत है। पारिवारिक जिम्मेदारियों को सम्भालने वाली माधुरी कर्त्तव्यनिष्ठ लड़की है । किन्तु उसके ससुराल में उचित पारितोषिक नहीं मिलता ।

इस प्रकार माधुरी की माँ पारिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति सजग और सचेत है और 'वरुण के बेटे' में नारी की पारिवारिक भूमिका इस रूप में प्रतिष्ठित है।

'पारो' में पार्वती मुख्य नायिका के रूप में पारिवारिक वैषम्यताओं की शिकार है। माँ की दृष्टि में कुलक्षणी है। पिता की मृत्यु का कारण इसी को माना जाता है। माँ की पारिवारिक उपेक्षा वर्दाश्त करते-करते जर्जर हो चुकी है। खींझ भरी पारिवारिक जिन्दगी में वह तनावग्रस्त हो चुकी है। इसीलिए बिरजू के जाने पर वह गुस्से से बोल उठती है – ''लोग रोते-हँसते हैं, जन्म लेते मरते हैं - जब जैसा होता है, सो करते-धरते हैं, किसी से कोई पूछने जाता है ? बाबूजी मरे सो किसी से क्या पूछा था ? मैं जो तेरहवे साल में ही पन्द्रह की लगती हूँ सो ....?''[15]

पारिवारिक जीवन की त्रासदी झेलती पारो पितृहीन माँ की नजरों में घृणा की वस्तु है । पितृहीन होने के चलते माँ की नजरों में घृणा की वस्तु है, पितृहीन होने के चलते माँ की नजरों में कलंकनी है।

पारिवारिक परिवेश में वृद्धों की व्यस्तता का वर्णन करते हुए नागार्जुन विरजू की नानी को पारिवारिक भूमिका का उल्लेख करते हैं – ''हाँ तो , नानी ठाँव किए और भात परोसे बैठी राह देख रही थी । आँगन गया तो अलग से ही देखकर आक्रोश के स्वर में वे बोली – हूँ ! तीन बार तब से रूई कातती डेढ़-बीस पुनी बना डाली । तुमको आज हो क्या

गया है ? अनन्त गुँथना था, इसलिए जलपान भी नहीं किया । आओ अब, गिलास में पानी रखा है, पैर धो लो, बैठो जाकर मैं यहीं ला रही हूँ ।"[16]

नारी की व्यस्तता दर्शाती है कि नागार्जुन के उपन्यासों में यथा सम्भव अपने उम्र के अनुसार की जिम्मेदारियों को वहन करने वाली पारिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति सचेत है। वैसे तो चार्वली स्वयं पारिवारिक नसीब हो, मामी ।"[17]

मामी का यह जिम्मेदाराना पारिवारिक दायित्व पूर्णतः पारिवारिक नारी के कर्मशील स्वभाव का वर्णन तो करता ही है, साथ ही उनकी संवेदना परिवार में बड़े भूमिका में उपस्थित है । अपने कर्मठी स्वभाव के अनुसार वह पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाहन जिसकी प्रसंशा बिरजू भले कर ले किन्तु माँ की नजरों में वह अभागन ही हैं ।

पारो के साथ-साथ बिरजू की नानी, पारो की माँ प्रमुख रूप से नारी की पारिवारिक भूमिका उपस्थित है ।

'दुखमोचन' में पारिवारिक भूमिका में उपस्थित नारी पात्रों में प्रमुख रूप से मामी, माया, माया की माँ, छोटी बहू इत्यादि नारी पात्र है। दुखमोचन की मामी का पारिवारिक जीवन वैधव्यता का शिकार है । अतः वे दुखमोचन के गृह में दुखमोचन के विनय पर निवास करने लगती है और दुखमोचन के सारे पारिवारिक दायित्वों को सम्भाल लेती हैं । नारी में निहित पारिवारिक दायित्व का बोध मामी को अच्छी तरह है, जिसका पूरा-पूरा लाभ दुखमोचन और उसकी संतति को मिलती है । साधिकार दुखमोचन की मामी दुखमोचन और सुखदेव को देख-रेख करती हैं । मामी की पारिवारिक जिम्मेदारियों का दर्शन उस समय होता है जब नागार्जुन मामी के द्वारा भोजन परोसने की कला का वर्णन करते हैं – "थाली में करेले और कटोरे में दाल डाल दी मामी ने । कहा – कौन आनेवाले है ? कौन आने वाले है ? अरे, तुम्हारे दादा-परदादा तो नहीं आने वाले हैं न ? क्यों इतना परेशान होते हो छोटी-छोटी बात पर ? लाख समझाती हूँ कि कम से कम खाते समय तो मन को फिकर

और फतुर से अलग रखा करो .... दाल आज तुम्हारी ही पसंद की पकायी थी, बतलाओ क्या है ?

दुखमोचन ने चट से कहा – वाह, खूब सोधी है । भाड़ में भुने हुए मूँग की दाल जैसी तुम खिलाती हो वैसी और कहीं नहीं नसीब होती मामी।''[18]

मामी का यह जिम्मेदाराना पारिवारिक दायित्व पूर्णतः पारिवारिक नारी के कर्मशील स्वभाव का वर्णन तो करता ही है, साथ ही उनकी संवेदना परिवार में बड़े होने के चलते इस कदर बढ़ जाती है कि वह दुखमोचन की सामाजिक व्यस्तता पर खींझ उठती है और परिवार में बूढ़े होने के अधिकार के चलते उन्हें डाँट बैठती है – ''मामी की आँखें छलछला आयी, रोआसी आवाज में कहने लगी तुम्हे मार डालेंगे इस गाँव के लोग । दुनिया भर की मुसीबतें अपने सिर पर ढोये चलते हो .... बोटी भर की मांस है इठरी पर और रावण अहिरावण से कुस्ती लड़ेंगे ।''[19]

छोटी बहू जी सुखदेव की पत्नी है, सरल गृहस्थी की पारिवारिक भूमिका में तत्पर है। दुखमोचन की चोट पर हल्दी पीस लाती है तथा बड़े भाव के साथ पारिवारिक भूमिका में अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहती है और मामी जब आराम करने को कहती है तो बोलती है – ''सुस्ता तो रही हूँ, मामी ! छोटी बहू ने मामी की आँखों में झाँककर देखा ओर हँसकर बोली – एक काम से हटकर दूसरे काम में लग जाना भी सुस्ताना होता है .... नहीं होता है मामी ?''[20]

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यास 'दुखमोचन' में नारी की पारिवारिक भूमिका में दुखमोचन की मामी का शसक्त चरित्र उभरकर सामने आता है ।

'कुम्मीपाक' के नारी पात्रों में पारिवारिक भूमिका में मुख्य रूप से उम्मी की माँ ही नजर आती हैं, किन्तु साधारण रूप से कम्पाउण्डर की बीबी निर्मला, प्रतिभामा और आंशिक रूप से भुवनेश्वरी, महीम की बीबी, माँ और मामी उपस्थित हैं ।

प्रेम प्रपंच में नारकीय बनी पारिवारिक जिन्दगी को ढो रही उम्मी की माँ की व्यथा गहन चिंतनीय है। परिवारमें गृहिणी के रूप में तिल-तिल कर जीने वाली घुट-घुटकर मरने वाली महीम की मामी अर्थात उम्मी की माँ नारकीय पारिवारिक जीवन व्यतीत करती है। अवैध सम्बन्धों के बीच छुटती पारिवारिक जिन्दगी जहर बन गयी है क्योंकि इस परिवार में जो पुरुष माँ का प्रेमी है वही पुत्री का भी । माँ के चरित्रगत दोषों से परिचित होने पर पुत्री उस परिवार से नाता तोड़कर अलग हो जाती है, किन्तु हर जगह से ठुकरायी गयी उसकी माँ अपने दामाद के साथ अवैध रूप से रहने लगती है । पारिवारिक जिन्दगी का विद्रूप स्वर तब मुखरित होता है वह जब कोई भी गलती कर बैठती है – "कैसी गधी हो, फर्श को चौपट कर दिया .... हजार बार कहा की सम्भल कर स्टोप भरा करो, मगर तुम हो कि कानों में रूई ठूसे बैठी हो ....।"

मामी आहिस्ता से बोली फिनाईल से धो दूंगी फर्श महीम का गुस्सा बेकाबू हो गया – "फिनाइल की नानी ! हटो सामने से, खुदा बचाए, इस फूहर औरत से ।"[21]

इस प्रकार कुम्भीपाक की सरल संवेदना में सम्मिलित उम्मी की माँ की पारिवारिक भूमिका अत्यन्त ही त्रासदपूण्र हे। किन्तु सहज चेतना के साथ ही निर्वाह के मामले में तटस्थ भी है ।

'उग्रतारा' नामक उपन्यास में नागार्जुन ने उग्रतारा (उगनी) के पारिवारिक भूमिका के साथ-साथ नर्मदेश्वर की भाभी, उगनी की माँ, गीता और उसकी माँ का चित्र स्पष्ट किया है। अनमेल विवाह की त्रासदी झेलती उगनी के पारिवारिक भमखन सिंह, उगनी के पारिवारिक जीवन की शुरूआत करते हैं । उगनी का पारिवारिक परिदृश्य मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों के उथल-पुथल में अस्त-व्यस्त है और अपने पारिवारिक जीवन के प्रति संतुष्ट भी नहीं है । परिवार के मध्य दो व्यक्ति उगनी और भभीखन सिंह मौजूद हैं । उनके बीच

पारिवारिक दृश्य उभरते हुए नागार्जुन कहते हैं – "वह सब सुन लेगी । एक बार भी जुवान नहीं खोलेगी । इत्मीनान से परावठें पोतती रहेगी, आलू तलती रहेगी, सिपाही जी प्याज नहीं खाते हैं । उसमें भी प्याज छोड़ रखी है, सिपाही जी मांस-मछली का नाम तक सुनना पसंद नहीं करते, उसने भी मांस-मछली को अपने चित से उतार दिया है । सिपाही जी को सूजी का हलवा अच्छा लगता है, उसको भी सूजी का हलवा अच्छा लगने लगा है। सिपाही जी को पीले रंग में रंगा हुआ कपड़ा पसंद है, उसको भी वही पसंद है।"[22]

इस प्रकार 'उग्रतारा' सारी विषमताओं के बाद भी परिस्थितियों से समझौता कर समझदारी से पारिवारिक जीवन व्यतीत करने वाली नारी पात्र है । उसकी अन्तश्चेतना भले ही घायल हिरणी की तरह हो किन्तु पारिवारिक सामंजस्य स्थापित करने में वह शेरनी की तरह अडिग है ।

'जमनिया का बाबा' में मठ के आन्तरिक परिवेश में लक्ष्मी इमरितिया और गौरी का पारिवारिक परिवेश नजर तो आता है, किन्तु धार्मिकता की आड़ में परोसा गया व्यभिचार पारिवारिक मानदण्डों से परे दिखता है । आंशिक रूप से लक्ष्मी की संतानोत्पत्ति की घटना और उसे नर बलि के पश्चात उसका जागृत ममत्व जब विद्रोही स्वर में मुखर होता है तो अपने पुत्र के प्रति माँ का स्नेह पारिवारिक भूमिका की झलक प्रस्तुत करता है ।

इस प्रकार 'जमनिया का बाबा' में तीनों नारी पात्र पारिवारिक भूमिका से अलग-थलग नजर आती हैं और ऐसे ही 'बाबा बटेसरनाथ' में नारी के पारिवारिक भूमिका की एक झलक जयकिसुन की दादी के माध्यम से प्राप्त होता है । अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है - नागार्जुन के उपन्यासों की नारी पात्राएँ अधिकारिक तौर से अपने-अपने स्थान पर सजग पारिवारिक भूमिका में व्यवस्थित एवं प्रतिष्ठित हैं। नारी की पारिवारिक चेतना पूर्ण रूप से द्रष्टव्य है । जहाँ समाज के विविध वैशम्यों को झेलती नारी, रूढ़ियों एवं परम्पराओं को तोड़ती नारी अभाव से जूझती नारी, परिवार के प्रति पूर्णतः चैतन्य हैं ।

4. ख. नारी की सामाजिक भूमिका :

मानव एक सामाजिक प्राणी है । समाज की हर गतिविधियों में वह पूर्ण रूप से सरीक रहता है और उस गतिविधियों में नारी की भी अहम् भूमिका होती है। मनुष्य की सामाजिकता में नारी की सहभागिता कहीं माँ के रूप में, कहीं बहन के रूप में, कहीं पत्नी के रूप में, तो कहीं प्रेमिका के रूप में होती है । सामाजिक सरोकार में नारियाँ भी संलग्न होती हैं । सेवा भाव त्याग और तपस्या के साथ पुरुष वर्ग का सहयोग करती हैं । नारी की सामाजिक भूमिका कहीं समाज कल्याण के रूप में है तो कहीं सम्बन्धों के निर्वाह में । नारी अगर क्रान्तिकारी रूप में समाज का नेतृत्व करती हैं तो कहीं पर वह सामाजिक विद्रूपता का शिकार भी है। जैसे भी हो नारी की सामाजिक भूमिका हमारे समाज में अनेकों उदाहरण प्रस्तुत करता है । साहित्य समाज का दर्पण है ; इसलिए नागार्जुन के उपन्यासों में हम देखते हैं कि – नारी की सामाजिक भूमिका में 'रतिनाथ की चाची' नामक उपन्यास में नागार्जुन ने नारी की विविध सामाजिक भूमिकाओं को दर्शाया है। समाज के रूढ़ियों और परम्पराओं को जो नयी पीढ़ी की सामने समस्या बनी हुई हैं उनके विरूद्ध लड़ी हुई नारी पात्राएँ पूर्ण क्रान्तिकारी रूप में प्राप्त होती हैं ।

'रतिनाथ की चाची' में ग्रामीण अंचल की नारियों की सामाजिक भूमिका का वर्णन है। जिसमें रामपुरवाली चाची, दम्मो फूफी, पण्डिताइन, सन्नों की माँ, जनककिशोरी, शकुन्तला, सुमित्रा कालिचरण की स्त्री इत्यादि सम्मिलित है। किन्तु मुख्य सामाजिक भूमिका में दम्मो फूफी, रामपुर वाली चाची, गाँव के औरतें शकुन्तला और जनककिशेरी सम्मिलित हैं। दम्मो फूफी का एक सूत्रीय कार्यक्रम हैं । गाँव की नयी-नयी खबरो का संग्रह करना और उसे छोटे-बड़े स्तर पर प्रसारित करना । हर घर की हल्दी नमक तक का राज दम्मो फूफी के हृदय में दफन है। जिसका उपयोग वे घर परिवार के सम्बन्धों में दरार डालने में करती है । पूरा गाँव इनसे सतर्क और सचेत रहता है, किन्तु अपने बुद्धि कौशल

के द्वारा वे ऐसा कुचक्र बुनती हैं, जिसमें बड़े से बड़े महारथी फँस जाते हैं । सहानुभूति के लेप लगाकर सब कुछ उगलवा लेती है और फिर उसका इस्तेमाल कुटिल तरीके से करती है। दम्मो फूफी का चित्र खींचते हुए नागार्जुन जी लिखते हैं – "सहानुभूति के ये शब्द सुनकर उमानाथ की माँ की आँखें छलछला आयीं, और ऐसा लगा कि पाषाणी प्रतिमा में फिर से प्राणों की प्रतिष्ठा हो गयी है। उसने कृतज्ञ आँखों से दमयन्ती (दम्मो फूफी) को देखा और सिर निचा कर लिया । शिकार को गिरफ्त करके बाघिन को जितना संतोष होता है, इस समय फूफी को भी संतोष की वही मात्रा थी । बेचारी उमानाथ की माँ को क्या पता कि इस सहानुभूति के पीछे एक डायन का निठूर अट्टहास छिपा पड़ा है ।"[23]

कूटनीतिक चाल चलते हुए फूफी ने झूठी सहानुभूति के साथ उमानाथ की माँ का मन मोह लिया – "फूफी ने लक्ष लेते हुए कहा - कोई चिन्ता नहीं सारा इन्तजाम हमने कर लिया है। परसो इस समय तक यह बोझ तुम्हारे सिर से उतर चुका होगा । उमानाथ की माँ रत्ती भर भी फिकर मत करो । कृतज्ञता के मारे उमानाथ की माँ का मन करता था, दमयन्ती के पैरों पर अपना सिर रख दें और सुबक-सुबक कर कुछ देर रोये । यह चतुर बुढ़िया उस बेचारी को ममता का अवतार प्रतीत हो रही थी । वह विधवा है, अकिंचन है, उसे गर्भ रह गया है, कहीं वह मुँह दिखाने के काबिल नहीं रही ।"[24]

दम्मो की यह सामाजिक भूमिका चाहे उसके कुटिल-कुचक्री व्यक्तित्व का दर्शन भले कराता हो, किन्तु समाज के इस तरह की गतिविवियों में बिना किसी हानि-लाभ के सम्मिलित होने वाला इस उपन्यास में कोई पात्र नहीं है। दम्मो फूफी की यह सामाजिक भूमिका तब और उजागर हो उठती है, जब वह सारी औरतों के सामने उमानाथ की माँ पर व्यंग्य कसती हुई निकल जाती है – "अच्छा भई", फूफी ने उठते हुए कहा – "अंधेरा हो गया, मुझे तो शिवजी के दर्शन करने नित्य इस समय मंदिर जाना होता है । तुम्हारी मर्जी ! लेकिन पाँच साल की बच्ची भी इतना बता देती है कि आँखमिचौनी के वक्त उसकी पीठ

थपथपाने वाला आखिर कौन रहा होगा और एक तुम हो, ओह कितनी भोली - उसके फूफी खिलखिलाकर हँस पड़ी, औरों ने भी साथ दिया ।''[25]

समाज की सारी वैषम्यताओं में नारी का सहयोग तो होती ही है, उन वैषम्यताओं की शिकार नारी की दुश्मन नारी ही बन जाती है । उसे उघारने वाली नारी ही होती है, किन्तु दम्मो फूफी जैसी सामाजिक भूमिका वाली महिला पात्र - विधवा उमानाथ की माँ (गौरी) के पीछे हाथ पैर धोकर पड़ चुकी हैं और जिसका साथ दे रही हैं, रामपुर वाली चाची– ''प्रायश्चित की बाते तो कोई पण्डित ही बता सकता है । इससे किसी दूसरे के लिए रियायत थोड़े ही हो सकेगी ।''[26]

इतना सुनना था कि दम्मों फूफी की बुद्धि को अच्छा सहयोग मिला और रामपुर वाली का समर्थन करते हुए दम्मो ने कहा – ''रामपुर वाली की राय सही है, मुदा खाली प्रायश्चित किसी काम का नहीं । जात-बिरादरी का दण्ड ही इस प्रकार के अपराधों को फिर से न दुहराने की दवा का काम करता है। सामाजिक बहिष्कार तो उमानाथ की माँ का हर हालत में करना पड़ेगा ।'' सन्नों की माँ ने कहा – और इस बात को लेकर अगर गाँव में दो गोल हो जाय । इस प्रश्न पर सभी थोड़ी देर तक चुप रहीं । मौन भंग किया रामपुर वाली ने । इन्होंने कहा, ''भले ही तीन गोल हो जाए, हमारा तो उमानाथ की माँ से किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रहेगा ।''[27]

सामाजिक भूमिका में उपस्थित ये नारी पात्राएँ 'रतिनाथ की चाची' में नारी की सामाजिक भूमिका को चित्रित करती है । इसमें दम्मो फूफी के अलावा गाँव की अन्य महिलाएँ भी सम्मिलित हैं । नागार्जुन जी ने बड़े सावधानी से सामाजिक क्षेत्रों में नारी की भूमिका का दर्शन कराया है । एक तरफ दम्मो फूफी की कुटिल-कुचक्री चालें हैं तो दूसरी तरफ पण्डिताइन जैसी सौहार्द्रपूर्ण महिलाएँ भी अपनी सामाजिक भूमिका का उचित क्षेत्र में उपयोग करती हैं । जयनाथ की परेशानी का निवारण करने के लिए पण्डिताइन कहती है –

''ठीक तो कर ही लेगीं, उनकी माँ । बुरा न मानना जयनाथ बाबू, मैं दमयन्ती नहीं हूँ, जो हाथ धोकर उमानाथ की माँ के पीछे पड़ जाऊँ, मेरे दिल में मुसीबत की मारी उस औरत के लिए बड़ा दर्द है ।''

तब दक्षिण की ओर मुँह करके पण्डिताइन बोली – ''जाने गंगा - माई उमानाथ की माँ को मैं अपनी सगी बहन समझती हूँ । इस दुर्घटना के बाद भी उसके प्रति मेरा स्नेह ज्यो का त्यों है ।''[28]

पण्डिताइन की यह सामाजिक भूमिका एक सजग नारी के रूप में दृष्टिगोचर होता है, जो सामाजिक विषमता से लड़ती हुई औरत के लिए मानसिक सहयोग का कारण बनती है और जयनाथ जैसे पुरुष की चिंता का दूर करने में सफल होती हैं।

नागार्जुन ने औरतों को सामाजिक भूमिका का चित्र खींचते हुए बड़े स्पष्ट ढंग से रतिनाथ की चाची में इसका वर्णन किया है – ''दमयन्ती ने टोल-परोस की प्रमुख और मुँह जोर औरतों को इकट्ठा किया, दोपहर के बाद का समय था । अपने-अपने परिवार को खिला-पिलाकर, खुद खा-पीकर औरतें जब निश्चिन्त होती हैं, तो ज्ञान गोष्ठी का सबसे निर्विघ्न यही समय होता है । एक-दूसरे के सुख-दु:ख की चर्चा जो मौजूद न रही, उनका छिद्रान्वेषण । अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, काशी, प्रयाग, गंगा, जमुना और जाने क्या-क्या, आज की गोष्ठी में रामपुर वाली चाची, सन्नों की माँ, दम्मो फूफी, शकुन्तला और जनक किशोरी शामिल हुई थी ।''[29]

सम्मिलित रूप से ग्राम्य समाज की हर व्यवस्थाओं की खोज-खबर रखने वाली ये गाँव की औरतें नारी की सामाजिक भूमिका का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है । सामाजिक प्रचलनों के अनुसार नारी सचेत भी है, जिसमें वह उन रूढ़ियों का विरोध करते हुए बता देना चहती है कि समाज के इन वैषम्यताओं के प्रति हमारा विरोध अटल है। इसका सशक्त उदाहरण हमें तब प्राप्त होता है, जब रतिनाथ का चौदहवें वर्ष में विवाह उसके पिता

करना चाहते हैं, तो गौरी चुप नहीं बैठी रहती – "तुम भी धन्य हो महाजन बनने की धुन में यही सब सोचा करते हो ? इस तरह मैं तुम्हें स्त्री का गला काटने नहीं दूँगी, तुम्हारा वह खिलौना मात्र है, परन्तु मेरा ? मेरा वह कलेजा है, उसके साथ खिलववाड़ मत करो ।"[30]

इस प्रकार बालविवाह का विरोध करते हुए रतिनाथ की चाची गौरी जयनाथ को जो फटकार लगाती है उसमें नारी को सामाजिक भूमिका का चेतनागत रूप उभर कर सामने आता है । यहाँ नारी अपनी सामाजिक दायित्वबोध के प्रति सजग और सचेत हैं।

'बलचनमा' उपन्यास में नारी की सामाजिक भूमिका में बलचनमा की माँ, बहन, दादी, मलिकाइन, खबासिन, राधा बाबू की पत्नी, धनवन्ती, चुन्नी की पत्नी, फूदन मिसिर की पत्नी इत्यादि हैं । किन्तु मुख्य भूमिका में जमीनदारिन (मलिकाइन) ही नजर आती हैं, बाकी तो सामाजिक वैषम्यता की शिकार ही समाज को कोसते हैं । ग्राम्य समाज के चित्रण में नारी की सामाजिक भूमिका एक सीमित क्षेत्र तक ही हैं । जहाँ उसकी अपनी घर-गृहस्थी अपने निहित स्वार्थ सिद्धि में सारा समय चला जाता है। उन्हीं गृहस्थी के कार्यों में समाज के कुछ और लोग भी सम्मिलित होते हैं, जिनके साथ ऊँची-नीची घटनाएँ घटती रहती है। बलचनमा की मलिकाइन निम्न मध्यवर्ग के गरीब परिवारों को राशन इत्यादि देती हैं, जिसके बदले सूद-ब्याज या काम वगैर लेती है। ग्रामीण समाज में उपस्थित महिला की सामाजिक भूमिका का वर्णन करते हुए नागार्जुन एक दृश्य उपस्थित करते हैं – "देखो तो यह कयामत फूदन मिसिर की यह विधवा क्या बक रही है ? जब पेट जलने लगता है तो आ-आकर नाक रगड़ती है, इसर-परमेसर, अन्नपूर्णा लक्ष्मी जाने क्या-क्या बनाकर पैर पकड़ती है । मौके पर न दो धान तो समूचे गाँव को बरमबध (ब्रह्मबध) लगेगा, दो-दो लौटाते समय........... फटता है, सइयाँ डाही कहती है कि बटखरा बदला हुआ है।" फिर ताव में आकर मलिकाइन ने अपने हाथों को दक्षिण की ओर फैला लिया और चिल्ला उठी - 'दुहाई गंगा मइया की ! छटाक आधा छटाक धान के किए जो मैंने बटखरा बदला हो तो मेरा सत्यानाश

हो, नहीं तो झूठ-मूठ का अगले जनम में भी खाली का खाली रहेगा ।''[31]

इससे यह ज्ञात होता है सामाजिक, सरोकारों में नारी की भूमिका सिर्फ माँ बेटी, बहन भाई के रूप में ही नहीं है, बल्कि अन्नदाता और पालक के रूप में भी है । समाज में व्याप्त कुप्रथाओं के बीच पल रही नारी की जिंदगी विविधताओं से भरी है, कहीं वह समाज में सम्मिलित हैं तो कहीं-कहीं समूचा समाज उसी में समाहित नजर आता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज की स्वीकृत-विकृत भावनाओं में नारी ही हैं, जो कहीं संघर्ष करती है, तो कहीं उसी के लिए संघर्ष होता है, किन्तु अपने अधिकारों के प्रति जागृत नारी चुप नहीं बैठती और फूदन मिसिर के विधवा के रूप में अपने अंधिकारों के प्रति चेतन्य है ।

'बलचनमा' की माँ सरल स्वभाव के चलते समाज के रूढ़ियों के अनुसार जमीनदार के घर काम करने जाती है। बेटी को भी अपने सहयोग हेतु ले जाती है । जहाँ पर उसकी बेटी जमीनदारों के कुदृष्टि का शिकार होती है। समाज में महिलाओं के प्रति इनके व्यवहार का वर्णन करते हुए नागार्जुन लिखते है – वह बेचारी क्या जबाब देती ? अपनी जान के डर से लोग क्या नहीं बक जाते हैं । मगर मेरी माँ बड़ी दिलेर थी । (बलचनमा कहता है) हमारी दादी की तरह बात-बात में दाँत निपोरना उसने नहीं सीखा था। तबियत की झगड़ालू ने होने पर भी अपनी आन-बान की वह बहुत पक्की थी । उस रोज वैसी हालत में भी मालिक हमारी माँ से किसी तरह का बचन न ले सके । बड़ी पिटाई पड़ी थी उस पर आह-उह करके हायराम-हायराम, हाय-गोसैयाँ - हाय गोसैयाँ करके हमारी माँ ने सारा, दरद, सारी पीर निकाली, घड़ी आँसू बहाए, फिर भी उस बहादुर औरत ने इसे शर्त पर मालिक को कैद से छूटना न चाहा की रेवनी की हमारे पास ले आना होगा, ना पीछे उसने आँसू भरी आँखों से रो-रोकर बताया था । ''बबुआ बलचनमा मर जाना लाख गुना अच्छा मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं ।''[32]

सामाजिक विद्रूपताओं का विरोध करती नारी की यह सामाजिक भूमिका पुरुष

वर्चस्व को चुनौती देती हैं और सम्पूर्ण समाज को बताना चाहती है कि नारी अपने सामाजिक भूमिका में अपनी हिस्सेदारी अवश्य रखती है। भले ही उसकी असमर्थता का लाभ कोई उठा ले । किन्तु वह अपने अधिकारों की और अस्मिता की रक्षा के लिए जान भी दे सकती है।

पुरानी परम्पराओं के निर्वाह में नारी की सामाजिक भूमिका उसी रूढ़िवादी परम्पराओं में जकड़ी है। नौकर-चाकर की पढ़ायी की विद्रोही राधा बाबू की बहन बलचनमा की पढ़ाई का विद्रोह करती है और समाज में एक व्यक्ति को शिक्षित होने से रोक देती है। वह अपनी भाभी से कहती है – "मैं भाई जी को मना कर दूँगी, नौकर-चाकर जितना ना समझ रहे उतना अच्छा भाभी। हामरे आजिया ससुर का कहना था कि छोटी जात बालों को जो एक आखर भी ज्ञान देता है, उसका अपना ही तेज घटता है और जो कोई शूद्र को समूची पोथी पढ़ दे उसके पीतर स्वर्ग छोड़कर नरक में रहने को मजबूर होते हैं ।"[33]

मलिकाइन ने इसी बात की दुनियादारी पहलू को छुआ और बोली – "वह तो खैर ऊपर की चीज हुई, असली मुसीबत यह होता है कि पढ़ लिखकर नौकर तुम्हारी बटलोई रगड़ने को बैठा नहीं रह जाएगा । और फिर इन्हें पढ़ाने-लिखाने से फायदा ही क्या?"[34] इस तरह की मानसिकता रखने वाली राधा बाबू की बहन समाज में पढ़ने लिखने वाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ाने के बजाय उनकी संख्या में वृद्धि डालने के बजाय उसका विरोध करती है । इस प्रकार की नारी को सामाजिक भूमिका समाज के सामने चिन्तनीय दृश्य प्रस्तुत करते हैं ।

पुरुष वर्चस्ववादी इस समाज में महिलाएँ रोजी-रोजगार में लगी हैं । और समाज को अपने सरोकारों के द्वारा यह बताती है कि समाज में महिला की भी भूमिका है । समाज के डर से या समाज की रूढ़ियों के पालन में तत्पर नारी अपनी बहू को दहलीज पार नहीं करने देती तो कहीं पर उसे पढ़ने नहीं देती । कहीं पर नौकरों के शिक्षा का विरोध करती नारी सामाजिक वैषम्यता को जन्म देती है । तो वहीं बलचनमा की माँ जैसी नारी सारा देश

झेलते हुए भी इस समाज में अपने बेटी के अस्मिता के साथ समझौता नहीं करती।

'नयी पौध' में नारी सामाजिक रूढ़ियों के विरूद्ध संघर्ष करती है और समाज में वैमनस्यता, बाल विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह जैसी समस्याओं की तरफ ध्यान आकृष्ट करती है। नारी स्वयं समाज के इन प्रथाओं को तोड़ने में संघर्षरत है । नारी की सामाजिक भूमिका का सशक्त उदाहरण 'नई पौध' की मुख्य नारी पात्र विसेसरी के अनमेल विवाह का विरोध है । जिसमें रामेश्वरी अपने पिता के द्वारा ढूँढ़े गये साठ वर्षीय वर, जो उसकी पन्द्रह वर्षीय पुत्री के लिए लाया गया रहता है को गाली देकर भगा देना चाहती है और इस विवाह का विरोध करती है।

इस प्रकार विसेसरी के अनमेल विवाह का यह विरोध स्वयं उसकी माँ रामेश्वरी देवी के द्वारा होता है । इसमें समाज की कुप्रथाओं को तोड़ने वाली रामेश्वरी अपने पिता के प्रति आक्रोशित है और उसे यह बुरा लगता है कि एक नाना अपनी पन्द्रह वर्षीय नातिनी के लिए साठ वर्ष का दुल्हा ढूँढ़ लाया । रामेश्वरी के अलावा नारी की सामाजिक भूमिका में माहे की भाभी भी उपस्थित हैं, जो विसेसरी के इन अनमेल विवाह का विरोध कर सामाजिक कुप्रथाओं के प्रति आक्रोश व्यक्त करती है । किन्तु माहेश्वर को मार-पीट करने से मना भी करती हे। एक तरफ कुप्रथाओं के विरोध के साथ वह समाज के इन विद्रूपताओं को सुधारना चाहती है, तो साथ ही समाज में शान्तिपूर्वक कार्य को अंजाम देने का संदेश भी ।

इस तरह ''नयी पौध' में नारी की भूमिका समाज में व्याप्त कुप्रथाओं को रोकने में महत्वपूर्ण है। स्वयं विसेसरी उसकी मझली भाभी इस अनमेल विवाह के सामाजिक प्रथा के विरोध में खड़ी है और विसेसरी की इस शादी को रोककर नारी की सामाजिक भूमिका का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करती है।

'बाबा बटेसरनाथ' में पूर्व दीप्ति के रूप में नारी की सामाजिक गतिविधियों का उल्लेख है, किन्तु वह उपन्यासकार की कलम से पूर्णतः उभरकर सामने नहीं आ पाया।

ग्राम्य इतिहास में नारी तो अवश्य है, किन्तु वह वर्चस्व के पीछे छूट जाती है। 'बाबा बटेसरनाथ' में दादी अकाल के दिनों की सम्भावना में जो खाद्य सामग्री एकत्रित करती है, जो अकाल पड़ने पर सबके पेट की भूख मिटाने के काम आता है। यह एक नारी के संचित स्वभाव का सामाजिक चित्रण है ।

'वरुण के बेटे' में नारी की सामाजिक भूमिका में मुख्य नारी पात्र माधुरी है। वह परिवार के प्रति जितना सजग है उतना ही समाज के प्रति सचेत भी। मछुआरे समाज का नेतृत्व करते हुए माधुरी पुरुष की सम्भावनाओं से आगे निकल पड़ती है। जहाँ पुरुष की बोलती बन्द हो जाती है वहाँ माधुरी इन्कलाब-जिन्दाबाद के नारे लगाकर मछुआरे समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करती है ।

माधुरी के साथ-साथ जिलेबिया-सिलेबिया भी सामाजिक भूमिका में उपस्थित हैं जिसका वर्णन करते हुए नागार्जुन जी कहते हैं – "सहायता कैंप की तरफ से एक कुटीर उत्तरी भीड़ पर खड़ी की गई थी, दूसरी कुटीर पूरबी मोहार पर । मोहन माझी ने खुरखुन से कहकर माधुरी को कैंप के कामों में लगा दिया था । जिलेबिया भी माधुरी का हाथ बटाई थी । युवकों में मंगल, चुल्हाई, गंगा सहनी का छोआ भाई, बिसुनी का बेटा, मुसम्मात जितिया का बहिनौत (भगिनी पुत्र) आदि तो थे ही, पड़ोसी गाँवों के भी पाँच-सात जवान डटें रहते ।"[35]

माधुरी के जिम्मे काम था सहायता कार्य में लगे हुए स्वयं सेवकों और बाहर से आए मेहमानों, नेताओं के लिए खाना व नाश्ता तैयार करना, खिलाना-पिलाना वितरित होने वाले अनाज की सफाई, जरूरतमंद स्त्रियों तक अन्न-वस्त्र पहुँचाना और अपनी बस्ती के अन्दर पानी में डूबे हुए घरों से सामान निकालने में औरतों की मदद करना...........।"[36]

सहायता कैंप की सारी जिम्मेदारियों को सम्भालकर, जरूरतमंदों की सहायता प्रदान कर, स्त्रियों को अन्न-वस्त्र उपलब्ध कराकर माधुरी ने सामाजिक कर्तव्य के प्रति एक

मानदण्ड स्थापित किया ।

इस प्रकार 'वरुण के बेटे' में माधुरी पूर्ण जोश के साथ सामाजिक भूमिका का निर्वाहन करती है और नारी में जागृत चेतना का परिचय देते हुए समाज को संकेत देती है कि नारी अपने पूर्ण लगन और निष्ठा के साथ समाज के उत्तरदायित्वों के प्रति भी पूण्र् नारी चेतना के साथ उपस्थित रहती है।

'दुखमोचन' में नारी की सामाजिक भूमिका का दर्शन होता है। जहँ नारी अकेले होते हुए, विधवा होते हुए अपने सारे जीवन को दूसरे की सेवा में खर्च कर देती है । समाज के प्रति इतना जिम्मेदाराना रूप जो नारी की सेवा-भाव में दुखमोचन में अपने विशिष्ट कलेवर के साथ है। दुखमोचन की मामी अकेले विधवा नारी हैं । समाज में विधवा के प्रति लोगों की संवेदना नाम मात्र की है, धृणित नजरों से देखा जाता है । विविध दृष्टिकोणों से उपेक्षित विधवा नारी अपनी सारी खुशियाँ भूलकर दूसरों की सेवा में जीवन लगा देती है । दुखमोचन की मामी के बारे में नागार्जुन जी लिखते हैं – "विधवा जीवन की कठिन और लम्बी तपस्या उनकी आँखों के पानी में कड़वापन नहीं भर पायी थी । पिछले कई वर्षो से वह इस परिवार की सेवा कर रही थी । मायके या ससुराल में अपना कोई था भी तो नहीं, ये तो बस बड़ी ननद के यह तीन लड़के। सुखदेव की स्त्री धनी बापू की इकलौती थी । यहाँ आकर हमेशा के लिए जम जाने में उसे घाटा था । दुखमोचन की औरत पाँच साल पहले हैजा के शिकार हुई थी ।"[36]

समाज में अनन्त त्याग और तपस्या के साथ लगी मामी जैसी नारी पात्र दूसरे के घर में लम्बे समय तक सेवा कर नारी की सशक्त सामाजिक भूमिका को सम्बल प्रदान करती है । 'दुखमोचन' में कंचन की बहन चमकी समाज सेवा में लगी हुई है। गाँव में बन रहे सड़क में काम करने वाले मजदूरों को सर्बत पिलाती है जिसका दृश्य इस प्रकार है –

"कंचन की बहन बाल्टी में गुड़ का सर्बत ले आयी, पहला लोटा भरकर उसने

दुखमोचन को थमाया –

दो घूँट पीकर वह बोले – ''शाबाश चमकी !

क्या बढ़ियाँ सर्बत बनाया है ! काली मिर्च और सौप पीसकर डाल दिए है, वाह रि बहिनिया ।

अपने सर्बत की प्रशंसा सुनकर चमकी का चेहरा खिल उठा, मुस्कुराकर बोली – तुम्हें खिलाने पिलाने को भला क्या है हमारे पास भईया पानी भी तो पराया ही लाई हूँ ।''[37]

अभावों में ग्रस्त नारी अपने क्षमता के अनुसार समाज सेवा में जुटकर यथा सामर्थ्य सहयोग प्रदान करती है और अपने दुःख अभाव को भूलकर दूसरे के मुँख पर प्रसन्नता चाहती है। गाँव के सड़क निर्माण में रामसागर की स्त्री भोजन बनाने की सारी जिम्मेदारी अपने सिर पर ले लेती हैं। बड़े उल्लास और उत्साह के साथ सबकों भोजन कराती है और इस सार्वजनिक कार्य में किए गए अपने श्रम के प्रति मन ही मन प्रसन्न भी है। अकाल पीड़ितों को बाँटे जा रहे अन्न को हरखू की माँ वापस करने आती है। सिर्फ इसलिए कि उसके पास तो अब मनिआर्डर के पच्चीस रुपये आ चुके हैं । यह अन्न अगर किसी दूसरे के काम आ जाए तो अच्छा ही होगा । समाज में अपने भूख और पीड़ा के अलावा दूसरे की भूख-पीड़ा और मजबूरी को समझने वाली अकाल सहायता में प्राप्त अन्न को वापस कर अपनी ईमानदारी के द्वारा नारी समाज की जागृत चेतना का संकेत प्रदान करती है।

इस प्रकार 'दुखमोचन' मामी के अलावे महरियों की सामाजिक चेतना का भी वर्णन है, जिसके माध्यम से नागार्जुन ने समाज में घटने वाली एक-एक घटनाओं के प्रति इन महरियों की चक्षु संवेदना का वर्णन किया है । समाज के क्रिया-कलापों से महरियाँ भी परिचित हो चुकी है, जो अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर उसके माँग के लिए खड़ी हो जाती है। 'दुखमोचन' को जब ज्ञात होता है कि महरियों ने अपना रेट बढ़ा दिया है और पुराने रेट पर काम करने से इंकार करती है तो वह मामी से पूछ बैठता है – ''तुम्हारी राय

में कितनी तनख्वाह महारियों को मिलनी चाहिए ? – सिर्फ पानी भरने पर एक रुपया ओर बरतन बासन माँजने, झाड़ू-बुहारी करने पर अठन्नी और .... शहर का हाल तो तुम्हे ही मालूम है, मगर देहात में भी अब चीज-वस्तु के दर-भाव खूब ऊँचे चढ़ गए हैं । पुराने जमाने की महरियाँ नहीं है ये कि चार-छः आने महीनेवारी पर तुम लोगों के तलवे सहलाती रहेंगी .... नारियल का खुशबूदार तेल और प्लास्टिक की लम्बी कंघी इनके घरों में भी पहुँच चुकी है, बबुआ इनके घरों के भी मर्द रेल और स्टीमर पर सवार होकर कलकत्ता हो आते हैं। इन्होंने भी अपनी मेहनत का रेट बढ़ाने का इरादा कर लिया है ।''[38]

'कुम्भीपाक' नारी जीवन की सामाजिकता पर आधारित उपन्यास है। जहाँ भुवन जैसी नारी पात्र वैधव्य का जीवन जीती हुई सामाजिक विद्रूपताओं का शिकार होती है किन्तु समाज के प्रति आस्थावान निर्मला के द्वारा उस नारकीय जीवन से बाहर आती है और अपने स्थिर चरित्र के द्वारा निर्मला जैसी नारी पात्र सामाजिक भूमिका में सफल होती है । भुवन की निर्मला से बहन का प्यार प्राप्त होता और वह आश्रम की घुटन भरी जिन्दगी में थोड़ी सी खुशी और प्रसन्नता पा लेती है । निर्मला के बढ़े प्रेम व्यवहार को देखकर चम्पा बुआ भुवन से आहिस्ता से बोली – ''बड़ी पाजी है कम्पाउण्डर की बीबी से ज्यादा न सटना । जाने कैसे क्या निकलवा ले जुवान से ! दुश्मन के आदमी पीछे लगे हैं । भले तो किताब पढ़ती रहती है .... क्या बाते कर रही थी आज ? .... ऊपरवाला लड़का नहीं लौटा है स्कूल से ? ढेर .... सी किताबे है उसके पास । मैं तो वहीं से किताबे मँगवा लिया करती थी मगर पीछे पता चला कि बापू किसी अखबार में काम करता है, सम्पादक है । सम्पादक लोग बड़े शैतान होते हैं, भूल करके भी इन शैतानों से जान-पहचान नहीं करनी चाहिए । पीछे लगेंगे तो खोद-खादकर सारी बातों का पता लगा लेंगे । किसी न किसी बहाने तुम्हारी असलियत अखबार में छपकर लोगों के सामने आ जाएगी और तुम मुँह दिखानेलायक नहीं रह जाओगी ....।''[39]

समाज में व्याप्त विभिन्नताओं के चलते नारी की इस सामाजिक भूमिका यहाँ मानसिक अन्तर्द्वन्द के रूप में दिख पड़ती है। आश्रम के नाम पर व्यभिचार का अड्डा बना यह स्थान जिसमें चम्पा बुआ जैसी नारी भुवन की निर्मला से बचने के लिए कहती है और वहीं अन्दर-अन्दर निर्मला भुवन की इस नरक भरी जिन्दगी से बाहर निकलना चाहती थी। भुवन के अन्तर मन में समाज में रहने वाली इन औरतों के प्रति एक अन्तर्द्वन्द चलता है, किन्तु निर्मला का सहज प्रेम उसे सोचने पर मजबूर कर देता है । "भुवन की पेशो-पेश में देखकर वह आगे बढ़ आयी, बाँहों में लेकर छाती से लगा लिया भींगी आवाज में कहने लगी, ठीक है कि मैं तेरे लिए ज्याद कुछ कर नहीं सकती । मामूली हैसियत है हमारी लेकिन तुझे मैं सगी बहन की प्यार जरूर दे सकूँगी ।"[40]

इस प्रकार निर्मला का यह अटूट प्रेम भुवन के प्रति उमड़कर आता है जो सहज रूप में समाज के सामने एक अच्छी नारी की छबि उपस्थित करता है। निर्मला जैसी सामाजिक भूमिका में उपस्थित नारियाँ समाज में भुवन जैसी लाचार नारी को नारकीय जीवन से बाहर निकालकर साबित कर दिया कि निश्चय ही सामाजिक भूमिकाओं में नारी पुरुष से कम नहीं है ।

'उग्रतारा' में मुख्य नारी चरित्र के रूप में उगनी के त्रासद भरी जिन्दगी की स्थिरता प्रदान करने वाली नर्मदेश्वरी की भाभी कामेश्वर के साथ उगनी का विवाह करा कर समाज में लाचार और बेबस की सहायता कर नये सामाजिक दर्शन का परिचय देती है। माया की संवेदना उगनी के प्रति नये सामाजिक संवेदनशीलता को जन्म देती है। नर्मदेश्वर की भाभी का सशक्त नारी चरित्र समाज की रूढ़ियों और कुप्रथाओं का विरोध करते हुए उगनी की कामेश्वर को विवाह बंधनमें बाँधने में सफल होता है। यह जागरूकता नर्मदेश्वर की भाभी के सामाजिक भूमिका का परिचय प्रदान करता है।

'जमनीया के बाबा' में नारी की सामाजिक भूमिका विभिन्न संवेदनाओं के साथ

उभर कर सामने आती हैं । जहाँ प्रत्यक्षतः कोई चित्र तो नहीं उभरता, किन्तु उनकी अन्तःप्रवृत्ति की छटपटाहट यह महसूस कराने के लिए पर्याप्त होती है कि सामाजिक विद्रूपता और रूढ़ियों का शिकार नारी पात्राएँ ढोंग-ढकोसला से बाहर निकालने के लिए रास्ता तलाश रही है । लक्ष्मी के शिशु की नरबलि के बाद लक्ष्मी को छटपटाहट सिर्फ अपने पुत्र के प्रति इस किए गए नृशंस व्यवहार के लिए ही नहीं है, बल्कि उसका अन्तिम जागृत स्वर समाज में आगे न घटने वाली घटनाओं के लिए अर्थात लक्ष्मी का विद्रोही स्वर एक भावनात्मक संदेश प्रदान करता है। जिस तरह उसका पुत्र मारा गया, उस तरह समाज में किसी अन्य माँ का पुत्र धार्मिक ढोंग-ढकोसला का शिकार न हो ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी को सामाजिक भूमिका अपने अपने परिवेश के अनुसार विस्तृत या संकुचित क्षेत्र में कहीं न कहीं नारी सशक्तिकरण का प्रबल सामाजिक पक्ष उद्घोषित करता है। जहाँ नारी पुरुषों से पीछे नहीं है। उसका जागृत रूप समाज में विभिन्न तह तक पहुँचकर यथाशक्ति अपने जागृत का परिचायक हैं ।

4. ग. नारी की धार्मिक भूमिका :

नारी सबसे आस्थावान होती है । धर्म के प्रति जितनी आस्था नारी को होती है उतनी किसी भी प्राणी में नहीं । नारी को इस धार्मिक आस्था को देखते हुए कहीं-कहीं उसे धर्म भीरू तक कह दिया गया है। नारी की धार्मिक आस्था के विभिन्न कारण भी हैं । परिवार की जिम्मेदारियों के चलते नारी का कार्यक्षेत्र विस्तृत होता है। नारी माँ के रूप में पुत्र के चिरंजीवी होने की कामना करती है और ईश्वर से उसके दीर्घायु होने का बरदान माँगती है। पत्नी के रूप में नारी अखण्ड सौभाग्य की कामना करती हुई ईश्वर के सामने झोली फैलाती है और विविध धार्मिक अनुष्ठान करती है। नारी के जितने रूप पारिवारिक सामाजिक परिवेश में प्राप्त होते हैं उनमें वह अपने सगे-सम्बन्धियों के लिए व्रत-त्यौहार, तीज-तपस्या आदि के

द्वारा लम्बी उम्र की कामना करती है। अच्छे स्वास्थ, अच्छी बुद्धि और सुखी जीवन के लिए ईश्वर से प्रार्थना भी करती है । इस तरह नारी पूर्णरूप से धर्म में आस्था रखती है और इसके चलते उसकी धार्मिक आस्था विविध आकर्षण का केन्द्र है।

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी की धार्मिक भूमिका वस्तुतः ग्रामीणांचल की धार्मिक आस्था के इर्द-गिर्द की धार्मिकता पर आधारित है। जहाँ धार्मिक विश्वासों के नाम पर ढोंग-ढकोसले ओर अन्धविश्वासों की कमी नहीं है। नारी की यह धार्मिक भूमिका परिवार कल्याण, जन कल्याण और समाज कल्याण तक की भावनाओं तक विस्तृत है। जिसमें आस्था के नाम पर अन्धविश्वास और ढोंग-ढकोसला में पिसती हुई नारी का चित्र भी अंकित है । कहीं-कहीं धर्म भीरूता परकाष्ठा पर हैं । वहाँ नारी की धार्मिक आस्था रूढ़ियों एवं परम्पराओं के आग्रह से ग्रसित है। इस तरह नारी की धार्मिक भूमिका नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में दम्मो फूफी के इस कथन से दीख पड़ती है – "फूफी ने उठते हुए कहा, अंधेरा हो गया मुझे तो शिवाजी के दर्शन करने नित्य इसी समय मन्दिर जाना होता है।"[41]

दम्मो फूफी जैसी प्रपंची महिला भी धर्म में आस्था रखती और शिव मंदिर जाने के लिए अपने प्रिय प्रपंच गोष्ठी को संकेत देती है कि हमारा समय शिव के मन्दिर में जाने का हो गया । मुझे शिव का दर्शन करने जाना है । दिन-रात ग्राम्य जीवन के प्रपंच में लगी रिस्तों में दरार डालती, घर परिवार में फूट डालती, दम्मो फूफी अन्ततः अपने व्यस्त प्रपंची जिन्दगी से ईश्वर के लिए थोड़ा समय निकाल ही लेती है ।

जब औरतों पर आफत-विपत्ति का समय आता है। तो वह ईश्वर को याद करना नहीं भूलती, चाहे वह उन्हें शक्ति के रूप में पुकारे चाहे कुलदेवता के रूप में या ग्रामदेवता के रूप में । विपत्ति काल में नारी की धार्मिक आस्था प्रबल हो जाती है और धर्म के प्रति आस्थावान होने के बाद उन्हें मानसिक शान्ति प्राप्त होती है । बहुत सारे समस्याओं का

समाधान भी होने लगता है ।

इसी तरह 'रतिनाथ की चाची' में गौरी जब अपने मायके पहुँचती है और वैधव्य जीवन में गर्भपात कराना चाहती है यह सुनकर उसकी माँ दुर्गा को पुकारने से नहीं चुकती ''साहस नहीं हुआ कि गौरी की माँ की आँख से आँख मिलाती । माँ बोलती रही - इस खानदान में जो किसी ने नहीं किया, इस अभागिन ने कहीं कर डाला । हे दुर्गा ! हे बाबा कपिलेश्वर ! अब मैं इसका क्या इलाज करूँगी ?''[42] इस विषम परिस्थितियों में गौरी की माँ, माँ दुर्गा, बाबा कपिलेश्वर को पुकारती है । जो इनके धार्मिक आस्था और ईश्वर के प्रति संकट मोचन की भाव संवेदना को दिखाता है । धार्मिक आस्था के कारण बड़े-बड़े पापों के प्रायश्चित के लिए यहाँ धार्मिक अनुष्ठान किए जाते हैं और इनमें उन आस्था के दौरान इन पापों के प्रायश्चित हो जाने का विश्वास भी हो जाता है। गौरी के गर्भपात के ग्यारहवें दिन गौरी की माँ सत्यानारायण की पूजा करती है। गाँव के सभी लोगों को आमंत्रित करती है – ''गरी-छुआरे और मुनक्के डलवाकर पंजिरा तैयार किया गया था । पुरोहित महाराज थे, बुढ़ऊ वौदिक नरेश ठाकुर । गुलाबी रंग में रंगी हुई दो धोतियाँ सत्यानारायण भगवान को चढ़ाई गई थी । पीले रंग में रंगा हुआ तीन हाथ का एक अँगोछा । पुजारी बने थे शंकर बाबा, संकल्प कराते समय वैदिक जी ने जयकिशोर की माँ से कहा, ''गौरी बिटिया से कहो पुजारी के सामने जरा आकर बैठ जाए ।''[43]

स्वच्छ सफेद शांतिपुरी धोती पहने गौरी सामने आई, तब संकल्प हुआ – ऊँ अथ ज्येष्ठे मासे शुक्ल पक्षे त्र्योदश्या तिथौं निवृत्तरोगाया आस्थाः श्री गौरी देव्याः सर्वोऽडपत्ति प्रशननार्थ सागसाऽयुद्य सवाहन सपरिवार श्री सत्यनारायण पूजामंहं करिष्यामि .... ।

इस संकल्प के बाद धार्मिक आस्थाओं में रंगी-कुटी उस समाज का दर्शन होता है, जहाँ सारी निराशा के बाद लोग धार्मिक आस्था के शरण में जाते हैं। जघन्य से जघन्य पाप, बड़े से बड़े कुकृत्य और पापों के प्रायश्चित का धार्मिक अनुष्ठान विधि से निदान खोज

लिया जाता है और उनमें कुछ इसी प्रकार होता है, जिस प्रकार गौरी के पाप का प्रायश्चित करने के लिए उसकी माँ धार्मिक बन्दोवस्त करती है। पूजन हुआ, कथा हुई, बिसर्जन हुआ फिर आमंत्रितों में प्रसाद बाँटा गया। इस बीच-बीच में रहकर-रहकर ढोल-पिपिहरी वाले गाते बजाते रहे। छाट कर पन्द्रह ब्राह्मणों को खाने का निमन्त्रण दिया गया था, उन्हें खिलाया गया।

ग्रामीण परिवेश में धार्मिक आस्था में पलने-बढ़ने वाली बागों भी अपने पूर्व की महिलाओं की भाँति ईश्वर के प्रति आस्थावान है और लगता है मानों वह हनुमान जी की भक्ति करती है। इसका परिचय रामपुर वाली चाची के साथ जनककिशोरी नाखून काटने के लिए नहरनी लेकर आती है। जनककिशोरी के हाथों में नहरनी थी – "रामपुर वाली चाची के साथ उसकी दस साल की लड़की बागों भी थी। बागों के हाथ में हनुमान चालीसा था।"[44]

भारतीय संस्कृति में धर्म के प्रति आस्था रखने वाली नारियाँ लोकप्रचलित मान्यता के अनुसार और हिन्दू धार्मिक आस्था के अनुसार भांजे को देव तुल्य मानती हैं। जब रतिनाथ अपने ननिहाल में पहुँचता है तो उसकी मामियाँ उसी भाव में उसका भव्य स्वागत करती है – "अपनी छोटी मामी ने स्नेह पूर्वक उसके पैर धो दिए और अन्दर कमरे में ले गयीं, वहाँ भिगोया हुआ चूड़ा, दही और केले से रत्नी ने जलपान किया।"[45]

पैर धुलने की यह आस्था नारी के धार्मिक भूमिका का परिचय देता है। जहाँ देवत्व की कल्पना मनुष्य में की जाती है और मनुष्य की रक्षा हेतु ईश्वर से प्रार्थना भी। उसी भाव में पीड़ित मानव जीव ईश्वर के प्रति आस्थावान हो उठता है और कण-कण में ईश्वर का दर्शन होता है। क्षण-क्षण में अपनी बात ईश्वर तक पहुँचाने का प्रयास करता है। ईश्वर के प्रति यही आस्था 'रतिनाथ की चाची' गौरी में मिलता है – "आज चाची ने भगवान से प्रार्थना की कि उसका अन्तिम संस्कार रतिनाथ के हाथों ही हो।"[46]

जीवन-मृत्यु विधि के हाथ की चीज है। ईश्वर शक्ति के प्रति गौरी की चाची

आस्थावान है। इसलिए वह ईश्वर के प्रार्थना करती है, कि उनकी मृत्यु के बाद उनका अन्तिम संस्कार रतिनाथ के हाथ ही हो ।

इस प्रकार 'रतिनाथ की चाची' में नारी की धार्मिक आस्था का पूरा परिचय मिलता है जहाँ नारी आस्थावान होकर अपने धार्मिक भूमिका में सहज रूप से लीन है।

'बलचनमा' में निम्नवर्गीय नारी पात्रों की जो धार्मिक आस्था है वह धर्म के नाम पर विकृत रूप में धार्मिक अन्धविश्वासों को दिखाता है, जहाँ आत्मा के भटकते रूप को भूत-प्रेत और ईश्वरीय शक्ति से जोड़ा गया है। इस धार्मिक अन्धविश्वास में नारी की एक भूमिका इस प्रकार है –''कभी-कभी खबासिन चिघाड़ मारकर रो पड़ती .... हाय बाप, हाय बाप करती हुई जीभ निकालती बोलती – ही ही ही ही, मैं काली हूँ, पोखर पर जो बौना पीपल है उसी पर रहती हूँ, खा जाऊँगी समूचा गाँव, बकरा दो, बकरा............।''[47]

किन्तु यह धार्मिक अन्ध विश्वास सिर्फ खबासिन जैसी निम्नवर्गीय नारी पात्रों तक ही सीमित नहीं है। इसमें मलिकाइन जैसी उच्च वर्ग की नारी पात्र की आस्था भी दिखायी पड़ती है। इस तरह जब खबासिन अपने को काली बताती है तो मलिकाइन चीख कर दोनों हाथ जोड़ लेती –''दुहाई भगवती की, सुखिया का भूत भगा ले जाइए, दो कुँवारी लड़कियों को आपके निमित्त खीर, पूड़ी खिलाऊँगी .... दामो ठाकुर तांत्रिक थे, झाड़-फूक, पूजा-पाठ, टोना-टापर सब करना जानते थे । लाल रंग की धोती, लाल अंगोछा कपार पर सिन्दूर का लाल टीका.......... और भूत झाड़ता दामो ठाकुर । ॐ काली काली महाकाली इन्द्र की बेटी, ब्रह्मा की साली फू ।''[48]

धार्मिक आस्थाओं में नारी अन्धविश्वासों के प्रति कितना समर्पित है । यह मलिकाइन जैसे महिलाओं को घबड़ाहट से प्रतीत होता है। वह खबासिन की मानसिक विकृति को सुखिया का भूत समझ लेती है और बहुत सारी मन्नौतियाँ माने हुए भूत झाड़ने वाले दामो ठाकुर को बुलाती है ।

इस प्रकार बलचनमा उपन्यास में नारी की धार्मिक भूमिका में महेन की माँ भी उपस्थित हैं जो हिन्दू धर्म की धार्मिक परम्पराओं के अनुसार धर्म में आस्था तत्कालीन समाज परिवेश को उद्घाटित करती है। नारी का मन विविध शंकाओं से भरा होता है । वह यह नही जानती की किसी का अनिष्ट हो इसलिए भयभीत होकर जमीनदारि (मलिकाइन) की तरह मान-मनौतियाँ भी कर बैठती है अतः बलचनमा का नारी की धार्मिक भूमिका नागार्जुन के उपन्यासों में सत्यतः चित्रित हैं ।

'नई पौध' में धार्मिक आस्थाओं में रची बची नारी माँ दुर्गा को पुकार उठती है । विसेसरी की शादी जब बाचस्पति से तय हो जाती है और बाचस्पति विसेसरी से शादी करने के लिए तैयार हो जाता है तो दुर्गानन्दन, दुर्गाफण में घर आता है तो यह सुख समाचार अपनी माँ और बहन से बताता है – "दोनों खुश हुई और आतुर होकर भगवती दूर्गा से प्रार्थना की जल्दी से जल्दी पार-घाट लगाओ मइया । .... समस्तीपुर जाकर दूर्गा बच्चन से भी स्वति ले आया ।"[49]

'दुखमोचन' में उसकी मामी धार्मिक आस्थाओं वाली एक विधवा नारी है जो धार्मिक हिन्दू परम्परा के अनुसार भजन-कीर्तन इत्यादि में मन लगाती है। नागार्जुन जी ने उनके धार्मिक आस्था के नित्यप्रति क्रिया-कलाप को दर्शाया है – "मामी बारहों महीने सुबह-सुबह नहा लेती । उसके बाद पिण्डी की सकल में स्थापित कुलदेवी दूर्गा की पूजा करती, फिर अपनी इस्ट देवी काली का एक-एक अक्षर वाला बीज मंत्र 'क्लीं' जपती थी, हजार बार आखिर में एक-एक अध्याय चण्डी और गीता । अपने इस नित्य कर्म में एक घण्टा समय उनका जाता था ।"[50]

'दुखमोचन' में जब माया की शादी आर्य समाजी विधि से होती है तो धार्मिक आस्थाओं में रची-बसी उसकी माँ की दशा का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने चित्र खिंचा है – "माया की माँ को इन बात का बड़ा क्षोभ रहा कि विवाह के आरम्भ में कुलदेवता को

पिण्डी पर न तो मात्रिक पूजा हुई और न तो गणेश की ही । किसी ने याद किया, बस खाली ध्वज ! खाली मंत्र पाठ ! माँ की ही नहीं भाभियों की भी यह सब बड़ा ही सूखा-सूखा फीका-फीका लगा .... मगर विवाह की बाकी विधियाँ सकुशल सम्पन्न हुई । माँग में सिन्दूर भी पड़ा गाँठ भी बधी फेरे भी लगी .... ।''[51]

इस प्रकार धार्मिक आस्था में दुखमोचन की नारी पात्रों की धार्मिक भूमिका सहज नारी चेतना के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं । जहाँ सामान्यतया नारी अपनी धार्मिक आस्था के प्रति चेतन्य है ।

'बाबा बटेसरनाथ' में धार्मिक आस्था के प्रति श्रद्धा भाव है। जिसके चलते वनदेवी इत्यादि का वर्णन हुआ है। 'बाबा बटेसरनाथ' जयकिसुन को बताते है – ''उन्हें बनदेवी प्रसन्न होकर यह बरदान दिया था कि तुम्हारी संततियाँ मनुष्य के हृदय की बातें अनायास समझ लेगी और अपनी इच्छा के मुताबिक जब चाहे तब मनुष्य का रूप धारण कर सकेगी । सो मैं ठहरा इच्छा रूपधारी..........।''[52]

इस प्रकार वनस्पतियों के प्रति और उन्हें वनदेवी रूप में सम्बोधित करना धार्मिक आस्था के प्रतीक है। यहाँ विधवा नारियाँ अपनी धार्मिक आस्था के चलते कई मन्दिर बनवाने से प्रसिद्धि प्राप्त की जिसका वर्णन करते हुए 'बाबा बटेसरनाथ' कहता है – ''यहाँ से दो कोस पर दक्षिण की ओर शिवजी का एक पुराना मन्दिर था । सुना है कि उसी मन्दिर के पीछे नया मन्दिर किसी श्रद्धालु विधवा ने बनवा दिया है। पुराना मन्दिर तो उसे अच्छी तरह याद है ।''[53]

बरगद और पीपल की पूजा हमारे भारतीय परम्परा में नारी प्राचीनकाल से करती आती हैं जिसका एक दृश्य बाबा बटेशर नाथ में प्राप्त होता है । जेठ महीने की आमवश के हर साल सुहागिन औरतें बरगद के तन में हाथ की धागों केफेरे डालती हैं जब से ......''[54]

इस तरह अपने पूजन का वर्णन करते हुए 'बाबा बटेसर नाथ' तत्कालीन समाज

में व्याप्त नारी की धार्मिक आस्था पर प्रकाश डालता है ।

'उग्रतारा' में गीता को धार्मिक आस्था तब मिलती है जब वह मन्दिर में बाबा के लिए सामग्री तैयार करते हुए कहती है – "मैंने तीन मालाएँ तैयार कर ली बाबा । अब लाइए रूई बढाइए ! आरती के लिए दीपों की बत्तियाँ बाँट दूँ ।

अब मेरा जी कर रहा है सेवा करने का, मगर यहाँ करने की कुछ हो भी तो।"[55]

मन्दिर में ईश्वर पूजन की सामग्री के लिए यह सेवा-भाव गीता के धार्मिक आस्था को दर्शाता है। पुजारी के आदेश पर गीता रामायण बाचकर हनुमान जी को सुनाने बैठती है, पाल्थी मारकर बैठने के उपरान्त धीमी आवाज में पाठ करती है –

अतुलितबलधामें हेमशैलाभदेह,
दनुजवन कृशानु ज्ञानिनामग्रगव्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं,
रघुपतिप्रियदूतं वातजातं नमामि ।।
x x x x x
मनोजवं मारूत तुलयदेग
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये .... ।"[56]

धर्म के प्रति उगनी को भी आस्था है जो 'उग्रतारा' की मुख्य नायिका है जब उसका प्रेमी कामेश्वर पूछता है । अब तक कितने लड्डू चढ़ा चुकी हो (हनुमान जी को) उगनी बोलती है - ढाई सेर ।"

इस प्रकार धार्मिक आस्थाओं में नारी की रची-बसी जिंदगी का वर्णन बड़े ही मनोरंजनकारी ढंग से नागार्जुन के 'उग्रतारा' में किया है। जिसमें तत्कालीन नारी की धार्मिक

भूमिका स्पष्ट होती है ।

'जमनिया का बाबा' नामक उपन्यास में शिवनगर की रानी साहिबा की धार्मिक आस्था का वर्णन है। रानी साहिबा मठ के अन्दर फैले व्यभिचार से अनभिज्ञ है। उन्हें नहीं पता कि धर्म के आड़ में यह जमनिया का बाबा कौन-कौन सा गुल खिलाता है। एक धार्मिक आस्था की नारी होने के कारण दो बार साधुओं को भण्डारा देती हैं । इस साल अब तक कार्तिक का भण्डारा नहीं हुआ .... । इमरितिया नामक साध्वी धार्मिक आस्था के कारण मठ में आकर निवास करने लगती है। तेल से भरा दीपक जलाकर आश्रम में आसन लगाकर रोशनी फैलाती है एक दिन वह कहती है – "मैंने एक कोठरी में पूजा-पाठ का अपना सामान जमा लिया .... अपने गुरु महाराज की दी हुई चंदन की माला है मेरे पास, सात साल से यह माला मेरे पास है। एस सौ आठ मनके हैं । गजब की खुशबु आती है इस माला से । मामूली चंदन की सुगन्ध नहीं .... पीतल का एक कमण्डल है। रामचरितमानस और गीता है ।"[57]

इस तरह धार्मिक आस्था में जुड़ा इमरितिया का मन रामायण, गीता पोथी माला और यद्राक्ष इत्यादि में रमा रहता है । नागार्जुन के उपन्यासों की कथाभूमि में नारी को धार्मिक भूमिका का एक सशक्त उदाहरण मिलता है जिसमें 'पारो' अपने नारी जन्म पर विषादग्रस्त होकर कहती है – "हे भगवान ! लाख दण्ड दे मगर फिर औरत बनाकर इस देश में जन्म नहीं दे ।"[58]

इस प्रकार पारो की यह आत्मिक पीड़ा जिसका हरण सिर्फ और सिर्फ भगवान ही कर सकते हैं, नारी की धार्मिक भूमिका का समृद्धशाली उदाहरण प्रस्तुत करता है। नारी ईश्वर के प्रति आस्थावान है, और यह आस्था नारी के धार्मिक प्रवृत्ति का उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

4. घ. नारी की आर्थिक भूमिका :

नारी जगत की आर्थिक व्यवस्थाओं का नागार्जुन के उपन्यासों में, ग्राम्य जीवन-यापन करने वाली महिलाओं के अर्थोपार्जन का विवरण प्राप्त होता है, जिसमें अपने अभावों को दूर करने के लिए नारी श्रम करती है और उस श्रम से अर्थ का उपार्जन भी करती है। वह उपार्जन परिवार के आर्थिक सहयोग के रूप में साबित होता है । नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन में निम्न वर्गीय और मध्यवर्गीय महिलाओं की आर्थिक भूमिका का उल्लेख प्राप्त होता है। युगबोध के अनुसार नारी पुरुषों की तरह अर्थोपार्जन में लगी है, जिसमे मेहनत मजदूरी जैसे श्रम कार्य हैं और उन्हीं से उपार्जित अर्थ व्यवस्था पर उनकी घर गृहस्थी टीकी हुई हैं । विकास की गति मेंमहिलाओं के अर्थोपार्जन का विशेषज्ञ संकेत प्राप्त होता है, जिसकी नागार्जुन जी ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है।

तत्कालीन भारतीय समाज में चूँकि नयी व्यवस्थाएँ उभरकर सामने आती है । भारत कुछ वर्ष पहले ही स्वतंत्र हुआ था, जिसमें सरकारी नीतियाँ महिलाओं के अर्थोपार्जन को प्रोत्साहित कर रही थी । वृहद रूप में नहीं तो भी ग्रामोणांचल में भी अपने स्तर के अनुसार आम जनता अर्थोपार्जन में लगी है । चाहे वह मेहनत मजदूरी हो या छोटे-मोटे व्यापार । किसी न किसी तरह नारी उनमें सहयोग करती है और उससे उपार्जित धन से अपनी आर्थिक भूमिका को प्रभावित करती है । सत्यतः परिवार में नारी हर तरह से पति के खर्च से, गृह के खर्च से और स्वयं के खर्च से बचत कर परिवार को आर्थिक सम्बल प्रदान करती है । विशेष रूप से खर्च की सारी जिम्मेदारियों का बहन अक्सर पुरुष करते हैं किन्तु नागार्जुन के उपन्यासों में इस तरह की बहुत सारी स्थितियाँ आती हैं, जिनमें खर्च के प्रति और अर्थोपार्जन के प्रति नारी का त्याग स्पष्ट होता है ।

नारी परिवार को लेकर चलने का अनूठा तौर-तरीका जानती है । उसके बुद्धिमत्ता में ऐसे दृश्य मिलते हैं, जो परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने में बहुत ही संघर्षशील

रूप से लगी हुई अर्थोपार्जन करती है और गृह को आर्थिक संकट से उबार लेती है।

'रतिनाथ की चाची' में गौरी मुख्य धार्मिक भूमिका में उपस्थित नारी पात्र है, जो आर्थिक व्यवस्थाओं के मध्य बचत के मामले में गाँधीवादी नीति से प्रभावित है। जो चरखा चलाकर पूनी बनाकर तकली चलाकर, सूत इत्यादि का उपार्जन करके परिवार की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में अपनी भूमिका निभाती है । उपन्यासकार ने ग्राम्य परिवेश में आर्थिक भूमिका में सक्रिय अन्य महिलाओं का भी चित्रण किया है जो विविध रूप से गृहस्थी के कार्यों में अपने हुनर के द्वारा आर्थिक बचत करने का उपक्रम करती है – "दम्मो फूफी अपनी भतीजे की मसकी हुई चादर में जाली मढ़ रही है । रामपुर वाली चाची और सन्नो की माँ अपनी-अपनी तकली लिए आई थी । शकुन्तला की तकिया के खोल पर रंग-बिरंगे सूतों में नक्कासी निकालना था ।"[59]

इस प्रकार नित्य-नैमित्य प्रयोग में आने वाली वस्तुओं की मरम्मत कर बचत करने का यह तरीका नारियों के आर्थिक भूमिका की स्पष्ट चित्र है। चरखा से अन्य खर्च का भी बहन होता है, उसके उपार्जित धन से परिवार की आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ होती है – "चाची का जीवन सचमुच ही इधर एक विशेष प्रकार का हो गया था । रत्ती ने अभी जो कहा उसमें थोड़ी भी अतिशयोक्ति नहीं थी । तीसरे साल जब वह तरकुलवा से आयी थी तभी से चरखा चल रही है, पच्चीस-तीस रुपये हर महीने इससे निकल आते हैं ।"[60]

इस प्रकार ग्राम्य जीवन में अर्थोपार्जन के इस साधन से नारी अपनी धार्मिक भूमिका का चित्र स्पष्ट करती है। ग्राम अंचल की औरतों के बीच चरखा कातकर धन उपार्जन करने का जोश सा बना हुआ है । जिसका चित्रण उपन्यासकार ने कुछ यों किया है– "कभी-कभी तो ढिबरी जलाकर रात-रात भर चाची चरखा ही चलाती रहती।"[61]

इस प्रकार अपनी आर्थिक भूमिका में उपस्थित नारी पात्र नागार्जुन के उपन्यासों की ग्राम्य संस्कृति में पल रही नारी जीवन की चेतनागत स्वरूप का रूप प्रदर्शित किया है।

'बलचनमा' में बलचनमा की माँ, बहन इत्यादि अर्थोपार्जन के लिए मेहनत-मजदूरी करके अपने घर की रोजी-रोटी चलाती है । जिसका स्पष्ट चित्र बलचनमा के मानसपटल पर अंकित है – "माँ उनके यहाँ घरेलू काम पहले की ही भाँति अब भी किए जा रही थी । बरतन माजना, पानी भरना, झाड़ू बहार देना, लिपाना-पोतना, चुल्हा जलाकर रसोई चढ़ा देना यहीं कुछ काम थे ।"[62]

इस प्रकार के कार्यों से अर्थ का उपार्जन होता है और परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने में नारी पात्र सहयोग करती है । जिसमें बड़े-बड़े घरों ओर आँगन के बीच पलने वाले जमीनदारों के घर की देख-रेख साफ-सफाई नारी स्वयं के परिवार की अर्थव्यवस्था में इजाफा करती है। अर्थोपार्जन का ग्रामीणांचल में एक स्रोत और है, जिसमें नारी अपने कर्मशील प्रवृत्ति के साथ अपने आर्थिक भूमिका का परिचय देती है – "अपने खेतों में हम सभी काम करने जाते थे .... बहू हो चाहे बेटी, खेत में काम करने जाना पड़ेगा, पानी भरना होगा, माल-मवेशी चराने होंगे ।"[63]

ग्राम्य जीवन का यह स्पष्ट चित्र नागार्जुन के उपन्यासों मे चित्रित नारी के आर्थिक भूमिका का उल्लेख करता है । जिसमें नारी पात्र चाहे वह बहू हो या बेटी, माल-मवेशी चराकर, पानी भरकर और खेती करके कुछ न कुछ अर्थोपार्जन अवश्य करती है ।

नारी जीवन की आर्थिक भूमिका का उल्लेख 'नई पौध' में भी प्राप्त होता है । जिसमें तत्कालीन समाज की गाँधीवादी पद्धति का भरपूर दृश्य उपस्थित हैं । जहाँ महिलाएँ चरखा कातकर अर्थोपार्जन करती हैं और उसका उपयोग घर के विभिन्न कार्यों के लिए करती है । उन कार्यों में किए गए रकम का सुन्दर दृश्य चित्र नागार्जुन ने बनाया है – "रामेश्वरी ने अपनी सास के निमित्त फतुरी काका को न्योता दिया था । वह चरखा चलाकर दस-बारह रुपए महीना अपना कमा लेती थी । .... लड़की के लाड़-प्यार के लिए और दूसरी जरूरतों के लिए सूत बेचकर हासिल की हुई यह रकम काफी थी ।"[64]

रामेसरी की यह अर्थोपार्जन की व्यवस्था ग्राम्य जीवन में जीवन यापन कर रही नारी की चेतना का परिचायक हैं । नारी पात्रों के आर्थिक भूमिका का नागार्जुन के उपन्यासों में आंचलिक सतह की अर्थोपार्जनीय व्यवस्था का वर्णन है । जिसमें अपने स्तर पर नारी कुछ अर्थोपार्जन करती है जिसमें कृषि कार्य, चरखा, तकली, संसाधनों का उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग कर धनोपार्जन करने वाली नारी पात्र 'रतिनाथ की चाची', चमारिन, सुखे, रामपुर वाली चाची, बलचनमा की माँ, मलिकाइन, खबासिन, रेवनी, बलचनमा की पत्नी, 'नयी पौध' की रामेसरी, 'बाबा बटेसरनाथ्' में जयकिसुन की दादी, 'वरुण के बेटे' में माधुरी तथा विभिन्न रूप से अर्थोपार्जन करने वालों में 'कुम्मीपाक' में रंजना ओझा, चम्पा, नेपालिन, मीना, कुन्ती इत्यादि नारी पात्र हैं ।

गृहस्थी के कार्य में संलग्न नारी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से कहीं न कहीं आर्थिक वैशम्यताओं से लड़ती है और रसोई घर से लेकर खेत-खलिहान तक अपने श्रम और बुद्धि का प्रयोग कर वस्तुगत रूप से परिवार की अप्रत्यक्षतः आर्थिक सम्बल प्रदान करती है। कहीं खेती कर स्वयं कार्य में मजदूरी के पैसे बचाना, खाद्य सामग्री की बचत के लिए पोखरे से मछलियों को पकड़कर लाना, फटी-पुरानी वस्तुओं की मरम्मत कर नये वस्तुओं की खरीदारी दृष्टिकोण से जागृत नारी के धार्मिक भूमिका को दर्शाते हैं । नारी में बचत करने की यह क्षमता अभावग्रस्त जीवन में पेट की भूख मिटाने के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है, जिसमें एक तरफ अर्थशास्त्र की दष्टि से यह नारी समुदाय का बचत बजट ही है । जिससे परिवार को दो जून रोटी की व्यवस्था हो जाती है। जैसे - तेल की बचत का, नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'वरुण के बेटे' में माधुरी के माध्यम से अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है — ''माधुरी ने जल्दी-जल्दी आठ-दस टिक्कड़ ठोक-सेंक लिए बूँद भर भी तेल नहीं था टाड़ी में, तो यों ही सूखे-सूखे भून ली मछलियाँ ।''[65]

माधुरी के द्वारा उपन्यासकार ने तत्कालीन समाज के अभाव का चित्र अवश्य

प्रस्तुत किया है, किन्तु उसके साथ-साथ उन अभावों के बीच इस बचत का कहीं न कहीं आर्थिक सूत्र अवश्य मौजूद है । एक समय का किया गया यह बचत ही उतने बस्तु के मूल्य की बचत ही हैं और वह बचत अर्थव्यवस्था के अनुसार आर्थिक बचत की श्रेणी में आता है क्योंकि अर्थशास्त्र के अनुसार एक पैसे की बचत भी व्यक्ति के आर्थिक व्यवस्था की मजबूती प्रदान करता है । अतः स्पष्ट है कि नागार्जुन जी ने अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष दोनों तरह के आर्थिक बचत की भूमिका का वर्णन कर नारी पात्रों के आर्थिक भूमिका का उद्‌घाटन किया है ।

ग्रामीण क्षेत्र की औरतें रूई वगैरः की खरीददारी कर बाजार से रूई घर लाती हैं, सारे घर के कार्यों को निबटाकर सूत कातने में लग जाती और वह सूत गाँधी आश्रम चरखा उद्योग चरखा संघ इत्यादि जगहों पर बिक कर कुछ न कुछ अवश्य प्रदान कर देता ।

'दुखमोचन' उपन्यास में दुखमोचन की मामी अक्सर बच्चों को खाना खिलाकर गप्प-सप्प के समय यह कार्य कर लिया करती – "बच्चे खाना खाकर उधर गप्प-सप्प कर रहे थे । मामी मलसी सामने रखकर उसमें तकली नचा रही थी .... कोर्र-कोर्र कीं कीं आवाजों से रात की चुप्पी को खरोच रही थी ।"[66]

इस प्रकार नागार्जुन ने परिवार की आर्थिक वैषम्यता से जूझती एवं संघर्षशील नारी के चेतनागत स्वरूप का वर्णन किया है, जिसमें नारी अर्थोपार्जन के प्रति सजग एवं सचेत है। आर्थिक भयावहता को दूर करने के लिए नारी अपने कार्य क्षमता के अनुसार कहीं न कहीं से अर्थोपार्जन अवश्य करती है। नागार्जुन जी के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों की यह भूमिका तत्कालीन समाज में नारी की आर्थिक भूमिका को स्पष्ट करता है ।

4. ङ. काम-काजी नारी की भूमिका :

मनुष्य जीवन में कर्म का महत्वपूर्ण स्थान हैं । कर्मठी व्यक्ति अपने जीवन के लक्ष्य के प्राप्त करने में सफल होता है । कर्म मनुष्य को अनुभवशील बनाता है और कर्म के

उपरान्त प्राप्त अनुभव जीवन संघर्ष से जुझने का नया-नया तरीका सामने प्रस्तुत करता है। जिस तरीके से जीवन में आने वाले संघर्षों का मनुष्य डटकर मुकाबला करता है। कर्म का क्षेत्र विस्तृत है और हमारे भारतीय संस्कृति में जीवन में कर्म करते जाने की प्रेरणा के प्रति मजबूती से उपदेशात्मक प्रबन्ध मौजूद हैं । कर्म की अवधारणा का विस्तृत रूप गतिशील जीवन का परिचायक है। मनुष्य जब समुद्र के अतल गहराई में डूब कर मोतियों की तलाश करेगा तभी वह मोती प्राप्त कर सकेगा । गीता का कर्म उपदेश भारतीय जन मानस में रचा बसा है। वेदों उपनिषदों में भी कर्म करते जाने की प्रेरणा के प्रति मजबूती से उपदेशात्मक प्रबन्ध मौजूद हैं । कर्म की अवधारणा का विस्तृत रूप गतिशील जीवन का परिचायक है। मनुष्य जब समुद्र के अतल गहराई में डूबकर मोतियों की तलाश करेगा तभी वह मोती प्राप्त कर सकेगा । गीता का कर्म प्राप्त होती है जिससे जीवन में गतिशीलता बनी रहती है, वह कर्म है । जिससे व्यक्ति लक्ष्य की प्राप्त कर सकता है वह कर्म ही है। जिससे व्यक्ति अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सकता है वह कर्म ही है जिससे कल्पना को भी साकार रूप दिया जा सकता है वह कर्म ही है अर्थात् कर्म मनुष्य के सर्वांगीन विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। संसार में कर्म के विविध रूप प्राप्त होते हैं और वह कर्ता के अनुसार विविध स्तर के होते हैं ।

मनुष्य का जीवन स्तर विभिन्नताओं से भरा पड़ा है, इसलिए उन्हीं विविधता में जीने वाले मनुष्य के कर्म में विविध प्रकार के हैं । काज या कर्म जिसे कहीं-कहीं कार्य के रूप में भी देखा जाता है । काज-कार्य या कर्म मनुष्य द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति में किए गए परिश्रम का विस्तृत रूप है, अर्थात मनुष्य अपने अद्देश्य प्राप्ति के लिए लक्ष्य को ध्यान में रखकर शरीरिक, मानसिक और आर्थिक रूप से जो क्रिया-कलाप करता है वहीं कर्म कहलाता है । लक्ष्य के प्रति केन्द्रित होकर मनुष्य उस क्रिया-कलाप को उचित दिशा प्रदान करते हुए उद्देश्य प्राप्ति के तरफ बढ़कर लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और वह उचित

क्रिया-कलाप उस लक्ष्य तक प्राप्त होने में सहायक होते हैं । चाहे वह लक्ष्य रोजी-रोटी की समस्या हो, चाहे वह जीवन-निर्माण, चरित्र निर्माण या भौतिक जगत के आवश्यकताओं की पूर्ति हो या फिर ईश्वर की प्राप्ति ही क्यों न हों । मनुष्य इस लक्ष्य के अनुसार अलग-अलग स्तर पर उस तरह का कर्म करके अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है ।

नागार्जुन के उपन्यासों में मानव-जीवन स्तर पर निम्न वर्गीय, मध्य वर्गीय एवं ग्रामीण स्तर के काम-काजी नारी पात्र की भूमिका नजर आती हैं। विशेष रूप से नारियों का जीवन स्तर ग्रामीण ही हैं और वे ग्राम्य संस्कृतियों में जीवन यापन करती है । वस्तुतः उनकी काम-काजी भूमिका भी उसी स्तर की होगी ।

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में ग्राम्य संस्कृति में पली नारी पात्र जो ग्रामीण महिलाओं के प्रसूति काल में देख-रेख का काम करती है, उसे नागार्जुन ने चमाइन नाम से सम्बोधित किया है। वह ग्रामीण प्रचलन के अनुसार गाँव के बहू बेटियों के प्रसव काल की हर गतिविधियों पर नजर रखकर उसका देख-रेख करती है और विभिन्न प्रकार के निदान करती है। गौरी जब वैधव्य जीवन के बीच हीयुवा काल के फिसलन के चलते गर्भ धारण करती है तो गौरी की माँ चमाइन को ही गर्भपात करने के लिए बुलाती है – ''भैंस की बीमारी के बहाने गौरी की माँ ने बुछना चमार की औरत को बुलवा भेजा, यह चमाइन इन कामों में उस्ताद थी । गाय, भैंस, औरत, चोड़ी बकरी वह सबके काम आती ।''

पाँच-पाँच रुपये के दो नोट देने पर भी वह सिर हिलाकर कहती हैं - नहीं मलिकाइन, इतने में काम नहीं चलेगा, यह तो दवा का दाम भी नहीं होगा, मेरी मजूरी आप क्या देंगी ?''[67]

चमाइन का यह काम काज बिल्कुल मजदूरी की शर्त पर होता है जिससे एक काम-काजी महिला के गतिविधियों का पता चलता है।

'रतिनाथ की चाची' में काम-काजी नारी की भूमिका में चमाइन के अलावा गौरी के

मायके की नौकरानी सुक्खो भी एक काम-काजी नौकरानी के रूप में कार्यरत है । वह घर का काम-काज करती है और बदले में उचित पारितोषिक प्राप्त करती है। नौकरानी के रूप में उसके काम-काज और जीवन स्तर का वर्णन करते हुए नागार्जुन लिखते हैं – "नौकरानी ने आकर कहा, "रसोई में देर न हो जाएगी, मलिकाइन, क्या बात है ? आज तबियत कुछ ढीला देखती हूँ ।"

गौरी की माँ ने कहा, "नहीं, कुछ नहीं सुक्खो । यों ही जरा सो गई थी । पानी भर चुकी घड़ों में ?"

हाँ, मलिकाइन ? अब जाती हूँ ।" उसने कहा नजदीक आकर गौरी की माँ बोली, "अपनी सास को जरा भेज देना । जरूरी काम है ।"

"अच्छा" सुक्खों चली गई । थाली में दिन का जूठा भात, दाल और कई किस्म की भाजियाँ लिए हुई थी ।"[68]

अपने काम-काज में व्यस्त नौकरानी सुक्खो एक नारी पात्र की भूमिका में हैं । वेसै तो काम-काज के द्वारा अर्थोपार्जन कर गौरी भी एक काम-काजी नारी पात्र की भूमिका में उपस्थित है। जो चरखे चलाकर सूत कातने का काम काज करती है और उससे कुछ धनोपार्जन करती है। धन प्राप्त करने के लिए किया गया काम-काज अपने लक्ष्य अर्थात धन प्रदान करता है। इसलिए धनोपार्जन के लिए किया गया गौरी का यह काम-काज उसे काम-काजी नारी पात्र की भूमिका में ही रखता है।

अपने जीवन स्तर के अनुसार निम्नवर्गीय नारी पात्र भी कुछ न कुछ काम-काज करती है जो उनके अपने गाँव में ही उपलब्ध है1 वह कार्य जमीनदार के खेतों में काम कर मजदूरी प्राप्त करना या भरपेट भोजन पर जमीनदारिन के घर-घर गृहस्थी का काम-काज सम्भालना 'बलचनमा' में बलचनमा कहता है – "माँ उनके यहाँ घरेलू काम-काज पहले की ही भाँति अब भी किए जा रही थी – बरतन माजना, पानी भरना, झाड़ू-बुहारू देना

लिपना-पोतना, चूल्हा जलाकर रसोई चढ़ा देना यही कुछ काम-काज थे ।''[69]

'बलचनमा' की माँ का जमीनदारिन के घर आकर यह सारे काम-काज निपटना ग्रामीण स्तर पर एक काम-काजी नारी की भूमिका का ही द्योतन करता है। उल्लिखित है कि अपने जीवन स्तर के अनुसार महिलाएँ कहीं न कहीं काम-काज में व्यस्त हैं । मजदूर वर्ग मजदूरी का काम-काज करके अपने काम-काजी होने को सिद्ध करता है । बूढ़ी औरतें भी रोपनी, कटनी, निराई, गुड़ाई इत्यादि का काम-काज कर अपने जीवन स्तर के अनुसार अपने काम-काजी होने का प्रमाण देते है । बलचनमा कहता है – ''हम दोनों भाई-बहन मालिकों के खेतों में जाकर रोज धान काटते थे । रात का रखा हुआ खाना, सुबह अंधेरे हाथ-मुँह धोकर खा लेते थे .... फिर कमर में हसिया खोसकर हम खेतों की ओर चल देते .... मर्द मेहरारू, जवान - बूढ़े सभी ठीक बखत पर खेत में पहुँच जाते ।''[70]

इस तरह खेतों पर काम करने वाली नारी पात्र किसी की बहन किसी की माँ और किसी की पत्नी भी हैं । बलचनमा एक जगह कहता है – ''पहले कुछ दिनों तक माँ ने सुगनी को खेत में नहीं जाने दिया । बहू हो चाहे बेटी खेत में काम करने जाना पड़ेगा, पानी भरना होगा .... हमारी औरतें मेहनत-मजदूरी का दाना खाती है ।''[71]

इस प्रकार बलचनमा उपन्यास के नारी पात्र अपने स्तर के काम-काज में व्यस्त हैं। इसी काम-काज के आधार पर उनका जीवन-यापन होता है।

'नई पौध' की सहुआइन एक साहूकार की पत्नी है जो स्वयं तेल निकालने का काम-काज करती हैं । और उसी तेल निकालने के काम-काज से प्राप्त अर्थव्यवस्था से घर के खर्च का भार ढोती है । 'नई पौध' में विसेसरी की माँ रामेसरी भी चरखा कातने और सूत निकालने का काम-काज करती हैं और उससे प्राप्त पच्चीस महीने से इकलौती बेटी की देख-रेख का खर्च वहन करती है । गाँव की अन्य महिलाएँ भी गृह कार्य के अलावा चरखे कातना, सूत निकालना, पूनी बनाना, तकली चलाना स्वेटर बुनना, मोज बनाना, तथा अन्य

बहुत सारे सीने पिरोने के काम-काज में दक्ष हैं और उचित समय पर उस काम-काज को कराती भी रहती है, जिससे कुछ धनोपार्जन भी होता रहता है।

'बाबा बटेसरनाथ' ने जयकिसुन की दादी अलूहा की खेती कराती हैं और उस खेती का उपयोग अकाल के समय करती है ।

'वरुण के बेटे' में नारी पात्र की काम-काजी भूमिका गृह तक ही सीमित है, जिससे किसी अर्थोपार्जन में सहयोग नहीं मिलता है।

'पारो' उपन्यास की महिलाएँ भी गृह कार्य में व्यस्त रहती हैं । वे भी किसी काम-काज से प्रत्यक्षतः धनोपार्जन नहीं करती ।

'दुखमोचन' उपन्यास में काम-काजी नारी पात्रों का उल्लेख है। काम-काजी महरियों के तनख्वाह को लेकर दुखमोचन ओर उसकी मामी में तर्क-वितर्क होता है — ''तुम्हारी राय में कितनी तनख्वाह महरियों को मिलनी चाहिए ? सिर्फ पानी भरने पर एक रुपया और बरतन-बासन माजने, झाड़ू-बुहारी करने पर अठन्नी और .... बबुअन, शहर का हाल तो तुम्हें ही मालूम है, मगर देहात में भी अब चीज-वस्तु के दर-भावखूब ऊँचे चढ़ गए हैं । पुराने जमाने की महरियाँ नहीं हैं ये कि चार-छः आने महीनेवारी पर तुम लोगों के तलवें सहलाती रहेंगी...........।''[72]

इस प्रकार ग्राम्य परिवेश में भी ये कामकाजी महरियाँ अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं और किए गए काम-काज के लिए उचित तनख्वाह की माँग करती हैं जिसका समर्थन दुखमोचन की मामी भी करती है कि इस महगाँई के जमाने में इन कामकाजी महरियों के तनख्वाह में भी वृद्धि होनी चाहिए । अपने-अपने गृहकार्य में 'कुम्भीपाक' की नारी पात्र भी लगी हुई हैं । किन्तु उनके काम-काज को अर्थोपार्जन की दृष्टि से स्वेच्छा पूर्वक किया गया कार्य नहीं माना जाएगा और ना ही काम-काजी महिला कहा जाएगा । इसलिए कि आश्रम के आड़ में चलने वाले देह धन्धे से उपार्जित उस धन को हम काम-काज से उपार्जित

धन नहीं कह सकते ।

'कुम्भीपाक' की रूपाजीवा चम्पा, भुवन के अलावा उम्मी और उम्मी की माँ गृह काजी महिलाएँ हैं न की काम काजी ।

'उग्रतारा' उपन्यास में उगनी गीता, नर्मदेश्वर की भाभी और 'जमनिया के बाबा' की तीनों नारी पात्र गृह-काजी महिलाएँ हैं ।

इस प्रकार नार्गाजुन के उपन्यासों में चित्रित काम-काजी नारी की भूमिका अपने जीवन के अनुसार प्राप्त होता है । आंचलिक परिवेश की काम-काजी महिलाएँ अपने स्तर एवं क्षमता के अनुसार काम-काज करती हैं और काम-काज से उपार्जित तत्वों का अपने जीवन में उपयोग करती हैं ।

संदर्भ :

1. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 15
2. वही, पृ. 16
3. वही, पृ. 17
4. वही, पृ. 17
5. वही, पृ. 25
6. वही, पृ. 28
7. वही, पृ. 36
8. बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 128
9. वही, पृ. 43
10. वही, पृ. 174
11. वही, पृ. 19
12. वही, पृ. 121
13. वरुण के बेटे : नागार्जुन्, पृ. 57
14. वही, पृ. 73
15. पारो : नागार्जुन, पृ. 131
16. वही, पृ. 179
17. वही पृ. 38
18. दुखमोचन : नागार्जुन, पृ. 38
19. वही, पृ. 38
20. वही, पृ. 77
21. कुम्भीपाक : नागार्जुन, पृ. 33
22. उग्रतारा : नागार्जुन, पृ. 14
23. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 14
24. वही, पृ. 15
25. वही, पृ. 55
26. वही, पृ. 55
27. वही, पृ. 40
28. वही, पृ. 40
29. वही, पृ. 14
30. वही, पृ. 81
31. बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 173
32. वही, पृ. 174

33.बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 107
34. वही, पृ. 28
35. वरुण के बेटे : नागार्जुन, पृ. 33
36. दुखमोचन : नागार्जुन, पृ. 20
37. वही, पृ. 35
38. वही, पृ. 60
39. कुम्भीपाक : नागार्जुन, पृ. 134
40. वही, पृ. 151
41. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 15
42. वही, पृ. 25
43. वही, पृ. 50
44. वही, पृ. 107
45. वही, पृ. 115
46. वही, पृ. 135
47. बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 141
48. वही, पृ. 141
49. नयी पौध : नागार्जुन, पृ. 36
50. दुखमोचन : नागार्जुन, पृ. 29
51. वही, पृ. 73
52. बाबा बेटेसरनाथ : नागार्जुन, पृ. 50
53. वही, पृ. 56
54. वही, पृ. 18
55. उग्रतारा : नागार्जुन, पृ. 86
56. वही, पृ. 36
57. जमनिया का बाबा : नागार्जुन, पृ. 112
58. पारो : नागार्जुन, पृ. 148
59. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 53
60. वही, पृ. 53
61. वही, पृ. 97
62. बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 21
63. वही, पृ. 17
64. नयी पौध : नागार्जुन, पृ. 196
65. वरुण के बेटे : : नागार्जुन, पृ. 50

66. दुखमोचन : नागार्जुन, पृ. 25
67. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 29
68. वही, पृ. 169
69. बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 29
70. वही, पृ. 22
71. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 36
72.दुखमोचन : नागार्जुन, पृ. 26

पंचम अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन की प्रमुख समस्याएँ

पंचम अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन की प्रमुख समस्याएँ

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी जीवन की विभिन्न समस्याएँ चित्रित हैं, जो तत्कालीन भारतीय परिवेश में व्याप्त, नित्यप्रति हो रहे सामाजिक घटनाओं और बदलते माहौल की देन हैं । नागार्जुन के उपन्यास का कथा परिवेश तत्कालीन भारत के आजाद होने और रूढ़िवादी परम्पराओं के टूटने से सम्बन्धित है । नागार्जुन का उपन्यास लेखन भारतीय स्वतंत्रता के अन्तिम सोपान और संघर्ष (सन् 1947 - 1980) समाप्ति पर शुरू होता है । वैसे तो उपन्यासों में स्वतंत्र भारत में हो रहे परिवर्तन के अन्तर्गत् नारी की जीवन दशा का और उससे सम्बन्धित समस्याओं का वर्णन हुआ ही है, इसके अलावा सामाजिक इतिवृत्ति में पड़ी नारी किस तरह संघर्ष करती हुई अपने अधिकारों के प्रति सजग है, इसका भी वर्णन बड़ी सावधानी से हुआ है ।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद नारीवादी विचारधाराओं का समर्थन जोर-शोर से होने लगा, जिससे तमाम सामाजिक संस्थाएँ नारी के अधिकारों के प्रति सजग हुई और नारियों के जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का निदान ढूँढ़ा जाने लगा । दहलीज से पैर न रखने वाली नारी अपनी समस्याओं के प्रति सचेत हुई, अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना प्रारम्भ किया और अन्ततः अपने स्वच्छन्द विचारों की स्थापना हेतु समाज में लड़ाई लड़ना प्रारम्भ किया । धीरे-धीरे बनते बिगड़ते नये पुराने मानदण्डों में नारी की वैचारिक सहभागिता का प्रभाव भी स्थापित होने लगा, किन्तु जटिल समस्याएँ वैसी की वैसी बनी रहीं । नई शिक्षा नीति, पंचवर्षीय योजनाएँ, नारियों की समानता का अधिकार, नारी चेतना, नारी विधेयक आदि मूल्यात्मक स्वरूप नारी के हित में आने लगे। इन परिवर्तनों के बावजूद भी सहज रूप से अधिकारों की माँग की चर्चा की गयी और अन्ततः नारी की सक्रियता ने उनके जीवन से सम्बन्धित समस्याओं की तरफ पूरे समाज का ध्यान भी आकर्षित किया, जिनमें मुख्यतः

पारिवारिक माहौल में रहने वाली नारी तमाम पारिवारिक समस्याओं से किस तरह जूझती है, इसका तो दर्शन होता ही है, युग परिवेश के अनुसार ही पारिवारिक समस्याएँ किस तरह की हैं, यह भी उभरकर सामने आता है ।

सामाजिक जीवन में नारी से सम्बन्धित जो समस्याएँ हैं, नागार्जुन ने उसका विस्तृत स्वरूप अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। जिनमें अनमेल विवाह तथा विधवा विवाह से उत्पन्न समस्याएँ या अनमेल विवाह का प्रचलन और विधवा विवाह का विरोध आदि दर्शाया गया है । इसके अलावा समाज में तमाम व्यभिचारों के माध्यम से हो रहे नारी के शोषण को भी बताया गया है। इस तरह ये सामाजिक समस्याएँ नारी को पूर्णरूपेण प्रभावित करती हैं, जिसमें परिवार भी सम्मिलित है। पारिवारिक समस्याओं में जूझती नारी के लिए सामाजिक समस्याएँ और जटिल हैं और उनसे लड़ना भी संघर्ष भरा है । जहाँ नारी कभी-कभी टूटती हुई भी नजर आती है, पर पुनः ही एक क्रान्तिकारी विचारधारा पूरे परिवेश को प्रभावित करता है और नारी सचेत होकर उन समस्याओं से जूझती है । धर्म के प्रति आस्था होने के चलते नारी धर्म के प्रति आकर्षित है । लेकिन अन्ध विश्वास और ढोंग-ढकोसला के चंगुल में फँसकर नारी शोषण का शिकार होती है । आर्थिक अभाव का प्राबल्य है और पारिवारिक सामाजिक रूप में इस आर्थिक विषमता का शिकार प्रमुख रूप से नारी ही है ।

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन की प्रमुख समस्याएँ, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक तो हैं ही, सबसे कठिन समस्या है – आर्थिक समस्या, जो नारी जगत् को तमाम कुचक्रों का शिकार बनाती है, और अभाव की जिन्दगी जीने के लिए मजबूर नारी कोई भी कदम उठाने से हिचकती नहीं । ये सारी समस्याएँ नारी की त्रासद जीवन जूझने के लिए, जीने के लिए विवश करती हैं । उस विवशता से ऊब कर नारी क्रान्तिकारी रूप धारण करती है और पुनः जागृत नारी इन समस्याओं से जूझने में सफल होती है ।

5. क. पारिवारिक समस्याएँ :

नारी परिवार में जीवन यापन करती है। परिवार समाज की एक इकाई है और नारी उस परिवार में माँ, दादी, बहन, बेटी, पत्नी आदि रूपों में रहती है । परिवार में घर गृहस्थी, खान-पान, सेवा-सुश्रुषा करती है । माँ के रूप में नारी पुत्र के सुख-दु:ख का ख्याल रखती है । पत्नी के रूप में पति का ख्याल रखती है । बहन के रूप में बन्धुओं का ख्याल रखती है या यूँ कहें दृश्यतः वह परिवार के सभी सदस्यों के प्रति ध्यान देती है। चाहे वह सम्बन्धों के किसी रूप में हो, घर-गृहस्थी के प्रति उसकी बहुत सारी जिम्मेदारियाँ होती हैं। नागार्जुन के उपन्यासों में इन्ही जिम्मेदारियों के निर्वाह में संघर्षरत नारी के सामने विविध प्रकार की समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं । परिवार के सदस्यों के साथ सम्बन्धों के निर्वाह की एक निश्चित सीमा है। लोक प्रचलित आम धारणाओं के चलते परिवार में नारी विविध बन्धनों से बंधी है, जिसके चलते समस्याओं का अम्बार खड़ा होता है । ये समस्याएँ नारी के अपने जीवन स्तर के अनुसार हैं, जहाँ नारी संघर्ष करती नजर आती है ।

ग्रामीण परिवेश पर जीवन यापन करती नागार्जुन के उपन्यासों की नारियाँ ग्राम्य जीवन की पारिवारिक समस्याओं से ग्रसित हैं। ग्राम्य जीवन के पारिवारिक परिवेश में नारी की समस्याएँ अशिक्षा के कारण और जटिल रूप में परेशानी का सबब बनती हैं । एक परिवार में विविध विचारधारा के लोग रहते हैं, इसलिए उन विचारधाराओं के टकराहट में नारी ही उसका शिकार होती है । चाहे वह माँ, बहन, बेटी, पत्नी जिस रूप में हो । उन समस्याओं को उन्हे झेलना ही है ।

नागार्जुन के उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में पारिवारिक समस्याओं से जूझती उमानाथ की माँ गौरी परिवार में विधवा नारी के रूप में जीवन व्यतीत करती है और पारिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति सजग होने के कारण अपने विधुर देवर के पुत्र को पोसती-पालती है । उसी दरम्यान वह अपने विधुर देवर जयनाथ के पुत्र की माँ बनने वाली

होती है, वैधव्य जीवन की यह गलती परिवार में उसके लिए बहुत बड़ी समस्या बन के सामने आती है। गर्भ धारण करने के कारण वह अत्यन्त चिन्तित हो उठती है – "उस रात चाची को नींद नहीं आयी जिसके माथे पर विपत्ति का इतना बड़ा पहाड़ हो वह भला कैसे सोए ? भादों, आसिन, कार्तिक, अगहन, पूस, माघ, फागुन और यह चैत आठवाँ महीना चल रहा था। पेट में बच्चा उधम मचाने लगा था । चाची को ख्याल आया जयनाथ का चेहरा और फिर उसने सोए हुए रति का मुँह चुम लिया । उमानाथ की माँ जानती थी कि जयनाथ देवघर था और आजकल काशी में है । बेचारी ने कई बार चिट्ठी लिखवाना चाहा, मगर किससे लिखवाती ? जयनाथ वादा कर गए थे कि दस दिन में ही मैं बाबा 'वैद्यनाथ' को जल डालकर आ रहा हूँ ।"[1] पारिवारिक परिवेश में गौरी की यह समस्या, परिवार की प्रतिष्ठा एवं स्वयं की प्रतिष्ठा के लिए घातक है। बिलम्ब होने के चलते जयनाथ के प्रति तमाम तरह की शंकाएँ उठती हैं ।

माँ की शरण में जाने के बाद माँ अपने परिवार की प्रतिष्ठा के प्रति चिन्तित है कि उसकी बेटी ने यह सब क्या कर लिया और अपने क्रोध का प्रयोग वह गौरी के ससुराल के खानदान की कमी निकालकर करती है – "दरिद्र कुल में लड़की ब्याहने का ही यह दुष्परिणाम था । शुभंकरपुर के यह वैद्यनाथ झा कुलीनता की दृष्टि से ही जरा बढ़े थे । गौरी के पिता चुम्बन झा को स्वयं भी पीछे जाकर यह विवाह सम्बन्ध असंतोषप्रद लगने लगा। जमाई महाशय दमा के रोगी और प्रकृति से सुस्त थे । शादी के बाद तो पढ़ना जान बूझकर ही उन्होंने छोड़ दिया । ससुराल आते तो बीस-बीस दिन, पच्चीस-पच्चीस दिन तक पड़े रहते .... कमाकर शायद ही दो पैसे कभी स्त्री के हाथ पर दिया हो । जाते-जाते एक क्वॉरी लड़की और एक अबोध शिशु बेचारी के मत्थे ठोक गए ।"[2] अबोध बच्चों के लालन-पालन की यह समस्या गौरी के लिए एक जटिल समस्या है। नागार्जुन के यह उपन्यास तत्कालीन पारिवारिक प्रथाएँ दर्शाता है । तथा बेटी के प्रति माता-पिता का गैर

जिम्मेदाराना रवैया तमाम परेशानियों का कारण बनता था । जल्दीबाजी में पुत्री के योग्य वर न होने अधिक उम्र वाले लड़के के साथ विवाह आदि इस तरह की पारिवारिक समस्याओं को पैदा करते थे ।

भाइयों के कहने के बावजूद भी गौरी ने मायके में रहना पसन्द नहीं किया । माँ के आग्रह करने पर गौरी ने कहा था कि मैं यह शर्त स्वीकार नहीं कर सकती, जैसे तुमने अपने पिता की सम्पत्ति का त्याग किया, वैसे ही मैं भी स्वाभिमानी हूँ । 'रतिनाथ की चाची' गौरी ने मायके में जाकर माँ के सहयोग से अपनी सबसे बड़ी समस्या का समाधान तो कर लिया किन्तु उसका गहरा प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ा । मातृहीन पुत्र रतिनाथ देख-रेख के अभाव में उल्टे-सीधे व्यवहार का शिकार होता है और एक दिन चुपके से भांग पी लेता है और .... ''खाते समय मुँह के बदले कान में ही उसने भात के कौर डालना शुरू किया .... कंधे पर कान से भात गिरते देखकर पिता ने समझा लड़के ने भांग खा ली है। स्त्री पर बड़ी पिटाई पड़ी, चाची ने आकर छुड़ा लिया था, नहीं तो उस रात जयनाथ पीट-पीट कर उसे दुम्बा बना देते ।''[3]

मातृहीन पुत्र की मनमानी एक पारिवारिक समस्या के रूप में गौरी को परेशान करता ही है, इससे पहले जयनाथ के परिवार में भी मनमानेपन का अनूठा उदाहरण मिलता है– ''यही हाल था जयनाथ का, वह भाग-भाग कर बड़हड़बा पहुँच जाते। अपनी शादी और गौने के बाद भी जयनाथ का मन घर पर नहीं लगता था बड़हड़बा उसके लिए हरी घास का अक्षय मैदान था । फिर अपनी सारी जवानी उन्होंने दक्षिण भारत के उस देहात में बिता दी तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? ठाकुर जी की विधवा भावज वहाँ जयनाथ के लिए जान देती थी।''[4]

इस प्रकार की बहुतायत पारिवारिक समस्याएँ नारी जीवन को परेशान करती हैं, जिसका उल्लेख नागार्जुन ने अत्यन्त ही यथार्थपूर्ण ढंग से किया । गौरी का पुत्र उमानाथ

बाहर से जब घर आता है दम्मो फूफी के कान भरने पर और सारी घटनाओं से परिचित होने पर – ''उमानाथ फुफकारता हुआ अपने आँगन में आया और माँ की झोंटा पकड़ लिया, वह बेचारी आकस्मिक आक्रमण से चकित सी ही थी कि इसी बीच लड़के ने उसकी पीठ पर आठ-दस लात गदागद जमा दी ।''[5]

इस पिटाई के बावजूद भी माँ के न कुछ बोलने पर उमानाथ दाँत पीसता हुआ बोला – ''राक्षसी कहीं .... की । ले, रख अपना घर, मैं जाता हूँ, तालाब में डूबने और तब तुम मौज मारती रहना । उठकर झट से चाची ने उमानाथ के पैर छू लिया, लड़का चिल्लाया ''नहीं-नहीं, जीकर मैं क्या करूँगा ? गला में घड़ा बाँधकर डूब मरूँगा, तभी मुझे शान्ति मिलेगी ।'' ''नहीं भैया'', लड़के के पैरों पर अपना मुक्त-कुंतल मस्तक डालकर माँ गिड़गिड़ाई'' नहीं भैया, कौन में कुल्हाड़ा रखा है, उठा लाओ मुझे खण्ड-खण्ड कर दो । मैं खुद इसलिए नहीं डूब मरी कि तुम्हारे हाथों सदगति मिलेगी तो मेरे सारे कुकर्म धुल जाएँगे।''[6]

माँ के साथ पुत्र का यह व्यवहार और पारिवारिक सम्बन्धों के संघर्ष में जूझती नारी यहाँ अपने को अपराधी स्वीकार करती है और उन अपराधों का जिम्मा स्वयं सिर्फ और सिर्फ अपने सिर पर ओढ़ लेती है। जबकि इस अपराध का भागी उसी आँगन में रहने वाला जयनाथ भी है । जिसके चलते गौरी को त्रासद भरी जिन्दगी जीनी पड़ती है। स्व-पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति निर्वाह में सजग नारी अपने सारे सुख-दुख की चिन्ता भूल जाती है और बहुत सारी पारिवारिक समस्याओं को अपने सिर लिए बैठती है। मामा के पास जाने के पहले रतिनाथ की भाव भरी आँखों को देखकर अपने पारिवारिक अकेलेपन के सन्दर्भ में चाची कहती है – ''मुझे क्या, अकेली भी रह लूँगी, परन्तु मेरे भैया के साथ रहकर तुम अपने बाप को न भूल जाना ।''[7] रतिनाथ ने कहा कुछ नहीं सिर्फ गौर से चाची की ओर देखा, वह बोली – ''समझती हूँ, बाप के प्रति तुम्हारे हृदय में माया-ममता बहुत कम है, परन्तु सदगति

तो उनकी तुम्हारे ही तर्पण से होगी । संसार उन्हें खिला सकता है, पिला सकता है जिला सकता है पर मरने के बाद वह उन्हें प्रेत होने से नहीं बचा सकता, यह तुम्हीं कर सकते हो।"[8]

चाची का पारिवारिक समस्याओं के प्रति सचेत होना एक नारी के रूप में सम्बन्धों का निर्वाह ही है । किन्तु क्या वह स्वयं को इससे उबारने में सफल हो जाती है ? परिवार की सभी बाह्य आन्तरिक समस्याओं से जूझती इस नारी का चित्रण नागार्जुन ने बड़े साहित्यिक कलेवर के साथ किया है। परिवार की प्रतिष्ठा बचाने के लिए जयनाथ जैसे चरित्र हीन व्यक्ति को वह समझाती है, जिसका उल्लेख नागार्जुन ने इस प्रकार किया है–"एक विधवा तेलिन इन दिनों जयनाथ की प्राण वल्लभा बनी थी । चाची के समस्या "शादी कर लो बाबू, एक भले आदमी की जिन्दगी बिताओ, सेंध लगाने के फिराक में भीतों की ओर घूरते रहने वाला चोर क्या खाक चैन से रहेगा ?"[9]

पारिवारिक समस्याओं से जूझती नारी नागार्जुन के उपन्यासों में परिवार को समाज के कुचक्रों से बचाने में लगी है, तो कहीं टूटते सम्बन्धों के बीच जोड़ का काम करने में लगी है, तो वहीं अभावों की जिन्दगी व्यतीत करती स्वयं को उबारने में लगी है। परिवार में विविध विचारधाराओं के व्यक्ति जीवन यापन करते हैं । उन विविध विचारधाराओं में गौरी भी स्वयं को शिकार महसूस करती है और स्वयं को टूटती हुई महसूस करती है – "उमानाथ की पत्नी कमलमुखी चाची की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने लगी, होली का त्यौहार आ यह चाची का विचार था, कम से कम पाँच सेर आटे के लड्डू लायक घी गुड़ का प्रबंध करना चाहिए । कमलमुखी ने कहा – "नहीं इतना क्या होगा ? ढाई सेर आटा काफी रहेगा ।" चाची बोली– "तुम नहीं समझती हो, इस बार भगवान की कृपा है कि आँगन भरा-पुरा है, तुम हो, प्रतिभामा है, बाल-बच्चे हैं । पुआ-पकवान कुछ ज्यादा ही बन जायेंगे तो क्या हर्ज है ?" इस पर कमलमुखी ने ठुमुक कर कहा – "मना कर गए हैं ।"

चाची ने जोर दिया – "तो क्या हुआ ?" ऊँ हूँ" – पतोहू अचल होकर बोली । प्रतिभामा ने माँ को इसारा किया – "क्यों झगड़ती है ?" चाची इस घटना से टूट गयी।"[10] पारिवारिक समस्याओं में सास-बहू का यह रूप आंचलिक अपन्यासों का मुख्य विषय रहा है। नागार्जुन के इन उपन्यास में नारी का यह जीवन इसी पारिवारिक परिवेश से सम्बन्धित है – "कलमुही सास की सेवा करती अवश्य थीं परन्तु हृदय से नहीं ।"[11]

बहू के आधिपत्य में घर-गृहस्थी का सारा स्वरूप बदल जाता है और एक नयी समस्या आ खड़ी होती है । गौरी के प्रति प्रेम-श्रद्धा रखने वाले परिजन को देखकर गौरी की बहू कमलमुखी जल-भुन उठती है और वह उसके साथ उल्टे-सीधे व्यवहार करती है, जबकि रतिनाथ चाची की परिचर्या करना चाहता है परन्तु – "कमलमुखी गिन-गिन कर चावल निकालती और पकाती, रतिनाथ का हिसाब वह मेहमान के तौर पर करने लगी । दो नहीं चार-दिन रहो, चार नहीं दस दिन रहो, हमेशा के लिए यहीं पालथी लगा लो, सो नहीं होगा। ऐसा हो तो अपना घर है, खुद पकाकर खा लो अपना ।"[12]

अन्ततः इन सारी पारिवारिक समस्याओं को झेलती रतिनाथ की चाची अत्यन्त व्यथित हो उठती है। उनकी व्याथा का कारण अपने ही पुत्र और बधु के द्वारा किया गया उपेक्षित व्यवहार है – "परन्तु दीर्घ आयु का सम्बन्ध जिन परिस्थितियों से है क्या चाची, उन्हीं परिस्थितियों में अपना जीवन बिताती थी ? ग्लानि और अपमान, तिरस्कार और उपेक्षा चाची ने बहुत सही थी किन्तु अब उमानाथ का बर्ताव और कमलमुखी की अश्रद्धा उस बेचारी को अधिक से अधिक यातना दे रही थी । इतने दिनों तक तो पुत्र की आशा से सब कुछ सहती आयी थी और अब आशा का वही केन्द्र निराशा का गड्ढा साबित हो रहा था। ऐसी स्थिति में निरानन्द और नीरस जिन्दगी बिताने से क्या लाभ ?"[13]

नारी जीवन की यह त्रासद पारिवारिक समस्याएँ गौरी को अपने जीवन के प्रति निराश कर देती हैं । यह निराशा सिर्फ गौरी की नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज में इस तरह की

पारिवारिक समस्याएँ गौरी जैसी कितनी नारियों को भावनात्मक रूप से प्रभावित कर रहीं हैं।

पारिवारिक समस्याओं का संजाल विचित्रता से भरा हुआ 'बलचनमा' में मिलता है। 'बलचनमा' में राधा बाबू कांग्रेसी हैं । लड़के और लड़की दोनों को बराबर समझते हैं, उनका कहना है कि बच्ची पढ़ेगी नहीं तो करेगी क्या ? एक रोज उन्होंने मलिकाइन से कहा – ''तुम पढ़ी-लिखी होतीं तो, मैं दुगूना काम कर दिखाता ! इस पर मलिकाइन आँखें नचाकर बोली – ''ना भाई, तुम्हारा यह काम तुम्हीं को मुबारक ! मैं अपढ़ ही भली हूँ .... लगोंटी लगा लो और जटा बढ़ा लो, बाज आयी मैं तुम्हारे इस चरखे से। तुम्हें तो औरत होकर जनम लेना था, बड़ा ही विरोध होता है, मुझे विधाता पर ।'' मालिक हँसने लगे, थोड़ी देर बाद बोले –''समझोगी क्या ? जिसके खानदान में हाथियों का कारोबार होता रहा हो, उसकी अकिली बारिक ही हो नहीं सकती .... इस पर मलिकाइन ने हाथ चमकाकर कहा – ''रहने भी दो, मैं भी तुम्हारे बाप-दादे के बारे में कहूँ तो कैसा लगेगा ? कौन मना करता है ? लड़की तुम्हारी, स्कूल तुम्हारा जितनी मर्जी उतना पढ़ा देना ?''[14]

पारिवारिक परिवेश में महिलाओं के ग्रामीण जीवन का स्तर शिक्षा के प्रति कोई ध्यान आकर्षण नहीं दिखा पाता और वह उपन्यास के तत्कालीन परिवार के शैक्षणिक परिवेश का यथार्थ प्रस्तुत करता है । लड़कियों की शिक्षा की विरोधी माँ की यह विचारधारा एक पारिवारिक समस्या ही है, जिससे राधा बाबू जैसे व्यक्ति प्रभावित होते हैं ।

'नई पौध' को रामेसरी अपनी मायके में इकलौती पुत्री के साथ जीवन यापन करती है – ''रामेसरी बड़ी लड़की थी और आज तेरह साल से विधवा थी, उसने बड़ी कोशिश की कि ससुराल में ही जमी रही लेकिन देवरानी और जेठानी ने बेचारी के खिलाफ एक अजीब संयुक्त मोर्चा बना लिया । वह भागकर माँ-बाप की छाया में आ गयी ।''[15]

तत्कालीन परिवेश में खोखा पण्डित जैसे पिता, रामेसरी जैसी बेटियों को पैसे लेकर बेच दिया करते थे, जिसके चलते उनकी जिन्दगी नारकीय हो जाती थी – ''रामेसरी

अपने अभागा पर उतना कभी नहीं रोई, जितना की बहनों की बदनसीबी पर रोती रहती थी..........। अपनी बच्ची के सौन्दर्य पर जहाँ उसे अभिमान था, वही अपने बाप के राक्षसी लोभ पर उसके मन में घृणा ही घृणा थी । कई बार वह सोचती कि बिसेसरी को कनेर की गुठली पीसकर पिला दे । क्या करेगी जीकर बिसेसरी ? ऐसी जिन्दगानी से मौत लाख गुना बेहतर !! मगर माँ का मोह ....।''[16]

इस प्रकार परिवार में खोखा पण्डित जैसे पिता पुत्रियों के लिए बहुत सारी समस्या खड़ा कर जाते हैं और इन पारिवारिक समस्याओं से जुझती नारी संघर्षमयी जीवन व्यतीत करती है। खोखा पण्डित जैसे लोग समाज में अनमेल विवाह कर लड़कियों के जीवन को नरक बना दिया करते हैं । किन्तु जागरूक बिसेसरी और रामेसरी खोखा पण्डित को इसमें सफल नहीं होने देती । रामेसरी पिता की शरण में तो अवश्य है किन्तु माँ भविष्य के प्रति चिन्तित है । पारिवारिकजन जिस नरक में उसे ढकेल देना चाहते हैं किन्तु माँ अपनी बेटी की उसमें गिरने नहीं देती । खोखा पण्डित खीझकर रह जाते हैं और विवाह न होने के चलते क्रोध से घर से निकल पड़ते हैं । इस पारिवारिक समस्या से जूझती नारियों के विषाद भरे चेहरे का वर्णन नागार्जुन इस प्रकार करते हैं – ''बिसेसरी को बुखार चढ़ आया था । रामेसरी सेना शून्य होकर बेटी के पायदाने औंधे मुँह लेटी हुई थी । बच्चे रात देर तक सोए नहीं थे । वे अब तक बेसुध सोए पड़े थे । बड़ी और छोटी बहुएँ अपनी अपनी देहरी पर चोकठ में पीठ टिकाए और कमर टेढी किए बैठी थीं, बाईं हथेली पर बाँया गाल थामें, मझली रसोई वाले घर के ओसारे में झाड़ू दे रही थी, चेहरा उसका भी फिका ही नजर आ रहा था।''[17]

इन पारिवारिक समस्याओं से जूझती नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत भले हो लेकिन वे इससे पूरी तरह कुण्ठा और निराशा का शिकार होती हैं । विकास गति अवरूद्ध हो जाती है, किन्तु नागार्जुन के उपन्यास की नारी पात्र इन परिस्थितियों का डटकर मुकाबला

करती हैं । पारिवारिक समस्याओं से जूझती नारी के अन्तर्द्वन्द्व का चित्र नागार्जुन कुछ इस प्रकार खिंचते हैं – "तरह-तरह के तर्क वितर्क पण्डिताइन के मन को झकझोर रहे थे । रात को खैर तूफान आ ही गया, आज दिन में भी बेचारी से कुछ खाया नहीं गया। पानी ढकोस-ढकोस कर अपने मुँह का स्वाद फीका कर दिया, सो अलग । रात जो पकी थी वह छोटा दुल्हन के बच्चों ने सबेरे खायी ।" पारिवारिक समस्याओं से जूझती नारी विशद् चिन्तन के घेरे में आ जाती है और मानसिक उथल-पुथल उसके मन में बहुत कुछ उमड़-घुमड़कर आता-जाता रहता है – "पण्डिताइन का स्वर दर्द में डूबा हुआ था, चार-पाँच दिन बीत जाने पर भी लगता था, कि बेचारी का कलेजा अब भी उबल रहा है । .... हमारा तो अपना ही करम फूट गया है........।[18]

नारी का यह कण्ठ स्वर पारिवारिक समस्याओं के दर्द से डूबा हुआ है, जिसमें रामेसरी के पिता खोखा पण्डित की विचारधारा से असहमत परिवार कुटुम्बीजन विसेसरी के इस अनमेल विवाह को अन्दर ही अन्दर स्वीकार नहीं करते और तभी बमपाटी के हस्तक्षेप से यह विवाह नहीं हो पाता – और शुरू होता है, परिवार के अन्दर विविध प्रकार के असन्तोष का वातावरण । इस प्रकार की पारिवारिक समस्याओं का उल्लेख नागार्जुन बाबा बटेसरनाथ के माध्यम से गाँव के लम्बे इतिहास के रूप में करते हैं । ग्राम्य परिवेश में परिवार में बेटी के विवाह की समस्या, बच्चों के शिक्षा की समस्या, नारियों के जीवन-व्यवहार की समस्या, विधवाओं के जीवन-यापन की समस्याएँ प्रमुख रूप से उभरकर सामने आई हैं । "बाबा बटेसरनाथ' में हाजत से बाहर आए कुटुम्बीजनों की पारिवारिक समस्याओं का संकेत मात्र ही उपलब्ध है। इनमें नोंक-झोंक के माध्यम से नागार्जुन ने कुछ चित्र स्पष्ट किए हैं।

'वरुण के बेटे' में माधुरी की माँ बिटिया के जीवन-यापन के संदर्भ में दिन रात डूबी रहती है । माधुरी अपना ससुराल छोड़कर पति के बर्बर व्यवहार से उबकर मायके में ही रहती है। इस समस्या से चिन्तित माधुरी की माँ मंगल की माँ के सामने रो पड़ती है इस

पर ढाढस बाँधते हुए मंगल की माँ कहती है – "नाहक मन छोटा करती हो, तुम्हारी बिटिया कोई मामूली लड़की है ? दिल जीतने का जादू जानती है वह तो ?"[19]

इस ढाढस से माधुरी की माँ के आँसू तो बन्द हो जाते हैं, किन्तु इस पारिवारिक समस्या में मन दिन-रात लगा रहता है। माँ होने के उत्तरदायित्व बोध से ग्रसित नारी किसी प्रकार के निर्णय लेने में विविध प्रकार के संशय से जूझती है, किन्तु समस्या के समाधान को ढूँढ़ने में आजकल ही नजर आती है। पारिवारिक परिवेश में बच्चों के झगड़े-झंझटों में बुजुर्गों का अधिकांश समय बीत जाता है। उनके झगड़ों को सुलझाना उन बुजुर्गों के लिए एक समस्या ही है। जिलेबिया-सिलेबिया के इस झगड़े का चित्र खींचते हुए नागार्जुन ने इसे कुछ इस प्रकार दर्शाया है – "सिलेबिया दूबों पर बैठकर चमचमाती पोठी मछलियाँ उलट-पलटकर छ-छाकर देखती रही । कुछ क्षण बाद बोली – "अपनी बहन को तूने अच्छी तरह नहीं देखा है अब तक ! सिर के पीछे वाले बहुत सारे बाल उसके नुचे हैं । ससुर क्या है, लगता है राक्षस ही होगा । .... " "राक्षस की नानी ।" चुप-चाप आकर पीछे से बड़ी बहन जिलेबिया ने उसका एक कान कसकर खींचा, गाल पर चपत लगाकर कहा, "बुढ़िया रानी घर-आँगन की बातें यहाँ उड़ाई जाती हैं ? खबरदार जीभ निकाल लूँगी........!" सिलेबिया ठुनककर उठी और बहन को गालियाँ देने लगी – "राँड़ी ! दगधी ! निरासी ! छुच्छी सइयाँ डाही ! .... उँगलियों में कोढ़ फूटेगी ! हाथ गल-गल के गिरेगा ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ..........." अब जिलेबिया ने छोटी बहन की पीठ पर गदागद पाँच-सात मुक्के जमा दिया ।" छिनाल कहीं की ले अब तो हुआ !!"[20]

अभावों में जिन्दगी व्यतीत करती नारी तनाव ग्रस्त है और उस तनाव के चलते जीवन के विकास के प्रति ध्यान न देकर गृह कलह में लगी हुई नारी यह भूल जाती है कि वहाँ सम्बन्धों के निर्वाह में कुछ त्याग की भी आवश्यकता होती है। पारिवारिक समस्याओं से जूझती माधुरी की माँ माधुरी के कोमल व्यवहार के बावजूद भी उसके प्रति उग्र हो उठती

है– "सन्दूकची से एक अधपुरानी साड़ी निकालकर माँ ने पहनने को कहा तो वह बड़बड़ाने लगी ; छिनाल कहीं की क्या बिगड़ता है । मैं ऐसी ही जाऊँगी ! रानी जी की बातें तो सुने कोई आ के .... लाई है अपने खसम की कमाई में से एक सूत भी ....?

गुस्सा तो माधुरी को भी जोर से आया लेकिन उबाल वह पी गई । ससुराल से भागकर ही तो आई थी, बस आ भर गई थी । पहनावे में हरे फूलों की किनारियों वाली साड़ी मात्र देह के साथ लाई थी । गले में हसली, बाँहों में बाजूबंद, कलाइयों में मरोड़दार कंगन .... पैरों में साटन .... अपने ये गहने उसे प्रिय थे, इन्हें हमेशा पहने रहती । सो, ये भी साथ आ गए थे । कड़े नहीं ला सकी थी, ... अब इस वक्त रोय ही और चिड़चिड़े मिजाज वाली माँ से भला वह क्या बतकुंट्टन बटे ! चुपचाप बेचारी शीशी धोती रही ।"[21]

विविध प्रकार की पारिवारिक समस्याओं का दंश झेलती नारी का सजीव चित्र उभरकर सामने तब आता है, जब माधुरी अपने त्रासद भरे पीछले जीवन में झाँककर देखती है । कुछ ही दिन पहले ससुर के बर्बर व्यवहार से उबकर ससुराल से मायके चली आयी माधुरी । उन पारिवारिक समस्याओं को याद करते हुए सोचती है, जिसमें एक डरपोक पति का चेहरा सामने आ जाता है, जो अपनी पिटती हुई पत्नी को पिता से बचा नहीं पाता । चुल्हाई और मंगल के बीच-बचाव और सलाह मसबरे के बीच माधुरी के मन में कई दृश्य उभरते हैं – "उसके दिमाग में एक युवक मछुए का डरपोक चेहरा नाच उठा .... अपने बाड़म पति का प्रभावहीन मुखड़ा ।......... कुसुम, कक्कड़ का दप्ति मुखमंडल याद आया । लात मारो सालों को उसने कहा था । .... मनुहार से गोली मंगल की आँखें .... गिड़गिड़ाता हुआ चुल्हाई .... नहीं । अब वह कभी उस नशाखोर बुड्ढे की लात बात बर्दाश्त करने नहीं जाएगी .... फिर से शादी कर लेगी किसी दिलेर .... और बगैर मर्द के कोई औरत अकेली जिंदगी नहीं गुजार सकती है क्या .... ?"[22]

पारिवारिक जीवन की समस्या नारियों की जीवन शैली में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन लाता है, जिसके चलते उसके जीवन में उथल-पुथल मच जाती है। कहीं वह समस्या परिवार की आर्थिक विपन्नता को लेकर तो कहीं कुटुम्बीजन के व्यवहार को लेकर । इस तरह के व्यवहार को लेकर 'पारो' नामक उपन्यास की मुख्य नायिका पारो अपनी तो नहीं कुटुम्बीजन के व्यवहार को लेकर माँ के कटु व्यवहार से निराश और थकी हुई है, उसकी माँ अपने पति की मौत का जिम्मेदार अपनी पुत्री अर्थात पारो को ही मानती है । उसे कुलक्षिनी, दुष्टा आदि कहकर गालियों से सम्बोधित करती है । माँ के क्रोध का शिकार पारो इस समस्या से उबरना चाहती है, किन्तु उसकी छटपटाहट को सुनने वाला कोई नहीं है । पारो का अनमेल विवाह कराकर उसकी माँ अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त तो हो जाती है, किन्तु एक भयावह त्रासदी से जूझने के लिए पारो को घुट-घुटकर जीने के लिए छोड़ देती है। बचपन से ही माँ की उपेक्षिता पारो का दृश्य नागार्जुन कुछ इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं-- "क्यों बोझ को बढ़ाए चले जा रहे हैं बिरजू भैया ? एक जन्म में जो किया उसका फल आप देख ही रहे हैं, और अब आप बड़े भाई होकर तब से हाथ जोड़े एक ही पैर से जो खड़े हो सो यह पाप तो सातों जन्मों में भी मुझसे पार नहीं लगेगा, हे भगवान ।[23]

वैधव्य जीवन जीती पारो की माँ पारो के भविष्य को लेकर चिंतित है। तत्कालीन समाज में पारो की माँ की यह त्रासदी उस समाज में प्रचलित विवाह से सम्बन्धित कुप्रथाएँ हैं, जहाँ बेटी को बोझ समझा जाता था और उसे जल्दी से जल्दी घर से बिदा करना ही जैसे-तैसे लक्ष्य था। उसमें भी विधवा माँ के लिए घर में सयानी बेटी का होना उसके लिए परिवार की सबसे बड़ी समस्या थी । उसकी चिंता को नागार्जुन दर्शाते हैं – "पारो को लेकर पीसी कितनी चिंतित रहा करती थी । यह मैं देख आया था, उनकी इच्छा थी कि किसी तरह कहीं लड़की का ठौर ठिकाना अब लग ही जाए, पीसा के मरने के बाद उनकी यह चिंता और बढ़ गयी थी । बात-बात में वह पारो के ऊपर बिगड़ उठती थी, झाड़ू लेकर

मारने दौड़ती थी । मुझे आश्चर्य होता था कि वैसा मीठा पीसी का स्वभाव, यह अब क्या हुआ जा रहा है । इनको बात-बात में खींझ उठती हैं .... अच्छा ही हुआ कि उसकी शादी हो गयी दूल्हे की तीसरी बार शादी हो रही थी, तो उससे क्या ? घर तो खुशहाल मिला ।''[24]

जिम्मेदारियों के प्रति सजग नारी माँ के रूप में बेटी की दूसरे के घर बिदा करने के लिए तमाम तैयारियाँ करती है। पारो की बिदाई के सन्दर्भ में पारो के मामा का लड़का बिरजू सोचता है, बिते हुए क्षण के बारे में कि ''पीसी के हाथ पर यहीं कोई डेढ़ हजार रुपए थे । संतान भी तो दूसरी नहीं, तब बचाती भी किसके लिए ? दामाद की बिदाई उन्होंने अपनी शक्ति के बाहर जाकर की थी । वे लोग ऐसे बदनियत की मुसम्मात वाली बात देखकर एकदम ही ढील दे दी । सगुन जो आया था उसमें साड़ी पटुए की भेजी थी । एकदम कमजोर पीसी ने अपने पैसों से तीस रुपए की बनारसी साड़ी मँगवाकर बेटी को पहनाई । यश लेकिन चौधरी जी को मिला। कुछ भी हो दामाद के लिए औरतों के मन में जो कमजोरी होती है, वह सभी समझते हैं ।''[25]

तत्कालीन समाज में सगे सम्बन्धियों के बीच यह समस्या जहाँ बेटी दामाद के सम्बन्धों को लेकर ही दोनों परिवारों के बीच मनमुटाव उत्पन्न करता था । वर पक्ष के सभी व्यक्ति लेन-देन के बारे में हमेशा अप्रसन्न ही रहते और वधू पक्ष से मिलने वाले दहेज को लेकर उनमें असन्तोष व्याप्त रहता । वर पच्चीस का हो या पच्चास का, पिअक्कड़ हो या व्यभिचारी, दो या चार शादियाँ हुई हों या हो विधुर, बहू के रूप में लड़की शीलवान, आचारवान और कर्मठ होनी चाहिए । इन्हीं विरोधाभासों के बीच दोनों परिवार का अन्तर्द्वन्द्व जारी होता और व्यक्तिगत रूप से इस पारिवारिक समस्या का शिकार स्वयं उस लाचार लड़की को होना पड़ता था । पारो को गुण सिखाने में लगी माँ । उसके द्वारा बनाए गए भोजन के बारे में बिरजू से पूछती है – ''सब्जियाँ कैसी बनी हैं, नूनू ? बहुत अच्छी - मुँह का

निवाला जल्दी न निगलकर मैंने जबाव दिया तो पीसी बोली इस लड़की को खाना बनाना जल्दी ही आ गया, भरोसा नहीं था, समधिन का बड़ा जोर था कि बैशाख में ही गौना हो जाए, मगर मैं ही अड़ गयी, ऐसा कैसे होगा ? मेरी क्या दूसरी तीसरी बेटी है ? न बड़ सावित्री पूजते देखूँगी और न मधु श्रावणी को बेटी की बिदाई कर दूँ, जो यह सब नहीं होने का, तुम ही कहो, किस तरह बैशाख में विदाई कर देती । रसोई में गड़बड़ी करती तो मेरी ही न निन्दा होतीं ।''[26]

अभावों में जिन्दगी जीती नारियों के चित्र संकेत नागार्जुन के उपन्यासों में भारी मात्रा में उपलब्ध हैं । कथा भूमि के तत्कालीन परिवेश में बहु विवाह प्रथा परिवार के सारे संतोष और शान्ति को छिन्न-भिन्न कर देता है और गृह-कलह उस परिवार की सबसे बड़ी समस्या बन पड़ती । पारो में लूचझा किसी छोटी बात पर अपनी बीबीयों को पिटने लगता है, और वे खूब चिघाड़-चिघाड़ कर रोने लगती हैं, उनकी चिल्लाहट से पूरा केरबनिया गाँव मुखरित हो उठता है। चिल्लाहट से सभी लोग जुट पड़ते हैं – ''मर गई ऐ मामी मर गई ऐ मामी, इतना मेरे सुनने में भी आया । पारो से पूछा कि यह क्या है ?

उसने कहा - दोनों सौत में इसी तरह ठनती रहती है और बूढ़ा खुद भी खूब है। बेटे की लालसा से दूसरी शादी की, बेटा तो हुआ नहीं दूसरी पत्नी से भी दो लड़कियाँ ही हुई हैं। वह अच्छे कुल के ब्राह्मण भलमानस की बेटी तो यह निम्न कुल के ब्राह्मण जयवार की । बिरजू भैया, गाँव चिना गया है। लूच भाई को क्रोध होता है तो इसी तरह दोनों को पीट देते हैं । माँ जाकर समझा-बुझा आती है, इसी से बुढ़ऊ को फिर खाना भी मिलता है, नहीं तो ....।''[27]

बहु विवाह से उत्पन्न इन पारिवारिक समस्याओं में नारी समाज के प्रति किया गया पुरुष का क्रूर व्यवहार तत्कालीन समाज के पुरुष वर्चस्ववादी समाज का उल्लेख तो करता ही है, साथ ही साथ सौत के झगड़े से उत्पन्न गृह-कलह की एक पारिवारिक समस्या के रूप

में खड़ा किया है। यह समस्या एक या दो दिन की नहीं बल्कि परिवार में जीने वाले व्यक्तियों के लिए जीवन पर्यन्त पारिवारिक समस्या के रूप में उलझाए रखती है।

'दुखमोचन' की मामी अप्पी की माँ की बरखी की तैयारी में लगी है और तैयारियों के मध्य अपनी व्यस्तता को बताते हुए एक समस्या सामने रखती है – ''अप्पी की माँ की बरखी के दस-बारह रोज रह गए हैं, सिवाय चावल और दाल के और कुछ भी तो नहीं है इस घर के अन्दर .... ।''[28] गृह कलह जैसी पारिवारिक समस्या 'कुम्भीपाक' में महीम और उम्मी की माँ के बीच हुए तकरार से उभरकर सामने आता है । स्टोप में किरासन तेल डालते वक्त थोड़ा सा तेल नीचे गिराकर बैठ जाता है, जिसे देखते ही महीम उम्मी की माँ पर बरस पड़ता है – ''कैसी गधी हो ; फर्श को चौपर कर दिया, हजार बार कहा कि सम्भालकर स्टोप भरा करो, मगर तुम हो कि कानों में रूई ठूसे बैठी हो .... ।'' मामी आहिस्ता से बोली, ''फिनाईल से धो दूँगी फर्श।''

महीम का गुस्सा बेकाबू हो गया, ''फिनाईल की नानी हटो सामने से !

खुदा बचाए ऐसी फुहड़ औरत से ....''[29]

'कुम्भीपाक' की यह पारिवारिक समस्या नारी जीवन के विशद् त्रासद स्वरूप को अपने में समेटे हुए है। जिनमें रूपाजीवा की जीवन त्रासदी का अनूठा उदाहरण मिलता है। जिनमें सम्बन्धों का विकृत रूप नारी को तो प्रभावित करता ही है, साथ ही साथ एक नई विषम पारिवारिक समस्या को लेकर पूरे जीवन को अस्त-व्यस्त कर देता है । अपने ही दामाद और बेटी के सम्बन्धों के बीच उम्मी की माँ का यह प्रवेश एक वृहद् समस्या बन जाती है – ''महिम ने सूजागंज में भाड़े पर मकान लिया है लेकिन उम्मी अकेले कैसे रहेगी? एक दिन के लिए भी कभी अकेली रही नहीं । आज तक ! .... मैं साथ रहने लगी हूँ .... महिम, उम्मी और मैं .... उम्मी का सुहाग मेरे धैर्य की चुनौती दे रहा है । रात को बगल के कमरे में वे दोनों जागते होते हैं, मैं चूड़ियों की खनखनाहट सुनती हूँ और

मेरे अंदर की प्यासी चुड़ैल का जंगली नाच शुरू हो जाता है .... मैं घात लगाए रहती हूँ । उम्मी के सोते ही महिम को खींच लाती हूँ अपने बिस्तरे पर .... फिर क्या होता है ? वासना की विकट आँच में झुलसी हुई राक्षसी उस मर्द को मथने लगी है .... मथकर छोड़ देती है। .... अतृप्त लालसा की यह तांडव लीला हर रात चलती है। एक रात उम्मी यह सब देख लेती है, माँ के प्रति बेटी की रग-रग में घृणा का जहर फैल जाता है और अगले ही दिन वह पिता के पास वापस आती है .... महिम के लिए जो भी कुछ स्नेह था वह पूरी तरह फट चुका होता है ।''[30]

सम्बन्धों के बीच आई इस तरह की समस्याओं का प्रभाव टूटते परिवार और बिछुड़ते व्यक्ति की त्रासदी का उल्लेख तो करती ही हैं, साथ-साथ समाज में व्याप्त विद्रुपताओं को भी दिखाती हैं । पारिवारिक जीवन में उग्रतारा की उगनी भी अनमें विवाह का शिकार हो विभिन्न पारिवारिक समस्याओं को झेलती है और बनते बिगड़ते बम्बन्धों के मध्य भभीखन सिंह जैसे समस्यात्मक व्यक्ति को झेलती है । 'उग्रतारा' में पारिवारिक समस्याओं का रूप अनमेल विवाह के जीवन सम्बन्ध से उपजी मानसिक अन्तर्द्वन्द्वता का है । 'उग्रतारा' का यह मानसिक अन्तर्द्वन्द्व परिवार में जीने वाली कम उम्र नारी का अधिक उम्र वाले पति के कारण है, जो मनोवैज्ञानिक रूप से एक पारिवारिक समस्या ही है। इस मानसिक अन्तर्द्वन्द्वता का उदाहरण दृष्टव्य है – ''सिपाही जी सवेरे मोटा दातुन चबाते-चबाते उगनी को चार बातें जरूर सुना देंगे । वह सब सुन लेगी, एक बार भी जुबान नहीं खोलेगी । इत्मिनान से परावठें पोती रहेगी, आलू तलती रहेगी ....।''[31]

'उग्रतारा' के इस मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से निकलने के बाद 'जमनिया के बाबा' में आश्रम व्यवस्था के मध्य जीवन व्यतीत करती तीन दासियों के जीवन चित्र उपस्थित हैं । किन्तु वहाँ कोई पारिवारिक परिवेश उभरकर सामने नहीं आता । लक्ष्मी दासी पुत्र अवश्य उत्पन्न करती है, जिसका 'जमनिया का बाबा' नर बलि कर देता है, किन्तु वहाँ भी कोई

पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति विशेष पहलू उभरकर सामने नहीं आते । वैसे तो आश्रम व्यवस्था के तहत अगर आश्रम परिवार की कल्पना करें तो उसमें अवश्य ही आश्रम के सारे लोग परिवार जन तो होंगे किन्तु वहाँ परिवार से सम्बन्धित स्निग्ध सम्बन्धों का कोई चित्र सामने नहीं आता ।

इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यासों में पारिवारिक समस्या का विस्तृत चित्रण है । पारिवारिक समस्याओं में चित्रित नारी जीवन कहीं-कहीं घुटती जिंदगी से बाहर निकलने के लिए छटपटाती नजर आती है, तो कहीं पुरुष वर्चस्व से लड़ती हुई परिवार में अपने अधिकारों के प्रति माँग करती है, वैसे इन चेतनागत बिन्दुओं का एक आंशिक रूप ही प्राप्त होता है जिसमें नारी की पारिवारिक समस्याओं में संघर्ष कथा का चित्रण है।

5. ख. सामाजिक समस्याएँ :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और इस समाज के अन्तर्गत् आने वाले समस्त क्रिया-कलापों में मनुष्य की भागीदारी होती है । समाज की प्राचीनता जटिल समस्याओं के साथ उपस्थित रहती है। गम्भीर समस्याओं से जूझने वाला मनुष्य होता है, जिसमें नर-नारी समान रूप से सहभागी होते हैं । वैसे तो हमारी प्राचीन संस्कृति की जीवन धाराएँ कुछ दूसरे तरह की थी और उसमें जीने वाली नारियों की स्थिति भी दूसरे प्रकार की थी । लेकिन उस समाज की समस्या थी कि नारियों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखता आया था । किन्तु मध्यकाल के इतिहास के बाद और आज की स्थिति में नारियों का रूप बदला है और पुरुष वर्चस्व वादिता का शिकार होकर नारी का जीवन परिदृश्य भी परिवर्तित हुआ है। नारी समाज की विभिन्न गतिविधियों में अपनी अहम भूमिका निभाती है, जिसके अन्तर्गत् उसे तमाम समस्याओं से जुझना पड़ता है । समाज के विभिन्न वर्ग स्तर के अनुसार नारियों की समस्या भी विभिन्न वर्ग स्तर की है । किन्तु नारी विशेष की समस्या का जहाँ रूप सामने आता है वहाँ सारी समस्याएँ हर वर्ग की नारियों के लिए एक समान हैं ।

प्राचीन भारतीय संस्कृति के बीच स्त्रियों का स्थान समाज में ऊँचा था और उन्हें आज के तरह की सामाजिक समस्याओं से जूझने की आवश्यकता नहीं थी । मध्यकाल में इस्लाम धर्म के आगमन के बाद नारियों की स्थिति में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ और उनके जीवन स्तर में सामाजिकता के नाम पर भारी परिवर्तन हुए, जिसके दौरान पर्दा प्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह आदि की कुप्रथाएँ तो समाज में व्याप्त ही हुईं । कम उम्र की लड़कियों का विवाह अधिक उम्र के पुरुष से होने से विधवा विवाह की त्रासदी भी उभरकर सामने आयी । जिसका समाज हमेशा विरोध करता रहा। इन समस्याओं के साथ-साथ विभिन्न सामाजिक समस्याओं से जूझती रही । इस शोषण का शिकार निम्न वर्ग की नारियाँ और मध्य वर्ग की नारियाँ और उसके साथ-साथ उच्च वर्ग की नारियाँ भी थीं । विविध सामाजिक समस्याओं के मध्य नारी के आधुनिक रूप स्वतंत्र भारत के बाद कुछ परिवर्तित होते नजर आए जिसमें नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग हुई और उस सजगता से सामाजिक समस्याओं से लड़ने की शक्ति भी मिली ।

'रतिनाथ की चाची' में समाज के अन्दर व्याप्त विधवाओं की समस्या सबसे जटिल समस्या है। जिसमें वैधव्य जीवन-यापन करती गौरी इस समस्या का शिकार है । जिसके वैधव्य जीवन की फिसलन की दम्मो फूफी जैसी नारी चरित्र समाज के सामने एक बहुत बड़े बितंडवाद के रूप में रखता है और पूरे समाज को महापापिनी बताकर गौरी को तिरस्कार की दृष्टि से देखती है जबकि वह स्वयं नारी होकर विधवा भी है जिसके सारे काले कारनामें को पूरा गाँव जानता है, किन्तु वह अपना सब कुछ भूलकर गौरी के जीवन में जहर घोल देती है, उसके उपहास को न समझकर एक स्नेह सिक्त वाणी सुनकर गौरी दम्मो फूफी को अपना सबसे बड़ा हितैषी समझने लगती है – "कृतज्ञता के मारे उमानाथ की माँ का मन करता था कि दमयन्ती के पैरों पर अपना सिर रख दे और सुबक-सुबक कर कुछ देर रोए । यह चतुर बुढ़िया उस बेचारी को ममता का अवतार प्रतीत होती है । वह

विधवा है, अकिंचन है, उसे गर्भ रह गया है। कहीं वह मुँह दिखाने के काबिल नहीं रही । पेड़-पौधे, पशु-पक्षी सभी गुप-चुप उमानाथ की माँ के इस महान कलंक का मानो कीर्तन कर रहे हैं । ऐसी स्थिति में यदि दम्मों फूफी जैसी संभ्रांत वृद्धा उसे सांत्वना देने आई है तो इससे बढ़कर व्यावहारिक मानवता भला और क्या होगी ? मगर वहाँ तो बीसियों बैठी थीं, दम्मो फूफी अकेले रहती तब न ! उमानाथ की माँ को साहस नहीं हुआ कि फूफी के पैरों पर जाये ! लज्जा भी निगोड़ी कैसी होती है कि उसका अंचल घोर से घोर पापी के लिए भी सुलभ हैं ।''[32]

गौरी जैसी नारी पात्र के माध्यम से नागार्जुन सामाजिक समस्याओं के रूप में विधवा की जटिल समस्या को सामने लाया । तत्कालीन परिवेश में इसकी सारी जिम्मेदारी अनमेल विवाह से उपजी समस्या है। मुख्य रूप से अनमेल विवाह ही इसके मूल में व्याप्त है। अनमेल विवाह उपन्यासकार के कथा भूमि की सामाजिक कुप्रथा के रूप में प्रसिद्ध है। मिथिला की उस धरती पर मैथिल ब्राह्मण कुलीनता के नाम पर अपनी कम उम्र की लड़कियों का विवाह पैतालीस से साठ वर्ष के बूढ़ों के साथ कर देते हैं । जिससे उनका परिणय जीवन घोर त्रासदी का शिकार बन जाता है और नारी ही सामाजिक समस्या का शिकार होती है ।

व्यभिचार और विधवाओं की समस्या इसी प्रथा की देन थी । 'रतिनाथ की चाची' की गौरी इसी प्रथा की बेदी पर चढ़ी थी । गौरी के पिता चुम्मन झा ने कुलीनता के नाम पर गौरी का विवाह शुभंकरपुर के वैद्यनाथ झा से कर दिया था, जो दमे के रोगी और सुस्त स्वभाव के थे । भरी जवानी में ही उसे वैधव्य वरण करना पड़ गया था । उधर एक ओर उम्र की अतृप्त प्यास और दूसरी ओर देवर जयनाथ की उफनती काम-वासना । परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए था । गौरी का पूरा भावी जीवन लांछना, प्रताड़ना और अवमानना से भर गया । समाज की लांछना, परिवार को प्रताड़ना और बेटे की अवमानना का दंश

जीवन भर भोगना ही उसका भाग्य बन गया ।

'रतिनाथ की चाची' की दमयन्ती भी इसी प्रकार चढ़ती जवानी में ही विधवा होकर मायके आ गई थी, और वैधव्य की खाता बताते हुए रंग रेलियों में डूब गई थी । लेकिन जिन्दगी के उस खतरनाक मोड़ से आगे निकल आने पर समाज के 'धरम-करम' का ठेका लेकर रतिनाथ की चाची को अपेन कुकर्म की सजा सुना रही थी । ऐसे ही इन्द्रमणि ने अपनी लड़कियों - शकुन्तला और जनक किशोरी की शादी रुपये लेकर की थी । इसके पहले एक के पति की सात और दूसरे के पति की दस शादियाँ हुई थीं और सब जीवित थीं। जनक किशोरी और शकुन्तला को नागार्जुन ने नाम मात्र की सधवा बताया है। एक का गुप्त सम्बन्ध अपने चचेरे भाई से और दूसरी का कुल्ली राउत के बेटे से हो गया था ।

इस उपन्यास में चन्द्रमुखी और सुशीला नामक दो और विधवाओं का उल्लेख हुआ है। चन्द्रमुखी सुमित्रा की देवरानी और युवती विधवा है जो वैधव्य के अभिशाप को अँगूठा दिखाती हुई तारूण्य के भावोल्लासों का पूरा भोग करती है । अपनी भाभी गौरी के जीवन को लांछित और अपमानित करने वाले जयनाथ का इससे भाई-बहन का सम्बन्ध जुड़ता है – "कहने के लिए एक दूसरे के लिए भाई-बहन थे, उनका आपस के सम्पर्क का क्षण दो संतप्त प्राणियों के चिरवांछित मिलन का मधु पर्व ही था ।"[33] एक और ऐसी ही तरुणी विधवा है सुशीला, जो अपने दुर्भाग्यपूर्ण जीवन के शेष दिन बिताने के लिए मायके आ जाती है, लेकिन यहाँ भी गुजर होते न देख काशी चली जाती है । वहाँ पहले एक घटिया महाराज के पल्ले पड़ी और फिर एक दुकानदार खत्री के घर की मलिकाइन बनी है। इन विधवाओं में केवल सुमित्रा ही है जो वैधव्य को पूरी निष्ठा के साथ वरण ही नहीं करती, पूरी निष्ठा के साथ तदवत आचरण भी करती है ।

'बलचनमा' में निम्न वर्गीय जीवन की सामाजिक समस्याएँ उनके जीवन में घोर अंधकार की तरह व्याप्त हैं । बलचनमा की दादी बलचनमा को लेकर घर जाती है और

मलिकाइन के पैर पकड़ लेती है और कहती है – "आज से आप ही इस अभागे की माँ-बाप हुई गिरहथनी । आपका जुठन खाकर इसका भाग चमकेगा।" स्मृति पटल पर ये बातें आते ही बलचनमा सोचता है, चौदह साल की उम्र थी । यों खास काम मेरा भैंस चराना था फिर भी और कई काम थे जैसे कि बच्चे को खिलाना, पानी भरना, बाहर बैठक में झाड़ू लगाना, दुकान से नून-तेल, मशाला लाना और मलिकाइन के पैर दबाना ।"[34]

अन्न की जुगाड़ में बेगारी करता यह अन्तयज वर्ग इस समाज में अन्न के लिए जीवन भर संघर्ष करता रहता है। बलचनमा की दादी इसी अन्न की तलाश में बलचनमा को लेकर मलिकाइन के पास जाती है। बलचनमा की माँ जमीनदारिन के वहाँ काम करती है, अपनी बेटी रेवनी को साथ लेकर जाती है, किन्तु वहाँ समाज के अराजक तत्वों के रूप में विख्यात जमीनदारों के चंगुल में फँसकर किसी तरह इज्जत बचाकर भागने में सफल होती है । नारियों की इस सामाजिक विद्रुपता की तस्वीर कुछ ऐसे है – "या तो तुम अपनी बहन को उस जालिम के हवाले कर दो या मुसीबतों का पहाड़ खुशी-खुशी सिर पर उठा लो, दो ही बातें थीं, तीसरा रास्ता नहीं था, मैंने मन ही मन अपनी ओर से पक्का कर लिया कि कैद काटूँगा, फाँसी चढूँगा गाँव से उजड़ जाऊँगा मगर इस शैतान के आगे सपने में भी सिर नहीं झुकाऊँगा । बेसक मैं गरीब हूँ, तेरे पास अपार सम्पदा है, कुल है, खानदान है, जिला-जबार में मान है और मेरे पास कुछ नहीं है, मगर आखिरी दम तक मैं तेरे खिलाफ डटा रहूँगा। अपनी सारी ताकत को तेरे विरोध में लगा दूँगा, माँ और बहन को जहर दे दूँगा लेकिन उन्हें तू अपनी रखैल बनाने का सपना कभी पूरा न कर सकेगा ।"[35]

उच्च वर्गीय समाज में निम्न वर्गीय महिलाओं के प्रति यह कुदृष्टि मानव मस्तिष्क को झकझोड़र कर रख देता है । किन्तु उच्च वर्ग के धन वैभव के सामने निम्न वर्गीय नारी पात्र रेवनी अपनी इज्जत के साथ कोई समझौता नहीं करती। निम्न वर्गीय समाज में अन्ध विश्वास की समस्या सबसे बड़ी समस्या है, जिसके चलते समाज में उनका आर्थिक और

शारीरिक शोषण होता है । खबासिन नामक नौकरानी का भूत के नाम पर बकरा माँगना और पुनः दामो ठाकुर के आने के बाद झाड़-फूँक के बहाने किवाड़ भिड़काकर भूत झाड़ने की इस प्रथा में उसका शारीरिक शोषण करना नारी समाज की सबसे बड़ी समस्या के रूप में दृष्टिगोचर है। लेकिन लाख शोषण के बावजूद भी निम्न वर्गीय नारी पात्रों में नमक के प्रति विश्वास है और नमक हरामी से डरती हैं । वह कहती है – "कि पानी में रहकर मगर से बैर । जिन लोगों का जूठन खाकर तू बड़ा हुआ है उन्हीं के बारे में ऐसी-ऐसी बात सोचता है अधरम होगा रे बलचनमा - अधरम । गोसैयाँ नाराज हो जायेंगे, शहर जाकर यही इल्म सीख आया है। बूढ़े-पुराने भी तो तेरे इन्हीं लोगों का जूठन खाकर फेरन फारन पहन ओढ़कर अपनी जिन्दगी पूरे कर गए, इतना उडात मत बन बेटा ।"[36]

इतना कुछ होने के बावजूद भी रेवनी की प्रतिष्ठा पर आँच आने पर भी जमीनदारों के प्रति बलचनमा की माँ की यह अवधारणा निम्न वर्गीय समाज में नारी के दब्बूपन का उदाहरण है। निम्न वर्गीय नारी के उत्थान में यह दब्बूपन सबसे बड़ी सामाजिक समस्या के रूप में है। समाज में उच्चवर्गीय व्यक्तियों की मानसिक विकृति और व्यभिचार में लिप्त दृष्टि का वर्णन करते हुए नागार्जुन ने बलचनमा को सोचते हुए दिखाया है– "ओसारे पर बैठकर रेवनी सिसक रही थी .... नजदीक आकर मालिक ने रेवनी से कहा .... पगली कहीं कि ! आखिर हुआ है क्या तुझे ? मैंने तो यों ही जरा छू दिया था और तू करन पिसाची खेलने लगी । तेरी जितनी उम्र में ही तेरी माँ का गौना हुआ था और इसी तरह पचासों बार मैंने उसका हाथ पकड़ा होगा ।"[37]

'बलचनमा' में नारी की यह सामाजिक समस्या नारी जीवन की प्रमुख समस्यओं में से एक है । निम्नवर्गीय नारी पात्र नागार्जुन के उपन्यासों में अन्न एकत्रित करने की दोड़ में श्रम कर रही है । शारीरिक श्रम के साथ उच्च वर्ग की विकृत मानसिकता और वासना की शिकार होती हैं । जिनके खेतों में वे काम करती हैं, उनकी लोलुप दृष्टि हमेशा इनके

इर्द-गिर्द मडराती रहती है इस प्रकार इन भ्रष्ट व्यक्तियों के व्यभिचार के विरूद्ध लड़ती नारी के लिए अन्न-वस्त्र की समस्या तो है ही अपनी प्रतिष्ठा को बचाए रखना विकट समस्या है।

'नई पौध' के नारी पात्र के जीवन की सबसे बड़ी सामाजिक समस्या अनमेल विवाह जैसी कुप्रथा है। नागार्जुन के उपन्यासों में ऐसे उदाहरण बहुत सारी जगह प्राप्त होते हैं। अनमेल विवाह की भयंकर त्रासदी का परिणाम नारियों का वैधव्य जीवन होता था, जो उनके जीवन को नारकीय बना देता था। 'नई पौध' की अनमेल विवाह जैसी सामाजिक समस्याओं का कारण आर्थिक सम्पन्नता और कुलीनता की तलाश में झूठी मान-मर्यादा के चक्कर में पड़कर सम्पन्न माता-पिता के पुत्रियों की शादी महा दरिद्र और साठ वर्षीय बुड्ढे से कर दी जाती थी और यह कुलीनता दरिद्रता के घोर नारकीय जीवन में दुख का महासागर लेकर उमड़ पड़ती थी ।

'नई पौध' की मुख्य नायिका बिसेसरी का नाना अपनी सभी बेटियों को धन लेकर बेच दिया था – 'महेसरी से उन्हें 1100 रुपये मिले थे । भुवनेसरी से 900 रुपये मिले थे। गुनेसरी से 750 रुपये मिले थे । गुंजेसरी से 1000 रुपये मिले थे। वानेसरी से 700 रुपये मिले थे और धनेसरी से 900 रुपये मिले थे । और अब विसेसरी का नम्बर था । फसल तैयार खड़ी थी, कटने भर का बिलम्ब था ।''[38]

इस तरह की धन लोलुपता में समाज के ये व्यक्ति अपने पुरुष वर्चस्व में अन्धे होकर अनमेल विवाह को समाज की सबसे बड़ी समस्या के रूप में खड़ा करते हैं, जिसका परिणाम वैधव्य जीवन की त्रासदी है – ''माँ-बेटी की ओर अर्थ पूर्ण दृष्टि से देखने लगी । अनमेल विवाह के भयंकर परिणामों की कल्पना से उसकी रग-रग दहक उठी .... बिसेसरी बेखबर नहीं थी, उसे अच्छी तरह मालूम था कि नाना आज रात एक कसाई को ला रहे हैं । धूम-धाम से अपनी नतिनी का जिवह कराएँगे । .... जबसे उसने बूढ़े दुल्हे की बात सुनी है, तब से उसकी कलेजी भून रही है ।''[39]

सामाजिक समस्याओं के प्रति उपन्यासकार की दृष्टि वेलौस दृश्य उपस्थित करने से नहीं चूकती । पन्द्रह वर्षीय बिसेसरी के विवाह के लिए साठ वर्ष के दुल्हे को देखकर माहेश्वर दुल्हे के भांजे को सम्बोधित करता है – "आप तो सुना है, पढ़े-लिखे हैं । क्यों न अपने मामा को समझाते हैं ? साठ साल की उमर पाँच-पाँच जबान बेटों के बाप ..... छी, छी, छी ?"[40]

सामाजिक समस्याओं में तत्कालीन समाज की सबसे ज्वलन्त समस्या बेटा-बेटी के बीच अन्तर महसूस करना था । बम-पाटी के सहयोग से बिसेसरी का विवाह रूक जाता है और वह घर से बाहर निकलती है तो – "उतनी बड़ी दुर्घटना के तीन ही महीने बाद टोला-मुहल्ला में कुदान करने लगी थी ? और कुदान भला क्या खाकर करती बेचारी । दरभंगा की महारानी को कोख से तो नहीं पैदा हुई थी ; वह या कि हुई थी ? नहीं ; बिसेसरी बेचारी एक गरीब घर की पितृहीन लड़की थी, जिसे निठुर गोतियों ने अपनी विरासत से महरूम करके दूर-बहुत दूर खदेड़ दिया था । बदनसीब नाना-नानी की दरिद्रता के दहकते हुए अग्नि कुण्ड में ठकेल दिया था।"[41]

इस तरह के लड़के-लड़की के भेद-भाव से चिढ़कर बलचनमा भी कहता है – "हमारे यहाँ बड़ी जात वालों में माँ-बाप के दिल लड़को के लिए और होते हैं और लड़कियों के लिए और । घर-गृहस्थी, जमीन-जायदाद, माल-जाल, रुपया-पैसा पैसा-कौड़ी, लत्ता-कपड़ा, दौलत का चाहे अम्बार लगा हो मगर छि बेटी के लिए उस ओर निगाह उठाना भी गुनाह समझा जाता है। पढ़ाई-लिखाई, इलिम-विद्या सब कुछ लड़की के भाग में, लड़की जब तक बिना ब्याही रही खाएगी-पिएगी, थोड़ा बहुत सौक सिंगार करेगी बस ।"[42]

मुख्यतः ये सारी सामाजिक समस्याएँ पुरुष वर्चस्ववादी और सामन्ती विचारधाराओं के चलते थीं । पुरुष साठ वर्ष की अवस्था तक पन्द्रह वर्ष की किशोरियों से दसियों विवाह कर सकते थे । लेकिन तरुण विधवा को यह सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं था । इस तरह

अगर देखा जाये नागार्जुन के उपन्यासों में पुरुष वर्ग का यह अपराध क्षम्य था और महिलाओं का अपराध पुरुष वर्ग के लिए नगण्य घटना होने के बावजूद असह्य और अक्षम्य था ।

नई पौध की कान्ता पुरुष वर्ग के सामने अनमेल विवाह की सामाजिक समस्या के विरूद्ध ललकार उठती है – "मगर मैं अब तक कँवारी हूँ । दुल्हा होने के लिए कोई राजी नहीं होता .... तुम लोग एक बुड्ढे को ले आए थे, छोकरों ने उस अहमक को खेदड़ दिया, अब वह घूम-घूमकर समूची दुनिया में कहता फिर रहा है – मुखिया की बेटी की सीत में सिन्दूर तो मैं भर आया अब गौना हो चाहे नहीं हो .... जहाँ कहीं कोई मुझसे ब्याह करने को तैयार होता है, यह बुड्ढा जाकर उसे रोक देता है । एक-दो नहीं चार-चार आदमी बुड्ढे के बहकावे में आ चुके हैं । बाबा मैं जिन्दगी भर अनब्याही रहूँगी।"[43] इस प्रकार 'नई पौध' की सामाजिक समस्या से जूझती नारी कहीं अनमेल विवाह से जूझती है, तो कहीं वैधव्य जीवन के असह्य एवं कष्टकारी त्रासदपूर्ण उपेक्षित जीवन से।

'बाबा बटेसरनाथ' का सम्पूर्ण ग्रामीण ऐतिहासिक वृत्त सामाजिक समस्याओं की त्रासदी पर ही आधारित है । जिसमें 'बाबा बटेसरनाथ' के माध्यम से डेढ़ सौ वर्षों के इतिहास में नारी जीवन की सामाजिक समस्याओं का अन्तर्ग्राही वर्णन किया है। सारी घटनाओं के अन्तः आधार में नारी है । इसमें सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित छुआ-छूत, धार्मिक ढोंग-ढकोसले, अन्धविश्वास, पारिवारिक रूढ़ियाँ और सामन्तवादी वर्चस्व से सम्बन्धित कुचक्रों में फँसी नारी के जीवन की सामाजिक समस्याओं को उठाया गया है। समाज में त्रासदियों से लड़ने की व्यवस्था नहीं, अपातकाल में बेमौत मारे जाने वालों की संख्या भी कम नहीं। 'बाबा बटेसरनाथ' जय किसुन से कहता है– "तेरी दादी उसी बाढ़ के बाद जो बीमार पड़ी, सो फिर कभी नहीं उठी, पेट की पिल्हीं काफी बढ़ गयी, बदन में लहू बूँद भर भी रह नहीं गया और अगहन में आकर उसने दम तोड़ दिया । देहातों में इंजेक्शन-फिंजेक्शन तो तब चला नहीं था बेटा ! हाँ लहेरिया सराय में एक अस्पताल सरकार

की तरफ से खुल गया था, लेकिन पण्डितों की कृपा से कोई आदमी यहाँ का ऐसा नहीं था जो अंग्रेजी दवा का नाम भी लेता । सभी एकमत थे कि शहरों के अन्दर यह जो अस्पताल खुल रहे हैं, वे हिन्दुओं को भ्रष्ट करने के खिसतानी कारखाने हैं .... गोमांस का अर्क, सुअर का लहू, बिसठा का सत, आदमी की खोपड़ी का गूदा- बिलायत से दवाएँ तैयार होकर आती हैं .... जोरों की अफवाहें फैली हुई थीं डाक्टरी दवाओं के खिलाफ ।''[44]

ऐसी झूठी अफवाहों के चक्कर में पड़कर समाज के अन्दर व्याप्त अशिक्षा का संकेत इन सामाजिक समस्याओं के रूप में उभरकर सामने आता और जिस पर विश्वास न करने वाले अपनी जान गँवाते रहते । जैसे की अस्पताल की अफवाहों से वहाँ इलाज न कराए जाने के चलते जयकिसुन की दादी का देहान्त हो जाता है ।

अन्धविश्वास और रूढ़ियों के या विधवा विवाह की समस्याओं के अलावा विविध प्रकार की सामाजिक समस्याएँ थीं । नारी जीवन के प्रेम प्रपंचों में उभरकर सामने आती हैं । 'वरुण के बेटे' में माधुरी और मंगल का प्रेम-प्रपंच कुछ ऐसी ही सामाजिक समस्याओं को सामने लेकर उपस्थित होता है जिसमें कई परिवारों के टूटने का संकेत निहित है किन्तु माधुरी की जागृत चेतना इस वक्तव्य में उभकर यथार्थ को स्पष्ट करती है – ''अपने मुँह पर से मंगल की हथेली परे करके माधुरी ने कहा, 'देखो मंगल, अब हम छोकरा-छोकरी नहीं रहे । धूल-मिट्टी के बचकाने खेल काफी खेल चुके । सयाने समझकर माँ-बाप और सास-ससुर ने तुम पर जो जिम्मेदारी सौंपी है, उससे जी चुराना कायरता होगी। उन्हें अपनी घर वाली के प्रति वफादार होना है, मुझे अपने घर वाले के प्रति, गाँव-गँवई के हम सीधे-सादे लोग ठहरे, हमारा प्रेम नगर समाज से या संसार के बाहर आबाद हुआ है ? सुनती हूँ बड़े आदमी जब और कामों से उब उठते हैं तो दिल के टुकड़े इधर-उधर फेंका करते हैं और दसियों घर बर्बाद कर छोड़े हैं । मैं तुम्हारा घर बर्बाद करना नहीं चाहती

मंगल ! मैं नहीं चाहती कि एक औरत की सिन्दूरी माँग पर कालिख पोतती रहूँ ।"[45] इस प्रकार जागरूक माधुरी नारी चेतना की परिचायक बनकर दो घरों को टूटने से बचा तो लेती है साथ ही जटिल प्रेम-प्रपंच की सामाजिक समस्या का सरल समाधान भी ढूँढ निकाला ।

नागार्जुन ने इन सारी समस्याओं के प्रति अपनी पैनी दृष्टि का मजबूत उदाहरण प्रस्तुत किया है :

'पारो' उपन्यास में नारी जीवन की प्रमुख समस्याएँ अनमेल विवाह, दहेज प्रथा और वैधव्य जीवन की कठिनाईयाँ आदि हैं । मुख्य नारी पात्र पारो के विवाह के बाद भी उसकी माँ की चिन्ता बराबर बनी रहती है । जब तक वह उसे ससुराल नहीं भेज देगी तब तक वह जिम्मेदारियों से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं महसूस करेगी । तत्कालीन समाज के कथा परिवेश में यह सबसे बड़ी समस्या थी कि बेटी के विवाह के उपरान्त तीज-त्यौहारों में सौगात नहीं भेंट किए जाते, तो उसका सारा खामियाजा ससुराल में गयी लड़की को ही झेलना होता था । इस डर से स्वयं अभाव की जिन्दगी झेलते हुए भी माँ अपनी बेटी के ससुराल त्यौहार को सामान भेजती रहती । इसी चिन्ता में ग्रस्त पारो की माँ बिरजू के पास सूचना भेज बुलाती है – "उन्होंने कहला भेजा था, पारो की शादी हो जाने से वह चिन्ता मुक्त हो गयी थी मगर उससे क्या ? ब्याही लड़की जब तक ससुराल न चली जाए उसके माँ-बाप के लिए कुछ न कुछ परेशानी रहती ही है। शादी के पहले साल आश्विन पूर्णिमा के दिन मनाया जाने वाला त्यौहार कोजगरा के लिए दिए गए भेंट सौगात में, कमी हुई तो समधी-समधिन नाराज।"[46]

इन सामाजिक समस्याओं से जूझती नारी स्वयं की अभाव में रखते हुए भी अपनी बेटी के ससुराल में तीज-त्यौहार पर सौगात भेजने को चिन्ता से चिन्तित है। अनमेल विवाह की इस प्रथा से समाज में तमाम विकृतियाँ फैली थीं, जिसमें नारी ही हर तरफ से प्रताड़ित होती थी । पारो की कम उम्र में ही पचास वर्ष के वृद्ध से विवाह हो जाने से उसे जिस

मानसिक और शारीरिक परेशानियों को झेलना पड़ता है वह सिर्फ पारो की ही समस्या नहीं है बल्कि तत्कालीन समाज में इस तरह की कितनी पारो इस त्रासदी का शिकार होकर छटपटाती रहीं – ''जोर-जबर्दस्ती कोई किसी के शरीर पर ही केवल कर सकता है। मन पर कतई नहीं, वैसे आप ही कहिए कि जहाँ पचास वर्ष के वर की पत्नी पन्द्रह साल की होती हो, वहाँ सौमनस्य कैसे संभव है ? बहुत छोटी ही थी मैं जब मामी के मुँह से एक कहानी सुनी थी । उसमें हुआ यह था कि किसी पोखरे में आग लग गई । उन दिनों यह बात अजीब लगती थी । पर अब अच्छी तरह समझती हूँ कि कैसे आग लगती है पानी में ....।''[47]

'पारो' की कथा भूमि में नारी जीवन की जो सामाजिक समस्याएँ हैं वे पुरुष वर्चस्ववाद की सामन्तवादी विचारधारा की नींव पर टीकी है । जिसमें दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, विधवा नारी जवीन जीने की समस्या सबसे जटिल सामाजिक समस्या है।

'दुखमोचन' में नारी जीवन की सामाजिक समस्याएँ-विधवा जीवन की कठिन जीवन संसृत से प्रारम्भ होता है । जिसमें उसके असहाय होने के साथ-साथ उसके लाचारीपन का बहुत ही भावात्मक चित्रण नागार्जुन ने किया है – ''विधवा जीवन की कठिन और लम्बी तपस्या उनकी आँखों के पानी में कड़वापन नहीं भर पाई थी । पिछले कई वर्षों से वह इस परिवार की सेवा कर रही थी । मायके में या ससुराल में अपना कोई था भी तो नहीं, थे तो बस बड़ी ननद के यहीं तीन लड़के । सुखदेव की पतीत धनी बाप की इकलौती बेटी थी, जहाँ आकर हमेशा के लिए जम जाने में उसे घाटा था । दुखमोचन की औरत पाँच साल पहले हैजा की शिकार हुई थी । नारायण हजारीबाग में महकमा – जंगलात का मुलाजिम था । उसकी पत्नी यहीं रहती थी, बच्चों में दो थे दुखमोचन के एक नारायण का।''[48]

समाज में विधवा नारी को उचित सम्मान न मिलना और उनके प्रति समाज की

नेक नियत न होना, नागार्जुन के उपन्यासों की कथा भूमि की मुख्य जटिल सामाजिक समस्या है। जिस समस्या को नागार्जुन ने समाधान के रूप में भी परोसा है – "दुखमोचन जब विधवा माया का विवाह कपिल से करा देता है तो गाँव के पण्डित खेमे के लोग नाराज होकर उसे पीट देते हैं – "छड़ी बेत की नहीं, विन्ध्याचली बाँस की थी, छः सात प्रहार पीठ पर पड़े थे, तीन–चार कन्धों पर, एक चोट दाईं ओर कनपटी पर पड़ी थी । दर्द की जलन पीकर दुखमोचन बोले – बस ताऊ जी, बाकी यही बचा था ? आपने आखिर आशीष दे ही डाला .... बुजुर्गों की दुआ के बिना दुनिया का कोई काम आज तक पूरा नहीं हुआ है ..... बड़ा अच्छा किया आपने ।"[49]

दुखमोचन मार खाकर अपनी विनम्र वाणी से भले इसका विरोध दर्शा कर वापस चले आए हों, किन्तु उनकी मामी का विद्रोही स्वर मुखर हो उठता है – " हुँह ! न जगाऊँ किसी को ! सिर फुड़वाकर आए हैं और नसीहत बघार रहे हैं .... तबीयत तो यही करती है कि चीख-चीख कर सबको जगा दूँ, लोग इकट्ठे हों तो बताऊँ .... देखो अपने गाँव के बुजुर्ग विद्धान की काली करतूत । वेणी माधव का ताऊ नहीं है, वह तो भारी ब्रह्मराक्षस है .... हुँ हुँ हुँ .... ।"[50]

इस तरह 'दुखमोचन' के नारी पात्रों के जीवन में जो सामाजिक समस्याएँ हैं वे वैधव्य जीवन की कठिन तपस्या से तो जुड़ी ही हैं साथ ही नारी के प्रति पुरुष के वर्चस्ववादी दृष्टिकोण से उपजी विभिन्न विद्रुपताएँ भी हैं । किन्तु चेतनागत युग बोध के अनुसार दुखमोचन जैसा महापुरुष, माया जैसी विधवा, नारी का विवाह कराकर इस समस्या का समाधान भी प्रस्तुत करता है । जहाँ नारी के जीवन जीने की स्वतंत्र अधिकारों के प्रति पुरुष भी सचेत है ।

'कुम्भीपाक' की सामाजिक समस्याएँ वेश्या जीवन की नारकीय त्रासदी का पोल खोलता है और वेश्या नारी के संघर्षों में पुरुष वर्चस्व के हस्तक्षेप का खुलासा भी करता है ।

मूलतः ये समाज की मारी अनमेल विवाह से उपजे वैधव्य जीवन को जीती नारियों के अस्थिर जीवन की कथा है । 'कुम्भीपाक' की चम्पा वर्चस्ववादियों के द्वारा खोले गए संजीवन आश्रम में विधवाओं और अनाथ नारी के साथ आश्रम की आड़ में हो रहे व्यभिमाचार से अच्छी तरह परिचित हैं । आश्रम के नाम पर किए जाने वाले नारी शोषण को वे अच्छी तरह समझती हैं। समाज के ये पुरोधा विधवा नारी को किस तरह इस्तेमाल करते हैं, इसको बताते हुए राय साहब पर फट पड़ती है – ''इस आश्रम शब्द से मैं घबराती हूँ .... अब तो यह आश्रम अनैतिकता के अड्डे हैं - स्वाथियों के अखाड़े हैं । हमारी जैसी मूक असहाय बकरियों को ही नहीं, आप जैसे आदर्शवादी धर्मभीरु बैलों को भी बलि इन आश्रमों के अन्दर चढ़ती आयी है। मगर वक्त आ गया है कि इन आश्रमों के ढाँचे हम बदल डालें ।''[51]

यहाँ नारी का मौन टूटता है इन सामाजिक समस्याओं के प्रति सचेत होकर नारी संजीवन आश्रम में विधवाओं के शोषण के विरूद्ध उठ खड़ी होती है और वह इस सम्पूर्ण ढाँचे को बदल डालने की कोशिश में लगी है, वह माँग करती है कि हमें इस ढाँचे को बदलना ही चाहिए । नारी की यह जागरूकता इन सामाजिक समस्याओं को दर्शाती है कि केवल चम्पा ही नहीं बल्कि भुवन को त्रासद नारकीय जीवन से बाहर निकालने वाली कम्पाउण्डर की पत्नी निर्मला भी इस ढाँचे को बदलने में तत्पर है। पत्र के माध्यम से इन सामाजिक समस्याओं का पूरा लेखा-जोखा कुम्भीपाक में उपस्थित है, जिसे निर्मला अपने भाई के पास लिखती है – 'भइया के चरणों में निर्मला का प्रणाम । ''एक अनाथ लड़की आपकी शरण में जा रही है । मुझे पूरा भरोसा है कि आप और भाभी इस लड़की को अपने परिवार में शामिल कर लेंगे ।

''भइया आपने बहुतो का उद्धार किया है । आपका हृदय विशाल है .... मैं बचपन से ही आपके स्वभाव को जानती हूँ । किसी कारण अगर अपने परिवार में इस समय इस लड़की को जगह न दे सकें तो कोई दूसरी व्यवस्था करेंगे ।''

''इन्दिरा नाम है, उम्र है उन्नीस की, जिला मुंगेर के किसी मशहूर बस्ती में पैदा हुई थी, घराना ऊँची नाक वालों का । पंद्रह की उम्र में शादी हुई, दूल्हा पाइलट था, उसी वर्ष हवाई दुर्घटना में जान गवाँ दी । इन्दिरा का फिर वही हाल हुआ, घुटी हुई तबीयत के युवकों और आदर्शहीन अधेड़ा के बीच एक विधवा तरुणी का जो हाल होता है। ''गर्भ चार महीने का हुआ, एक अत्याचारी रिश्तेदार डाक्टरी इलाज के बहाने इंदिरा को आसनसोल ले गया और धर्मशाला में अकेली छोड़कर खिसक आया तब से दो वर्ष इन्दिरा के कैसे कटे हैं, यह बात धरती जानती होगी कि आसमान जानता होगा........... हम आप तो अंदाज भी नहीं लगा सकते भइया ।''

''लड़कियों और औरतों की खरीद-बिक्री जिनका धंधा था, ऐसे ही एक राक्षस के चंगुल से आपकी छोटी बहन इन्दिरा को छुड़ा लाई है – झपट्टा मारकर चील की तरह छीन लाई है ....''

''आप मेरी पीठ ठोकेंगे और भाभी मुझे इनाम देंगी ।

''छोटे भइया की शादी के मौके पर आप दोनों गया जरूर आएँगे ।

''भाभी जी को प्रणाम .... चिरंजीव राजीव और कुंतल को प्यार ......

नीरु, आपकी छोटी बहन ।''[52]

इस प्रकार के पत्र लेखन से निर्मला के क्रान्तिकारी स्वरूप का उद्घाटन तो होता ही है, साथ ही उसके नारी चेतना के सजग स्वरूप का दर्शन भी उपलब्ध है। वह सामाजिक समास्याओं के विरूद्ध आवाज उठाना भी जानती है और स्वयं में लड़ने की ताकत भी रखती है। निर्मला के बारे में उम्मी की माँ सोचती है –''बलिहारी है जीवट की ! तुम्हारे माँ-बाप स्वाभिमानी मस्त और दबंग किस्म के लोग होंगे..... झिझक, तंगदिली, डर और उदासी तुमसे भागे-भागे फिरते हैं । खुशी और मस्तानापन तुम्हारे कदम-कदम पर निछावर है । मुर्दा के अन्दर जान फूँक दी तुमने .... भुवनेसरी लाश नहीं तो और क्या थी ? चुटकी

बजाकर उस मैना को उड़ा दिया तुमने और एक मैं हूँ, रोज लात खाती हूँ .... कभी इन रगों में भी ताजा लहू दौड़ता था, अब तो बस दुर्गंध और बासी पानी भर गया है इनमें - उस हुक्के का पानी जिससे कई होंठ अधा गए हों ।''[53]

समाज में तिरस्कार झेलती नारी पुरुष के इशारे पर घूमती नारी या यूँ कहें कि जीवन के दलदल में फँसी नारी अपने अस्तित्व को बचाने में लगी हुई है, पर समाज का विद्रूप चेहरा उसे स्वीकारने से घबराता है। इन्हीं विविधताओं का पर्दाफश करती 'कुम्भीपाक' की चम्पा कहती है –''विधवा तो मैं कभी रही नहीं । पति के बाद मन ही मन जीजा के प्रति समर्पित हो गई। जीजा ने जबाव दे दिया तो सफदर पर फिदा हुई, उसने चम्पा को कुसुम बना दिया । कानों में हल्ले डलवा दिए चाँदी के .... छेदों के निशाना नहीं हैं इन कानों में ?

कुसुम के बाद ? सतबन्त कौर ? हाँ सतबन्त कौर ।

सरदारों ने मुझे यही नाम दिया था । .... सतबन्त कौर ने दम तोड़ा तो चम्पा फिर से जी गयी ।''[54]

इस प्रकार की सामाजिक समस्याओं से ग्रसित नारियों का जीवन शून्य बिहड़ में उपजे झंझावतों से जूझने में ही लगी है । समाज की मारी चम्पा दर-दर का भटकाव झेल आयी हो, किन्तु सामाजिक समस्याओं से लड़ने का स्वप्न उसमें अभी बाकी है और उसकी आँखों में बदलते दृश्य के इन्तजार में आँसू भी हैं, तो विश्वास की चमक भी। राय साहब से चम्पा बोलती है – ''पहले तो खैर स्त्रियों की इतनी भी आजादी नहीं थी, रामायण, महाभारत और उपनिषदों की बात नहीं लेती हूँ, आगे उद्योग-धन्धे बढ़ेंगे, खेती-बाड़ी बढ़ेगी, जहालत और गरीबी हटेगी साधारण जनता का जीवन सुखमय होगा, तब स्त्रियाँ भी इस दुर्दशा से छुटकारा पाएँगी ....।''[55]

अनमेल विवाह जैसे सामाजिक समस्याओं पर आधारित नारी जीवन का चित्रण

'उग्रतारा' में उगनी के माध्यम से हुआ है । पचास वर्ष के भभीखन सिंह की पन्द्रह वर्षीय ब्याहता उगनी अपने पति के बारे में सोचती है – "उगनी पेट पर हाथ फेरने लगी । बड़ी-बड़ी मूँछों वाला अधेड़ सिपाही भभीखन सिंह सामने खड़ा मुस्कुराता दिखाई पड़ा । क्षण भर के लिए उगनी ने सोचा अंदर जो चार महीने का शिशु पल रहा है, उसकी भी मूँछें क्या डरावनी होंगी । वह भी क्या इसी तरह भारी बूटो वाला पैर पटकता हुआ सामने आकर खड़ा हो जाया करेगा ? वह भी क्या पचास साल की उम्र तक यूँ ही कुँवारा रह जाएगा ? वह भी क्या ....।"[56]

असन्तोष पूर्ण जीवन जी रही उगनी इस अनमेल विवाह को पुरुष वर्चस्व का प्रतीक मानती है और यह बताने से नहीं चूकती की समाज में वर्चस्ववाद को जिलाए रखने वाले भभीखन सिंह जैसे लोग नारी के जीवन में विविध प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न करते हैं । बेबश उगनी के लाचार जीवन की बेवशी का नाजायज फायदा उठाते हुए भभीखन सिंह उगनी से विवाह तो कर लेते हैं, पर पंद्रह वर्षीय उगनी पचास वर्षीय से किए गए विवाह के बारे में सोचती है – "यह भी बलात्कार ही था । ठीक है, भभीखन सिंह ने वैदिक विधियों से शादी की थी, ठीक है, आधे घंटे तक अग्नि में आहुतियाँ डाली गयीं थी। ठीक है, हवन के धुँओं ने बहुतों की आँखें आनन्द की आसुओं से गीली कर दी थीं । ठीक है, तोला भर सिन्दूर माँग के बीचों-बीच कई दिनों तक जमा रहा, सब कुछ ठीक है । लेकिन स्त्री-पुरुष के बीच उम्र का इतना बड़ा फासला किस तरह मखौल उड़ा रहा था, विवाह के संस्कारों का। बाबू भभीखन सिंह की कानूनी तौर पर इस बलात्कार का हक हासिल हुआ, अब उगनी उनकी संतान को अपने लहू से पुष्ट बनाएगी .... कामेश्वर कैसे अब उगनी को स्वीकार करेगा ।"[57] सामाजिक समस्याओं से घिरी उगनी अन्ततः भभीखन सिंह को छोड़कर कामेश्वर की ओर हो जाती है और नारी जीवन की सामाजिक समस्या का स्वयं निदान करते हुए अनमेल विवाह की असन्तुष्टि से मुक्ति प्राप्त कर हम उम्र कामेश्वर को अपना लेती है ।

नारी जीवन की सामाजिक समस्याओं में 'जमनीया का बाबा' की इमरितिया भी शामिल है, जिसका पूरा जीवन ही समस्यात्मक है । 'जमनीया का बाबा' की सेविका इमरितिया पूर्व घटित घटनाओं के बारे में स्वयं सोचती है और अपने दुखद त्रासाद भरे समस्यात्मक क्षणों के बारे में सोचती है। जब भिखारिन उसे आशीर्वाद देती है कि 'बिटिया तुम्हारी गोद भरे' तो वह भौंहे चढ़ाकर उसे गाली देती है, और फिर विचारों में डूब जाती है– ''लेकिन कुछ कह नहीं पाती है, लेटे-लेटे भिखारिन के बारे में सोचती रहती है, उस औरत में और मुझमें क्या फर्क है ? मैं भी दूसरों का दिया हुआ खाती हूँ, वह भी दूसरों का दिया हुआ खाती है, उसकी ही तरह मेरा भी कोई अपना नहीं है .... उस भिखारिन में और मुझमें कोई खास अन्तर नहीं है।''[58]

इमरितिया की यह सोच नारी जीवन की समस्याओं के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को प्रस्तुत करता है। नागार्जुन के उपन्यासों में नारियों की स्थिति को देखते हुए यह कहना नितान्त सही प्रतीत होता है कि – ''अधिकांश नारियों का जीवन वैधव्यपूर्ण है । भारतीय समाज व्यवस्था इन महिलाओं के प्रति इतना क्रूर, अमानवीय एवं संवेदनहीन है, यह सब वैधव्य के असीम कष्ट से जूझती हुई नारियों को देख कर ही पता लगता है । उनके उपन्यासों की मूल प्रेरणा में लोक और शास्त्र द्वारा प्राताड़ित नारी ही विद्यमान है और उनका सम्पूर्ण रचना कर्म नारी उद्धार की प्रबल कामना को उद्वेलित करता है ।''[59]

5. ग. धार्मिक समस्याएँ :

धर्म जब अध्यात्म से जुड़कर उर्ध्वोन्मुखी होता है, तो जीवन को मंगल भावों और उदार कामनाओं से पूर्ण और सुखी बना देता है । किन्तु जब अन्धविश्वासों और रूढ़ियों से ग्रस्त हो जाता है तो व्यक्ति और समाज के पाओं की बेड़ियाँ बन जाता है, धर्म तो अखण्ड होता है । अन्तर सब दिखाई पड़ता है, जब लोग अपने-अपने विश्वास और आस्था के अनुकूल उसका कोई एक स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं और उसी आस्था, श्रद्धा और पुज्य बुद्धि

के अनुरूप उपास्य के किसी रूप विशेष को अपना लेते हैं । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, दुर्गा, काली, पार्वती, सरस्वती आदि एक ही परम शक्ति के अलग-अलग रूप हैं । यद्यपि रूप में भिन्नता या अनेकता है, लेकिन तत्वतः अद्वैतता भी है ।

भारत में धर्म का युग-युगान्तर से सर्वोत्तम स्थान रहा है । यह धर्म हमारे जन्म और मोक्ष के रूप में कल्याणकारी रहा है। जहाँ एक तरफ धर्म हमारे जीवन में कल्याणकारी सिद्ध हुआ है, वहीं दूसरी तरफ उसके अनुचित प्रयोग और खोखली मान्यताओं, अन्धविश्वासों और जटिलताओं के कारण तमाम परेशानियों का कारण भी बना है ।

नागार्जुन के समय तक आते-आते धर्म अपने महत्त आदर्श से च्युत होकर रूढ़िवादिता, आडम्बर और प्रदर्शन प्रियता से ग्रस्त हो विकृत हो चुका था । इसलिए धर्म के नाम पर किए जाने वाले कर्मों के प्रति आस्था के बदले अनास्था पनपती गयी । जहाँ पहले मठ-मन्दिर हमारे कल्याणकारी जीवन के आदर्श पथ प्रदर्शक हुआ करते थे, जहाँ हम भगवान के सामने नतमस्तक हो अपने सुखी और उज्ज्वल जीवन की कामना करते थे, वहीं मठ-मन्दिर तमाम विद्रुपताओं और विसंगतियों का आश्रम बन चुका है। जहाँ नारी पहले शक्ति का अवतार और उज्ज्वल जीवन की सहयोगिनी हुआ करती थी वहीं मठ-मन्दिरों में उनकी लाचारी और बेबशी का फायदा उठाकर उनका शोषण किया जाता है । 'नागार्जुन' ने उसी समाज की शोषिताओं का चित्रण किया है । उनकी वाणी में, उनकी कलम मे, उन्हीं शोषितों का दर्द, उनका उत्पीड़न उभरकर सामने आया है ।

'रतिनाथ की चाची' नामक उपन्यास में नागार्जुन ने एक बेबश और लाचार नारी पात्र का चित्रण किया है जो हिन्दू धर्म की विसंगतियों और अन्धविश्वासों का शिकार होती है। 'रतिनाथ की चाची' नामक उपन्यास की मुख्य नायिका गौरी है । हमारे भारतीय धर्म में एक लड़की की शादी उसके माँ बाप जैसा भी कर दें, उसे मान्य होता है, चाहे वह लूला लंगड़ा, बहरा, काना, रोगी या साठ-सत्तर वर्ष का बूड्ढा ही क्यों ना हो ? अपने अधिकारों

की माँग या अपनी इच्छाओं को माँ-बाप की इच्छाओं के विरूद्ध रखना महान पाप समझा जाता है। गौरी एक मध्यम वर्ग की लड़की थी । किन्तु उसका विवाह निम्न वर्ग के रोगी लड़के के साथ हो गया कुछ दिनों तक साथ निभाने के बाद उसके पति का देहावसान हो गया । अन्ततः भारतीय धर्म में जिस विधवा को अशुभ माना जाता है उसे विभिन्न शुभ कार्यों, (पूजा-पाठ, अनुष्ठानों या यज्ञों) से दूर रखा जाता है। आज गौरी भी उसी हक की अधिकारणी हो गयी थी। भारतीय धर्म में विधवा स्त्री का माँ बनना अघोरतम पाप का कारण होता है । उसे समाज तिरस्कृत और हीन दृष्टि से देखने लगता है । गौरी भी अपने वैधव्य जीवन में अपने देवर जयनाथ के युवावस्था की फिसलन या उच्छन्दताओं के कारण माँ बनने वाली थी । उसके पड़ोस की सारी औरतें उसे हीन और तिरस्कृत दृष्टि से देखती थीं । जिसमें दम्मो फूफी मुख्य रूप से इस आग में हवा देने का काम कर रही थीं । वह गाँव की सारी औरतों को गौरी के खिलाफ कर रही थी । एक दिन सभी मिलकर गौरी का मजाक उड़ाने पहुँचती हैं, और गौरी के ना बताने पर दम्मो फूफी अन्ततः उसका उपहास करते हुए बोल पड़ती है –"अच्छा भाई" फूफी ने उठते हुए कहा, "अन्धेरा हो गया, मुझे तो शिवजी के दर्शन करने नित्य इस समय भी मन्दिर जाना होता है । तुम्हारी मर्जी ! लेकिन पाँच साल की बच्ची भी इतना बता देती है कि आँख मिचौनी के वक्त उसकी पीठ थपथपाने वाला आखिर कौन रहा होगा और एक तुम हो ! ओह, कितनी भोली ...."[60]

अब के फूफी खिलखिलाकर हँस पड़ी औरों ने भी साथ दिया, इस तरह गौरी पूरे गाँव के लिए उपहास का कारण बन जाती है। अपनी इस समस्या के समाधान हेतु जब वह माँ के पास जाती है तो उसकी माँ भी पहले उसका उपहास करती है । उसके इस कुकृत्य पर क्षोभ करती हुई कहती है – "इस खानदान में जो किसी ने नहीं किया, इस अभागिन ने वही कर डाला । हे दूर्गा ! हे बाबा कपिलेश्वर ! अब मैं इसका क्या इलाज करूँगी ? कब तक इस बात को मैं छिपा सकूँगी ?"[61]

माँ को जहाँ सभी दुखों का दुख निवारक समझा जाता है, वहीं पहले गौरी की माँ उसकी सहायता करने से मना कर देती है, किन्तु बाद में उसकी नारी चेतना जागृत हो उठती है और वह पूरे समाज का सामना करने के लिए अपने आप को तटस्थ बना लेती है।

हिन्दू धर्म के ब्राह्मण धर्म पर उसकी विद्रुपताओं पर व्यंग्य करती हुई चमारिन जो की गौरी का गर्भपात करने आयी रहती है वह कह उठती है – ''भला यह भी क्या कहने की बात है मलिकाइन ? आपकी बदनामी क्या हमारी बदनामी नहीं है ? पर एक बात कहूँगी, माफ करना, बड़ी जात वालों की, तुम्हारी यह बिरादरी बड़ी मलेच्छ, बड़ी निठुर होती है, मलिकाइन ! हमारी भी बहू बेटियाँ राँड़ हो जाती हैं, पर हमारी बिरादरी में किसी के पेट से आठ-आठ, नौ-नौ महीने का बच्चा निकालकर जंगल में फेंक आने का रिवाज नहीं है ओह कैसा कलेजा होता है तुम लोगों का ! मइया रि मइया ।''[62]

गौरी की माँ निःसाँस खींचकर भी कुछ बोली नहीं, अपनी लड़की के बढ़े हुए पेट पर उनका ध्यान गया और उसके अन्दर एक सुन्दर और स्वस्थ्य शिशु पड़ा है ऐसा प्रतीत हुआ । आँखें मुंदी हुई, परन्तु पलक लगातार फड़क रही हैं – ओ अभागे ! तुम्हारा क्या कसूर ? यही चमारिन तुम्हे गाँव के बाहर किसी झुरमुट के अन्दर डाल आएगी । फिर कुत्ते और सियार नोंच-नोंच कर तुम्हें खाएँगे ! जैसे और बच्चे अपनी माँ के पेट से समय पर बाहर आते हैं तुम उस तरह समय गर्भ से बाहर नहीं निकाल सकते । तुम्हारे जन्म से प्रसन्न हों, सोहर गाएँ, ऐसी एक भी औरत नहीं होगी .... मेरा बस चलता तो .... ''[63]

इस प्रकार हिन्दू धर्म की तमाम विद्रुपताओं, विसंगतियों, रूढ़िवाओं और अन्धविश्वासों की शिकार गौरी का अपने वैधव्य जीवन में विभिन्न प्रकार की यातनाओं का सामना करना पड़ता है, और जीवन की यही घुटन उसे अल्पायु बना देती है।

'बलचनमा' नामक उपन्यास में यद्यपि धार्मिक समस्याओं का अभाव रहा है, किन्तु फिर भी खबासिन नामक नारी पात्र धर्म को अपना हथियार बनाकर अपनी युवावस्था की भूख

को तृप्त करती है, जहाँ धर्म विभिन्न समस्याओं के निवारण हेतु हमारा सहयोगी बना खड़ा रहता था, वहीं विभिन्न ढकोसलों झाड़-फूँक, पूजा-पाठ, टोना-टापर आ जाने से प्रदूषित हो गया । जब खबासिन को भूत पकड़ता तो मलिकाइन चीख कर दोनों हाथ जोड़ लेती -- ''दुहाई भगवती की, सुखिया का भूत भगा ले जाइए, दो कुँवारी लड़कियों को आपके निमित्त खीर-पूरी खिलाऊँगी फिर मेरी ओर मुँह करके कहती है - बलचनमा दामो ठाकुर को बुला ला, उसे समय-समय पर बुला लिया जाता । चूहे के बिल की मिट्टी, पुराने बिनौले, तोड़े हुए कुश के तिनके, चार बूँद गंगाजल, पीपल के सूखे पत्ते .... इतनी चीजें मिलाकर दामो ठाकुर खबासिन को झाड़ना शुरू करते । ऊँ काली - काली - महाकाली, इन्द की बेटी, ब्रह्मा की साली फूह .... इतना कहकर कुछ देर तक होंठ चटपटाते और फिर खबासिन की छाती पर फूँक मारते, फिर सिर पर, कंधों पर, कमर में । आँखों से इशारा करने पर दूसरे लोग घर से निकल जाते किवाड़ भिड़का दिया जाता अन्दर से हूँ हूँ की आवाज आने लगती ।

थोड़ी देर बाद किवाड़ खुलती लेकिन किसी का आन्दर जाने को साहस नहीं होता, थोड़ी देर बितने पर पसीने से लतपत दामो ठाकुर बाहर निकलते और यह कहते हुए आँगन से निकल जाते कि खबासिन का मिजाज ठीक कर दिया, वह बड़ा जबर्जस्त भूत था, बड़ी मुश्मिल से काबू में आया..........''[64]

इस प्रकार मुख्य नारी पात्र बलचनमा उपन्यास में खबासिन धर्म को अपनी वासनाओं का आधार बनाकर उससे अपनी इच्छाओं की तृप्ति करती है। अन्य धार्मिक नारी पात्रों का अभाव है, किन्तु खबासिन नामक नारी पात्र विभिन्न ढकोसलों और तंत्र विद्याओं का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

'नई पौध' नामक उपन्यास में धार्मिक समस्याओं का यद्यपि अभाव रहा है, किन्तु ग्रामीणांचल में हिन्दू धर्म में पनपता अनमेल विवाह अपने आप में एक बहुत बड़ी धार्मिक

समस्या रही है । माँ-बाप जैसा विवाह कर देते हैं उनके बच्चे उसे अपना सर्वोपरि धर्म समझ स्वीकार कर लेते हैं । रामेसरी 'नई पौध' की पात्रा है, जो वैधव्य का जीवन व्यतीत कर रही है और अपनी बेटी के अनमेल विवाह के विषय में चिंतित है । उसे रह-रह कर अपनी बहनों की त्रासदी याद आती है । रामेसरी अपने अभाग पर उतना कभी नहीं रोयी जितना कि बहनों की बदनसीबी पर रोती रहती थी । सभी बहने माँ-बाप को श्राप दिया करती थीं । कोई गूँगे के पल्ले पड़ी थी, तो कोई बौड़म के पल्ले । कोई तीन जिला पार फेंक दी गई थी, तो कोई पाँच सौ कोस पर, उनमें से चार को भाग्य ने वैधव्य के बिहड़ जंगल में डाल दिया था। एक पगली हो गयी थी, एक को उसके आदमखोर पति ने तेल की मदद से जला कर खाक कर डाला था ।

''अपनी बच्ची के सौन्दर्य पर जहाँ उसे अभिमान था वहीं बाप के राक्षसी लोभ पर उसके मन में घृणा ही घृणा थी । कई बार वह सोचती की बिसेसरी को कनेर की गूठली घिसकर पिला दे ! क्या करेगी जीकर बिसेसरी ? ऐसी जिन्दगानी से मौत लाख गुना बेहतर !!'' मगर माँ का मोह रामेसरी के परिताप पर मानो चंदन का लेप चढ़ा जाता । वह सोती हुई विसेसरी को खींचकर अपनी छाती से सटा लेती ।''[65]

इस प्रकार ग्रामीणांचल में हिन्दू धर्म की त्रासदी झेलती रामेसरी उसकी बहन और उसकी बेटी बिसेसरी जिसका विवाह साठ वर्ष के बुड्ढे से हो रहा था । यह भारतीय हिन्दू धर्म की विद्रुपताओं का सशक्त उदाहरण है।

'बाबा बटेसरनाथ' में धार्मिक समस्याओं का सर्वथा अभाव रहा है। यद्यपि धार्मिक अनुष्ठानों एवं धार्मिक आस्था के प्रति नारी पात्र सजग है, किन्तु उसमें धार्मिक समस्या का अभाव रहा है । इस तरह 'बाबा बेटेसरनाथ' में धार्मिक आस्था और धार्मिक क्रिया-कलापों का चित्रण हुआ है। किन्तु धार्मिक समस्या कहीं भी उभरती हुई नजर नहीं आती । 'वरुण के बेटे' नामक उपन्यास में भी धार्मिक समस्याओं का अभाव रहा है । यद्यपि हिन्दू धर्म की

मान्यताओं को आधार में रखकर एक जगह भोला की माँ भइया माधुरी के ससुराल से प्रताड़ित हो लौट आने पर कह उठती है – "लाख-बात बर्दाश्त करके भी लड़कियों को ससुराल में रहना चाहिए बेटा ।"[66]

इस तरह धार्मिक अन्धविश्वासों और वैवाहिक जीवन के प्रति रूढ़िवादी दृष्टियाँ नारी की सजगता और उसके अधिकारो के मार्ग पर अबरोधक बन उनका मार्ग अबरूद्ध करती है।

'पारो' नामक उपन्यास में भी धार्मिक समस्याओं का अभाव रहा है, किन्तु फिर भी भारतीय हिन्दू धर्म में भाई-बहन के प्रेम को अपवित्र माना जाता है। पारो उपन्यास की मुख्य पात्रा पार्वती (पारो) अपने मामा के लड़के बिरजू से प्रेम करती है और कह उठती है – "भाई-बहन ही में यदि शादी होती तो कितना अच्छा होता, जहाँ-तहाँ के एक अनजान को जो लोग उठा लाते हैं, इसमें क्या अक्लमंदी है ?

यह सुनकर मैंने माथा छुड़ा लिया, उलटकर क्या कहूँगा, यह तो दिमाग में नहीं ही आया तब केवल डाँट जरूर दिया । अगिलही - आग लगाने वाली - कहीं की । ऐसी - ऐसी बात भी कोई जुबान पर लाता है ? उसके बाद पीसा आ गए थे ; हम दोनों को बगीचे की रखवाली से फुर्सत मिल गई थी ।"[67]

पारो का विवाह पचास वर्ष के बुड्ढे के साथ हो जाता है। वह बिरजू के पास पत्र लिखती है – कोई जोर-जबर्दस्ती किसी के शरीर पर ही केवल कर सकता है । मन पर कतई नहीं, वैसे आप ही कहिए कि जहाँ पचास वर्ष के वर की पत्नी पन्द्रह साल की होती है, वहाँ सौमनस्य कैसे सम्भव है ? वह अपने धर्म की और सामाजिक वैषम्यताओं से ऊबकर क्रोध में जलने लगती है और कह उठती है – "हे भगवान ! लाख दण्ड दे, मगर फिर औरत बनाकर इस देश में जन्म नहीं दे - छि आह ! पैतासील वर्ष का नर पिचास एक अबोध लड़की के सामने दस रुपयों के नोटों का ढेर इसलिए लगावे कि ...."[68]

अन्ततः तमाम यातनाओं को झेलती बिरजू के पैर पकड़ लेती है और आकुल स्वर में बोली – "नहीं आज मैं कहाँ मानूँगी ? ऐसा आशीर्वाद मुझे दिया जाय बिरजू भइया कि अगले जन्म में यह नर्क न भोगना पड़े .... मेरे और आपके बीच ममेरे-फुफेरे का सम्बन्ध नहीं, उस जन्म में मैं और आप.......... "[69]

इस तरह हिन्दू धर्म में अपनी इच्छानुसार वर चुनने के अधिकार को तथा अपने निजी सम्बन्धों में ऐसे अधिकार और प्रेम अपने धर्म के विरूद्ध गूढ़ पाप समझा जाता है।

'दुखमोचन' नामक उपन्यास में भी धार्मिक समस्याओं का अभाव रहा है। यद्यपि धार्मिक भूमिका का सर्वोत्तम स्थान है । सभी पात्राएँ धार्मिक पृष्ठभूमि लेकर उपस्थित हुई हैं। दुखमोचन उपन्यास की नारी पात्रा माया के सामने यद्यपि धार्मिक समस्या उत्पन्न हो जाती है। माया एक ब्राह्मणी ग्रामीण माहिला रहती है और बीस वर्ष की उम्र में ही वह विधवा हो जाती है। गाँव के ही एक राजपूत कामेश्वर से उसका प्रेम सम्बन्ध रहता है, किन्तु विवाह को लेकर उसके सामने धार्मिक समस्या खड़ी हो जाती है। माया की माँ अर्थात् वेणीमाधव की स्त्री ऊँची नाक वाले खानदान की लड़की थी, उसे यह सम्बन्ध बिल्कुल नहीं जँचा । प्राचीन संस्कारों में पली हुई माँ एक ओर थी, तो दूसरी आरे थी लड़की के जीवन को सुखमय देखने की लालसा में असवर्ण विवाह तथा पुनर्विवाह का प्रस्ताव कबूल करने वाली माँ । किन्तु अन्ततः नारी की अन्तःचेतना रूढ़िवादी अन्धविश्वासों से निकलकर जागृत हो उठती है और वह अपनी मान्यताओं को तोड़कर दोनों के विवाह के लिए और समाज का सामना करने के लिए अपने आप को तैयार कर लेती है ।

'कुम्भीपाक' नामक उपन्यास में उपन्यासकार ने धार्मिक समस्या का अभाव दर्शाया है। सामाजिक समस्याओं और विसंगतियों से भरा यह उपन्यास जिसमें नारी पात्राएँ सामाजिक समस्याओं से जूझती हुई नजर आती हैं । इस उपन्यास में भी अनमेल विवाह और वैधव्य जीवन की त्रासदी, नारियों का व्यापार, उनकी लाचारी, उनकी करूण पृष्ठभूमि में

दृष्टिगोचर होती है ।

'उग्रतारा' नामक उपन्यास में भी यद्यपि धार्मिक समस्याओं का अभाव है किन्तु फिर भी इस उपन्यास में भी अनमेल विवाह, वैधव्य जीवन की त्रासदी दृष्टिगोचर होता है। इस उपन्यास में भी उगनी नामक नारी पात्रा जब कामेश्वर नामक लड़के को अपना जीवन साथी बनाना चाहती है तो धार्मिक रूढ़िवादिता और अन्धविश्वासों के चलते उन्हें जेल में डाल दिया जाता है और लाचारी बस उसे पचास वर्ष के बुड्ढे से शादी करनी पड़ती है, किन्तु अन्ततः सारी मान्यताओं को तोड़कर नर्मदेश्वर की भाभी के सहयोग से अपना पुनर्विवाह करती है और हम उग्र अपने साथी कामेश्वर के साथ एक नए वैवाहिक जीवन का आरम्भ करती है ।

'जमनीया का बाबा' नामक उपन्यास विभिन्न धार्मिक ढोंग-ढकोसला और मठ में पनपती विसंगतियों और विद्रूपताओं से भरा पड़ा है। 'जमनीया का बाबा' नामक उपन्यास में इमरितिया नामक नारी पात्रा इन्हीं विद्रूपताओं का शिकार है वहीं गौरी और लक्ष्मी भी इस विसंगति से अलग नहीं है । लक्ष्मी नामक नारी पात्रा जिसे मठ में लाया जाता है जिसका शोषण उत्पीड़न होता है। वह माँ बनती है और उसके पुत्र उत्पन्न होता है । इमरितिया उसके इस नारकीय जीवन के विषय में कह उठती है – "बेचारी लक्ष्मी तूने जहर खाकर इस नरक से छुटकारा पाया था न ? तेरा छः महीने का बच्चा टुकड़े-टुकड़े करके अग्नि कुंड के हवाले कर दिया गया, अपने लाडले को तू बचा ना सकी । बाबा को गालियाँ देती-देती पागल हो गयी, फिर तूझे तेज बुखार चढ़ा । उसके बाद तेरा क्या हुआ, किसी को पता नहीं चला, लोगों को इतना भर मालूम है कि 'जमनीया मठ' की एक सधुआइन लक्ष्मी अवधूतिन जहर खाकर मर गयी ।"[70] इस तरह इमरितिया और गौरी जैसी न जाने कितनी ही औरतों का उत्पीड़न मठ के अन्दर धर्म को आधार बनाकर हो रहा है ।

इस प्रकार विभिन्न उपन्यासों में उपस्थित नारी की धार्मिक समस्याओं को ध्यान में

रखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ पहले धर्म कल्याणकारी जीवन का उद्वेलक, पथ प्रदर्शक और आधार हुआ करता था वहीं आज धर्म में विभिन्न प्रकार की विसंगतियों, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के उत्पन्न हो जाने से नारी जीवन का शोषण और उनके आदर्श व्यक्तित्व, सतीत्व और नारीत्व के हास का कारण बनता जा रहा है।

जो देव-मन्दिर और तीर्थ जितने बड़े हैं, ऐसा लगता है वहाँ पाखंड, व्यभिचार, अन्धविश्वास आदि उतने ही ज्यादा हैं ।

पौराणिक कथा के अनुसार हिन्दूओं के सप्त तीर्थों में काशी की गणना होती है, जिसे कहीं गति नहीं मिलती उसे काशी में मिल जाती है। 'विनय पत्रिका' के शिव भक्ति परक एक पद में तुलसीदास कहते हैं – 'जो गति अगत् महामुनि गावहि।' तब पुर कीट पतगँहु पावहि ।'' उसी काशी के विषय में नागार्जुन लिखते हैं – '''काशी बहुत ही विलक्षण और बड़ा ही विचित्र स्थान है, ऐसा लगता है मानो हिन्दूत्व और भारतीयता के सारे गुण और सारे दुर्गुण यहाँ बाबा विश्वनाथ की शरण में दुबके पड़े हैं ।''[71]

5. घ. आर्थिक समस्याएँ :

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में जहाँ नारी की पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं का वर्णन किया है, वहीं आर्थिक समस्याओं से जूझती नारी का भी वर्णन किया है । गरीबों की मार और विभिन्न अभावों को झेलती औरतों की दयनियता पर भी नागार्जुन ने अपनी पैनी दृष्टि रखी और उनके दर्द, उनकी यातनाओं और उनके अभावों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया ।

यद्यपि सदैव से पुरुष वर्ग ही नारी वर्ग का पोषक रहा है, किन्तु पुरुष के अभाव में या उसकी कर्मठता के अभाव में या ऐसे ही पुरुष वर्ग के अन्य अभावों के चलते नारी को विभिन्न प्रकार की आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । कई-कई दिनों तक भूखें सोना, तन पर पबंद लगे चीथड़े लपेटना पड़ता है, किन्तु नागार्जुन के उपन्यासों में सभी

नारी पात्राएँ आर्थिक अभावों से जूझती हुई भी अपने आर्थिक अभावों की पूर्ति के प्रति सजग और हैं। वे अपनी मेहनत के बल पर तमाम आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती हुई उपस्थित हुई हैं ।

'रतिनाथ की चाची' नामक उपन्यास में गौरी चरखे और करघे चलाकर अपनी आर्थिक समस्याओं का निवारण करती है। "गौरी सब तरह से अपमानित और उपेक्षित होकर चरखा चलाने लगती है । दिन-रात चरखा चलाकर अपने लायक पैसा कमा लेती है।"[72]

गौरी को तमाम आर्थिक समस्याओं का अपने वैधव्य जीवन में सामना करना पड़ता है । किन्तु फिर भी वह हार नहीं मानती – "तरकुल्वा से गर्भपात कराकर लौटने के बाद से ही गौरी चरखा चलाकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर रही है। पच्चीस-तीस रुपये हर महीने इससे निकल आते हैं, सूत बेहद बारीक कातती है, लेकिन चरखा संघ वाले भी कम चालाक नहीं होते । चाची जैसी कतिनों के सूत को कभी तो एक सौ दस नम्बर का करार देते हैं और कभी साठ का । तरीका चरखा संघ वालों का यह है कि पहले कुछ दिनों तक सूत कातने वाली के प्रति कुछ इंसाफ का अभिनय किया फिर सूतों के माकूल नम्बर दिए जाएँ, बाद में धीरे-धीरे नम्बर घटाते जाएँ । झख मारकर कातिनों को यह सब बर्दाश्त करना पड़ता है तभी तो चाची जैसी कतिने अखिल भारतीय सूत प्रतियोगिता में सर्वप्रथम पदक पाने पर भी इतनी कम मजदूरी पाती है।"[73] इस तरह जहाँ एक तरफ गौरी अपनी आर्थिक समस्याओं के प्रति सजग है वहीं अन्य नारी पात्र में दम्मो फूफी, रामपुर वाली चाची, शकुन्तला और जनक किशोरी और सत्तो की माँ भी कढ़ाई-बुनाई और चरखा पूनी चलाकर आर्थिक उपार्जन करती हैं।

'बलचनमा' नामक उपन्यास में नागार्जुन ने जमीनदारी प्रथा और उससे उत्पन्न त्रासदी का दर्शन कराया है । आर्थिक समस्याओं से जूझती मुख्य नारी पात्राओं में बलचनमा की माँ, उसकी दादी, बहन, रेवनी और पत्नी सुगनी हैं। एक बार बलचनमा की दादी बीमार

पड़ जाती है । "दादी को रोटी हजम नहीं होती थी चावल जरूरी था, लाख छटपटा आया, बड़ी मझली या छोटी किसी मलिकाइन ने मुट्ठी भर चावल नहीं दिया । माँ ने जाकर मझले से कहा तो उनकी आँखें घूम गयीं । बोले – "बख्त पड़ता है तो घिघियाकर हमारे यहाँ दौड़ती है नहीं तो .... गाली भी दी, मेरी माँ रो-रोकर कहने लगी सेर भर चावल चाहिए, नहीं तो बुढ़िया की जान नहीं बचेगी सरकार, कागज पर चढ़ा लीजिए, देवड़ा की दुगना जैसा कहेंगे ? पूस में दे दूँगी, बड़ी देने वाली हुई हैं । दो रुपया पहले का बाकी है सो खटाई में, सीझ रहा है और यह चावल लेगी, पाँच महीने बाद जस की तस लौटा देगी । नहीं-नहीं तुम लोगों पर रत्ती भर विश्वास मुझे नहीं रह गया है .... फिर मालिक ने छोटी मलिकाइन की ओर इशारा करते हुए कहा - जाती है न वहाँ तुम्हारी अन्नपूर्णा वहीं तो विद्यमान है ।"[74]

इस तरहों आर्थिक समस्याओं से जूझता बलचनमा का परिवार तमाम परेशानियों का शिकार होता है । बलचनमा नहीं चाहता था कि – "मेरी माँ अपनी लड़की को आमदनी का जरिया बनाए । गरीबी नरक है भइया नरक । चावल के चार दाने छिंटकर बहेलिया जैसे चिड़ियों को फँसाता है, उसी तरह ये दौलत वाले गरजमंद औरतों को परपंच में फसा मारते हैं। उनके पास धन भी होता है औकर अकल भी होती है । अपरम्परा है उनकी लीला, बड़े खानदान का आबारा से आबारा आदमी पण्डितों और पुरोहितों से भल मनसाहत का फतवा पा जाता है ।[75]

किन्तु बलचनमा की माँ अपनी आर्थिक समस्याओं के कारण कहती है – "पानी में रहकर मगर से बैर, उन्हीं का जूठन खाकर, फेरन-फारन पहनकर अपनी जिनगी गुदस्त करते हैं, इतना उड़ात मत बन बेटा ।"[76] इस तरह तमाम आर्थिक परेशानियों के निवारण हेतु बलचनमा की माँ मालिक के यहाँ घरेलू काम-काज करती है और एक दिन वह अपनी बेटी रेवनी को भी ले गयी । जहाँ उसे मालिक की पशुता का भी शिकार होना पड़ा । अपनी

आर्थिक समस्याओं से जूझती हुई भी रेवनी और उसकी माँ और बलचनमा की पत्नी सुगनी उसके निवारण हेतु सजग और उत्सुक है ।

'नई पौध' नामक उपन्यास में यद्यपि सामाजिक समस्या मूल रूप से दृष्टिगोचर होती है, जहाँ आर्थिक समस्या का अभाव है । किन्तु फिर भी रामेसरी अपने वैधव्य जीवन के अभावों के कारण चरखा चलाकर अपनी बेटी के उज्ज्वल भविष्य के लिए आर्थिकोपार्जन करती है । माहे की भाभी भी चरखा चलाकर अपनी आर्थिक समस्याओं का निवारण करती है। इस प्रकार आर्थिक समस्याओं का अभाव होने पर भी रामेसरी और माहे की भाभी के द्वारा आर्थिकोपार्जन की भूमिका दृष्टिगोचर होती है।

'बाबा बटेसरनाथ' नामक उपन्यास में नागार्जुन ने समाज की त्रासदी और अकाल का चित्रण किया है, किन्तु फिर भी नारी पात्रों के आर्थिकोपार्जन का अभाव रहा है। 'बाबा बटेसरनाथ' की नारी पात्र जयकिसुन की दादी आर्थिक समस्या के निवारण के रूप में उपस्थित हुई है । 'बाबा बटेसरनाथ' कहते हैं – "तेरी दादी चतुर खेतीहर की बेटी थी । उपज का हाल खस्ता देखकर पूस में ही उसने दो भैंसे बेच डाली अब एक थी । जौ, मटर, मसूर, चने जैसे आनाज काफी भर रखे थे । पाँच कट्ठा खेत में शकरकन्द की बेलें फैला दीं, सो पन्द्रह मन अलुवा उपजा था । माघ का महीना आता तो तीन कट्ठा वाली दूसरी जमीन में भी वह अलहुआ रोपवा चूकी थी । तेरा दादा सुगंध आदमी था । वह हँसता रहा अपनी घर वाली पर जैसी जिसकी खानदान जैसे उसका लक्षण ।

इस पर तेरी दादी निःस्वास छोड़कर बोली थी – "देखते हो न ? इस बार फागुन में ही कैसी मनहूसी छा गयी है । रात को काला कौआ चिखता रहता है – कर्र-कर्र ! दिन के समय गीदड़ हुंआ-हुंआ करता है .... अब की भारी अकाल पड़ेगा देख लेना । घर में शकरकन्द पड़ा रहेगा तो अकाल खेप ले जाएँगे किसी तरह ...."[77] इस तरह जयकिसुन की दादी अपनी आर्थिक समस्याओं के प्रति पहले से ही सजग और सचेत थी ।

'वरुण के बेटे' नामक उपन्यास में आर्थिक समस्या मूल रूप में दृष्टिगोचर होती है । अपनी आर्थिक समस्याओं से जूझती माधुरी और उसकी माँ तथा उसकी बहन तीरा उसका पूरा परिवार उपस्थित हुआ है। आर्थिक अभाव के चलते माधुरी का विवाह गरीब परिवार में हो जाता है। अपनी बेटी के भविष्य को लेकर माधुरी की माँ चिन्तित है, वह मंगल की माँ से अपना सारा हाल कह सुनाती है । माधुरी की माँ की आँखें भर आयीं, फड़कते हुए होंठ फैल गये बड़ी मुस्किल से शब्द निकले – "और हमारी सोन छड़ी को जो सराहती, वही इस धरती पर नहीं रही, चली गई सरगौली हाट ! ससुर है तो बुढ़वा ताड़ी पीकर धुत्त बना रहता है। बहिना फीकिर के मारे पलकों से नींद उड़ गयी है हमारी .... "[78] इस तरह से 'वरुण के बेटे' नामक उपन्यास में माधुरी और उसके परिवार को तमाम आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिनके आर्थिक उपार्जन का मात्र एक साधन मछली पालन है । पारो नामक उपन्यास में आर्थिक समस्या का अभाव है। पारो मध्यम वर्ग की नारी पात्र है ।

'दुखमोचन' नामक उपन्यास में भी मुख्य रूप से सामाजिक समस्या ही दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि हरखू की माँ निम्न वर्ग की नारी पात्रा है किन्तु फिर भी हरखू की कमाई के चलते उसकी समस्या का समाधान हो जाता है ।

'कुम्भीपाक' नामक उपन्यास में नागार्जुन ने समाज की मूल समस्या नारी उत्पीड़न और शोषण का चित्रण किया है, किन्तु सभी नारी पात्राएँ सामाजिक विसंगतियों, धार्मिक विसंगतियों और आर्थिक अभावों के चलते ही शोषण का शिकार बनती है । अन्ततः चम्पावती (चम्पा) नामक नारी पात्रा वह आश्रम जो नारियों के शोषण का केन्द्र बना था, जिसका शिकर चम्पा खुद भी थी, वह उस 'कुम्भीपाक' से निकलकर सभी नारियों के लिए 'शिल्प कुटीर' नामक एक खोली बीस रुपये भाड़े में ले ली – "टीन के छज्जे से नया साइनबोर्ड टंग गया : 'शिल्प कुटीर' पाँच अक्षर दुरंगे और मोटे थे, नीचे पतली लिपि में

लिखा था – ''आचार', मुरब्बे, पापड़, बड़ियाँ, बेलबूटे झालर, रूमाल, मेजपोश, मोजें, स्वेटर एक और पंक्ति थी – 'हिन्दी में टाइप करवाइए, स्त्रियों और बच्चों के गद्दे सिलवाइए ।''[79] इस प्रकार चम्पा बुआ पहले वाली मरियल औरत नहीं, बल्कि नारी जागरूकता के रूप में सशक्त मिशाल है । वहीं कुम्भीपाक से निकलकर भुवन भी अपनी शिक्षा के प्रति जागरूक हो जाती है।

'उग्रतारा' नामक उपन्यास में यद्यपि नागार्जुन ने सामाजिक समस्याओं को ही उभारा है । किन्तु उगनी नामक नारी पात्रा के समक्ष यद्यपि सामाजिक समस्या ही उत्पन्न हुई है। किन्तु वैधव्य जीवन की त्रासदी उसकी माँ और उगनी दोनों ही व्यतीत कर रही थीं, जहाँ आर्थिक समस्याओं का होना स्वाभाविक है । अन्ततः हम कह सकते हैं कि आर्थिक समस्याओं के कारण ही उगनी के जीवन में तमाम तरह की सामाजिक समस्याओं का आविर्भाव हुआ ।

'जमनीया के बाबा' में नारियों के जीवन से सम्बन्धित आर्थिक समस्या मठ और आश्रम आदि की व्यवस्थाओं पर आधारित है । 'जमनीया का बाबा' जमनीया मठ का मठाधीश है और वहाँ गाँव और समाज के द्वारा दिए गए आर्थिक सहयोग से ही लक्ष्मी, इमरितिया और गौरी के साथ मठ के अन्य सदस्य अपनी आजीविका की व्यवस्था करते हैं । साधारणतः गाँव के बड़े जमीनदारों के द्वारा बेदखली से बचने के लिए स्थापित 'जमनीया मठ' ग्रामीणांचल में ही स्थित है । जिसकी सारी आर्थिक व्यवस्था गाँव के धार्मिक विश्वास के द्वारा दिए गए दान पर ही टिकी है। वैसे तो इमरितिया गौरी और लक्ष्मी जैसी दासियों को विशेष अर्थ की आवश्यकता नहीं है, किन्तु भ्रष्टाचार का अड्डा बना जमनीया का मठ विदेशी समानों के स्मागलिंग का केन्द्र बन गया है ।

इस तरह अगर देखा जाये तो जमनीया के मठ में रहने वाली दासियों को आवश्यक आर्थिक सहायता ग्रामीण भक्तों की तरफ से प्राप्त हो जाया करती है, जो रकम

दान और चढ़ावे के रूप में मठ को प्राप्त होती है । नागार्जुन ने जमनीया के मठ में नारी पात्रों के आर्थिक समस्या की कोई विशेष भूमि नहीं प्रदान की है । क्योंकि वह धर्म पर आधारित ढोंग-ढकोसलों और मठ के नाम पर भ्रष्टाचार का केन्द्र बना । जमनीया के मठ का राज उजागर करने के लिए लिखा गया है । अन्ततः जमनीया के मठ में नारी पात्रों की भूमिका सहज दासियों के रूप में है, इसलिए उन्हें किसी विशेष अर्थ-व्यय की आवश्यकता नहीं है । और जिस आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आर्थिक आवश्यकता है, उसकी भरपायी मठ में दान और चढ़ावे की रकम से निकल जाया करता है । इस प्रकार 'जमनीया का बाबा' नामक उपन्यास में नारियों का कोई विशेष आर्थिक पहलू उभरकर सामने नहीं आता है।

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी की आर्थिक समस्या निम्न वर्गीय और मध्यवर्गीय पारिवारिक स्तरों में अपने-अपने तरह की आर्थिक विषमताओं में चलती हैं । इस आर्थिक विषमता का मूल कारण कथा भूमि के अन्दर व्याप्त नारी वर्ग के अशिक्षा का रूप है। मूलतः मिथिलांचल के ग्रामीण परिवेश में कुलीनता के नाम पर महादरिद्र व्यक्तियों से भी अपनी बेटी का विवाह करने का प्रचलन है । यही कारण नारी पात्रों की आर्थिक समस्या का मूलाधार है। वैसे तो जिस समय नागार्जुन ने अपने उपन्यासों की रचना की उस समय भारत की तत्कालीन स्थिति ऐसी नहीं थी जहाँ ग्रामीणांचल में उद्योग-धन्धे स्थापित कर रोजगार उत्पन्न कराए जाएँ । साथ ही सामाजिक दुर्व्यवस्थाओं के चलते नारियों में अशिक्षा व्याप्त थी, जिसके चलते वे नौकरी पेशा नहीं कर सकती थीं । स्वभावतः तत्कालीन कथा परिवेश में नारियों की आर्थिक समस्या सबसे जटिल समस्या है । क्योंकि विधवा नारी पात्रों को अपनी बेटी के विवाह के लिए, दहेज की माँग की पूर्ति के लिए अर्थ सबसे बड़ी समस्या है । पति के मर जाने से आर्थिक आय के सारे स्रोत बन्द हो जाने के चलते नारी पात्रों के सामने आर्थिक समस्या भयावह रूप में उपस्थित है।

संदर्भ :

1. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 17
2. वही, पृ. 27
3. वही, पृ. 60
4. वही, पृ. 17
5. वही, पृ. 61
6. वही, पृ. 61
7. वही, पृ. 75
8. वही, पृ. 75
9. वही, पृ. 76
10. वही, पृ. 117
11. वही, पृ. 118
12. वही, पृ. 120
13. वही, पृ. 119
14. बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 107
15. नयी पौध : नागार्जुन, पृ. 154
16. वही, पृ. 55
17. वही, पृ. 91
18. वही, पृ. 25
19. वरुण के बेटे : नागार्जुन, पृ. 95
20. वही, पृ. 14
21. वही, पृ. 98
22. वही, पृ. 51
23. पारो : नागार्जुन, पृ. 81
24. वही, पृ. 21
25. वही, पृ. 64
26. वही, पृ. 15
27. वही, पृ. 147
28. दुखमोचन : नागार्जुन, पृ. 51
29. कुम्भीपाक : नागार्जुन, पृ. 141
30. वही, पृ. 144
31. उग्रतारा : नागार्जुन, पृ. 128
32. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 128

33. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 172
34. बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 25
35. वही, पृ. 66
36. वही, पृ. 26
37. वही, पृ. 30
38.नयी पौध : नागार्जुन, पृ. 167
39. वही, पृ. 39
40. वही, पृ. 59
41. वही, पृ. 47
42. बलचनमाः नागार्जुन, पृ. 43
43. नयी पौध : नागार्जुन, पृ. 63
44. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, पृ. 20
45. वरुण के बेटे : नागार्जुन, पृ. 74
46. पारो : नागार्जुन, पृ. 75
47. वही, पृ. 40
48. दुखमोचन : नागार्जुन, पृ. 42
49.वही, पृ. 168
50. वही, पृ. 91
51. कुम्भीपाक : नागर्जुन, पृ. 28
52. वही, पृ. 30
53. वही, पृ. 110
54. वही, पृ. 42
55. वही, पृ. 49
56. उग्रतारा : नागार्जुन, पृ. 15
57. वही, पृ. 25
58. जमनिया का बाबा : नागर्जुन, पृ. 49
59. वही, पृ. 15
60. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 25
61. वही, पृ. 26
62. वही, पृ. 26
63. वही, पृ. 14
64. वही, पृ. 55
65. नयी पौध : नागार्जुन, पृ. 19

66. वरुण के बेटे : नागार्जुन, पृ. 34
67. पारो : नागार्जुन, पृ. 54
68. वही, पृ. 67
69. वही, पृ. 30
70.जममिया का बाबा : नागार्जुन, पृ. 55
71. वही, पृ. 55
72. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 50
73. वही, पृ. 25
74. बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 30
75. वही, पृ. 35
76. वही, पृ. 35
77. बाबा बटेसर नाथः नागार्जुन, पृ. 40
78.वरुण के बेटे : नागार्जुन, पृ. 39
79.कुम्भीपाक : नागार्जुन, पृ 132

उपसंहार

उपसंहार

नागार्जुन हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं । प्रगतिवादी कवि के रूप में उनका योगदान हिन्दी काव्य के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। उनेक काव्य में समाविष्ट विचारों की प्रगतिशीलता एवं दलित वर्ग के प्रति व्यक्त आत्मीय संवेदना प्रगतिवादी कवियों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान नियत कर रही है । इसके साथ ही उन्होंने भारत की खेतिहर जनता, मजदूरों के निम्न स्तरीय जीवन का विवेचन प्रस्तुत करते हुए इस उपेक्षित शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व किया है। वे हिन्दी कविता के बेजोड़ व्यंग्यकार हैं । व्यंग्य की विभिन्न शैलियों को अपनाकर उन्होंने सामाजिक एवं आर्थिक अव्यवस्थाओं, भ्रष्ट नेताओं आदि पर करारे व्यंग्य किये हैं । नागार्जुन कवि ही नहीं अपितु उपन्यासकार के रूप में भी सुप्रसिद्ध हैं। हिन्दी के आँचलिक उपन्यासकारों में उनका विशेष स्थान है । उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से मिथिला अँचल के जीवन एवं जीवन-शैली को सजीव कर दिया है। आँचलिक उपन्यासों की परम्परा के विकास में नागार्जुन का योगदान अद्वितीय है।

भारतीय सांस्कृतिक रंगमंच पर लोक-संस्कृति की अधिष्ठात्री नारी 'देवी', 'अर्धांगिनी' तथा 'माता' जैसे संबोधनों से सुशोभित होने पर भी सामाजिकता के परिप्रेक्षय में प्रायः कुत्सा का ही शिकार बनी रही और समस्त सामाजिक विसंगतियों का कारण मानी जाती रही । आधुनिक युग में नारी का उत्तरदायित्व बढ़ गया, शिक्षा के फलस्वरूप उसे अपनी गरिमा का भान हुआ, जिसके परिणामस्वरूप जीवन के विविध आयामों के संदर्भ में नये प्रश्न उभर कर उसके सामने आने लगे । नारी को अपने जीवन का ढर्रा काफी बदलना पड़ा और इसके लिए उसे प्रशंसा तथा दुःशंसा दोनों झेलनी पड़ीं ।

नागार्जुन का जन्म 'सतलखा' ग्राम में 1910 में उनके ननिहाल में हुआ था, जो उनके पैतृक ग्राम 'तरौनी' से 24-25 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। निम्न मध्यवर्गीय मैथिल ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए नागार्जुन का ननिहाल एवं पैतृक ग्राम दोनों ही जिला दरभंगा (बिहार) में स्थित हैं। उनके पिता का नाम गोकुल मिश्र तथा माता का नाम उमा देवी था ।

उनका गोत्र 'वत्स' तथा कुल की शाखा 'पालिवाड-समोल' माना जाता है। नागार्जुन के बचपन का नाम 'ठक्कन मिसिर' था । चार वर्ष की अवस्था में माता का निधन नागार्जुन के जीवन में विष घोल गया । पिता के क्रूरता पूर्ण व्यवहार ने नागार्जुन को केवल बर्दास्त करते जाने की प्रवृत्ति का शिकार बना लिया । यहीं से प्रारंभ हुई, घुटन पूर्ण जिन्दगी से निकल बाहर होने की जंग । मातृ अभाव में छिनता बचपन शुष्क और उग्र हो उठा, किन्तु पिता के कड़े अनुशासन के नाम पर क्रूरता पूर्ण व्यवहार के चलते वह घुटन, बाद में क्रान्तिकारी साहित्यकार के रूप में नागार्जुन को निर्मित करता है। 'वैद्यनाथ शिव' के आशीर्वाद से उत्पन्न उनका नाम 'वैद्यनाथ' पड़ा । बौद्ध धर्म के प्रभाव में 'नागार्जुन' तथा यात्राओं की अधिकता से 'यात्री' एवं लोगों में 'बाबा' नाम से प्रसिद्ध ; 'बाबा वैद्यनाथ मिश्र', 'नागार्जुन', 'यात्री' कहलाए। नागार्जुन को प्रारंभिक शिक्षा के बाद पारिवारिक आर्थिक संकट ने दूसरे की शरण लेने के लिए विवश किया । नागार्जुन ने काशी से शास्त्री तथा कलकत्ते से 'काव्य तीर्थ' की उपाधि प्राप्त की ।

तत्कालीन सामाजिक परिवेश के अनुसार मैथिली परंपरा के अनुसार नागार्जुन का विवाह एक सम्पन्न परिवार की सभ्य सुशील कन्या 'अपराजिता' के साथ 18 वर्ष की उम्र में हुआ। यायावारी प्रवृत्ति के चलते नागार्जुन के युवाकाल में और प्रारंभिक वैवाहिक जीवन में उथल-पुथल ही रही। गार्हस्थ्य जीवन भी पिता की कुत्सित मानसिकता और मैथिली समाज की विविध सामाजिक विषमताओं के चलते अस्थिर ही रहा। तत्कालीन मैथिल समाज की विद्रूपता के चलते और पिता के व्यवहार से घर के प्रति वे विरक्त से रहने लगे, किन्तु वे अपनी पत्नी का बहुत ही सम्मान करते थे । उपेक्षा वृत्ति एवं धनाभाव के कारण वे अपने संघर्षमयी जीवन में अपनी संतान को उच्च शिक्षा नहीं दे सके । अतः उनकी संतानें उच्च शिक्षा से वंचित रह गयीं । गार्हस्थ्य जीवन के निर्वाह में वे परिवार के लिए हमेशा कृत संकल्पित रहे। उनके गार्हस्थ्य जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी उनका खराब स्वास्थ्य ही रहा

है। इस प्रकार सारी विपन्नता और जीवन संघर्ष के बाद भी सरल जीवन जीने में आस्था रखने वाले '**बाबा नागार्जुन**' का गार्हस्थ्य जीवन अभाव ग्रस्त भले ही रहा हो, पर असंतोष प्रद नहीं। बाबा नागार्जुन का देहावसान 5 नवम्बर, 1998 को हुआ।

नागार्जुन के रचना संसार में उपन्यासों का महत्त्वपूर्ण योगदान है । उनके उपन्यासों का आरंभ ही 'नारी' विषयक शीर्षक से होता है – **'रतिनाथ की चाची'** । 'रतिनाथ की चाची' उनकी सृजननात्मकता के प्रथम सोपान का आरंभ है, जिसमें ग्रामीण जीवन की समस्याओं के साथ जूझती नारी का संघर्ष चित्रण है। नारी के प्रति हो रहे अत्याचारों से समाज का जो स्वरूप बनता है वह संपूर्ण नारी वर्ग को सचेत करने के लिए संकेत करता है । जिसमें उपन्यासकार के द्वारा नारी की मूक चेतना का मनोवैज्ञानिक विमर्श प्रस्तुत किया गया है। इनके उपन्यासों में ***'बलचनमा'*** से लेकर '**नयी पौध**' तक तथा ***'दुःखमोचन'*** से लेकर ***'बाबा बटेसरनाथ'*** तक नारी ही विमर्श बिन्दु के रूप में उपस्थित है। इनमें अनमेल और असंगत विवाह के बीच पिसती नारी की अन्तर्व्यथा में विरोध का क्रान्तिकारी वर्णन तथा पुरुष वर्चस्व के विरोध में नारी का मुखर-आख्यान पूर्णः यथार्थ रूप में उपलब्ध है। ***'उग्रतारा'***, ***'वरुण के बेटे'*** ***'कुम्भीपाक'*** में नारी के शोषण के यथार्थ का पर्दाफाश हुआ है। सामंतवादी विचारधाराओं की शिकार तथा पुरुष वर्चस्व से तंग नारी समुदाय की विरोधिक यथार्थ का परिणाम उनमें अन्वेषी तत्त्व के रूप में विद्यमान है। ***'जमनिया का बाबा'*** में नारी अधिकारों के हनन पर, मुखर नारी का विरोध प्रदर्शन, नारी की सजगता का प्रमाण देता है। ***'पारो'*** में अनमेल विवाह, बाल विवाह जैसी कुरीतियों की शिकार नारी की चीत्कार है, जो सामाजिक कुरीतियों की बलिबेदी पर अपना पूरा जीवन होम कर देती है। उसका दारुण जीवन अन्तःमन से उनका विरोध करती हुई, इन सभी कुरीतियों को तोड़ने के लिए तैयार है। पुरुष की जोर जबरदस्ती का पुरजोर विरोध है, जहाँ नारी, समाज के सारे बाँध लाँघने को मजबूर है । इस प्रकार अपने उपन्यासों में नारी-विषयक

बिन्दुओं को छूकर नागार्जुन ने अपनी नारी संवेदना का परिचय दिया है ।

नारी एवं नारी-विमर्श' में 'नारी' शब्द की उत्पत्ति और आविर्भाव में नारी क्या है ? क्या रही है ? और किस रूप में स्वयं के अस्तित्व को बचाती आई है, इसको विवेचित किया गया है । आविर्भाव में वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, आरण्यक तथा वृहत कोशीय अवधारणाओं के अन्तः प्रमाणों के सुलिखित व्याकरणीय एवं शास्त्रीय सर्वमान्य मान्यताओं के मानक स्वरूप को लिया गया है। नारी और नारी-विमर्श की सार्थक भाव-भूमि में प्रचलित एवं क्लिष्ट सार्थक शब्द पर्याय को जीवन के उपयोगी एवं व्यावहारिक आधार पर खोजने का प्रयास किया गया है। नारी के विविध सार्थक रूपों का वर्णन, ऐतिहासिक, परंपरागत, रूढ़िगत, साकार एवं साम्बन्धिक जीवन निर्वाह के रूप में किया गया है, जो संबन्धों की सार्थकता से नाम रूप में, सृष्टि में सर्वदा से व्याप्त रहे हैं और आज भी व्याप्त हैं । सृष्टि के गर्भ में पलने वाले संबन्धों के बीच नारी की महत्ता का प्रतिपादन भी स्वतंत्र रूप से हुआ है। जिसमें त्याग तपस्या के साथ समर्पण और निःस्वार्थ सेवा भाव से जगत् को व्याप्त करने वाली नारी के स्नेह का नया उद्घाटन किया गया है। नारी महत्ता की उचित स्थपना, सृष्टि के सृजन के प्रति भी ध्यान खींचती है, जहाँ उत्पति में मानव का अस्तित्व साकार होता है। वह महत्त्व नारी की सृजनात्मकता को द्योतित करती है । उसकी महत्ता संगीत, साहित्य और कला से भी ऊपर की होती है ।

'नारी-विमर्श' का अर्थ एवं परिभाषा में 'विमर्श' की व्याकरणिक उत्पत्ति और अर्थ के साथ सामान्य प्रयोग तथा साहित्यिक प्रयोग को दर्शाया गया है – जिसकी सार्थक परिभाषा आधुनिक साहित्यकारों एवं नारीवादी विमर्शकारों के अनुसार उल्लिखित की गई हैं । 'नारी-विमर्श' के उद्भव और विकास को पाश्चात्य आयातीत अवधारणाओं एवं आधुनिक भारतीय साहित्यकारों की उचित सार्थक अवधारणाओं को एक विवेचनात्मक बिन्दु-आधार पर रख कर देखा गया है । 'भारतीय एवं पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य में नारी-विमर्श' के अत्यन्त

आवश्यक पहलुओं को दर्शाया गया है। नारी-विमर्श वह नारीवादी अवधारणा है – जिसके लेखन में पितृ सत्तात्मक मूल्यों एवं अवधारणाओं को चुनौती दी गई है, उसके विरूद्ध सम्वाद करते हुए उन मूल्यों को खारिज किया गया है, उससे स्त्री की समाज में बदलती हुई स्थिति, दृष्टि और भूमिका का प्रश्न भी नए परिप्रेक्ष्य में उभर कर सामने आया है।

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों के जीवन अस्तित्व की तालाश जारी है, जहाँ व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्र कैसे अपना जीवन-यापन करते हैं तथा सामाजिक वैषम्य से लड़कर कैसे अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करते हैं? इसमें उच्च वर्ग के नारी पात्र के संत्रास के साथ मध्यवर्गीय, निम्नवर्गीय, ग्रामीण, शहरी, शिक्षित तथा अशिक्षित नारी पात्र भी सम्मिलित हैं। व्यक्ति चरित्र के रूप में नारी पात्र का संघर्ष, नारी चेतना का सशक्त निदर्शन है, जो नागार्जुन के उपन्यास साहित्य में विविध सम्बन्धों के बीच उभर कर सामने आया है। माँ के रूप में – ''बबुआ बलचनमा मर जाना लाख गुना अच्छा है। मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं।'' नारी की चेतनागत स्थिति में नागार्जुन के उपन्यास में नारी ही विमर्श की बिन्दु है जो सहज रूप से जीवन की सारी उहापोह में नई पीढ़ी के लिए सशक्त विमर्श छोड़ देती है – ''........... रामेश्वरी थोड़ी देर अकेले में जाकर चटाई पर औंधी लेट गई, भाभियों की नजर बचाकर वह बहुत कुछ सोचती रही, लड़की के जीवन को धूल में मिलाने का उसे क्या अधिकार है? पिता को यह क्या हो गया है ? दूल्हे को आने तो दो उस बुड्ढे के माथे पर अंगारे न डाल दूँ तो .... रामेश्वरी मेरा नाम नहीं ....।''

नारी के जीवन का सुख, उसके नारीत्व का उपयोग, उसके स्वयं द्वारा सहज और टिकाऊ रूप में संबन्धों के उचित ताल-मेल से है ना कि समाज द्वारा जबरदस्ती थोपना। इसके विमर्शात्मक स्वरूप में नारी जीवन का सुख और उसकी अधिकारिक माँग एक नए दृश्य के रूप में उभर कर सामने आती है – ''क्या हुआ ? धन-संपदा ही बड़ी चीज है ? पन्द्रह साल की कच्ची छोकरी, पचास साल के पकठोस दूल्हा के साथ किस तरह अपनी

जिन्दगी काटेगी ....? ....। नहीं होगा .... नहीं होगा .... यह ब्याह ।'' कल्पनाओं से उबकर नारी के वास्तविक जीवन जीने की कला नागार्जुन के नारी- विमर्श में अपने यथार्थ की नई स्थापनाओं के साथ सारी रूढ़ियों को धोकर चलता है ''......... सुन रे पगली ! देख ले इन हाथों को .... अभी तो खैर एक ही चूड़ी फूटी है, आगे सारी की सारी फूट जाएँगी, ... इनके फूटने न फूटने में क्या रखा है ? हाँ भगवान करें, किसी की तकदीर न फूटे ....।'' नारी जीवन में अनमेल विवाह से वृद्ध पति की मृत्यु के सत्य से वाकिफ नारी जानती है, पति की मृत्यु निकट भविष्य में कभी भी हो सकती है किन्तु उसकी सजगता उसे भयभीत नहीं करती ।

नारी-विमर्श की सत्यता नागार्जुन ने भींगे स्वर में नहीं की है बल्कि उनकी लेखनी युग-बोध से ऊपर की छलांग लगाती है – ''......और ; बगैर मर्द के कोई औरत अकेली जिन्दगी नहीं गुजार सकती है क्या ?..........।'' वर्चस्ववादी अवधारणाओं से पूरे समाज के प्रति नारी का आक्रोश अनमेल विवाह परंपरा को धिक्कारता है – ''हे भगवान ! लाख दण्ड दे मगर औरत बनाकर इस देश में जन्म नहीं दे.........।''

पुरुष वर्चस्व के विरोध में आवाज उठाने वाली नारी अपनी मानसिक शक्ति का प्रयोग इस व्यवस्था को समझने में करती है – ''पिस्तौल का क्या करोगे ? छिछोर मन का इलाज कारतूस की पेटी से नहीं होगा । स्त्री-पुरुष में समान रूप से समझदारी पैदा होगी और .... तभी व्यभिचार कम होगा । देहात में खाते-पीते परिवारों के अधेड़ भारी मुसीबत पैदा करते हैं। उगनी जैसी लड़कियों के लिए ज्यादा संकट उन्हीं की तरफ से आता है। दूसरा संकट है डरपोक नौजवानों की छिछली सहानुभूति । इन संकटों का मुकाबला हम पिस्तौल से नहीं कर सकते ....।'' नारी की जागृति नागार्जुन की अन्तःधारणा है – ''देखें कौन क्या बिगाड़ता है। मैं रूई का फाहा नहीं हूँ, कि लोग फूँक देंगे और मैं उड़ जाऊँगी, मर्द हो तो सामने आकर कोई कहे...........।''

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी-विमर्श केवल सांकेतिक ही नहीं है वरन् उनके उपन्यास की कथा सृजन की मूल प्रेरणा ही नारियों की समस्याएँ हैं । जहाँ पुरुष वर्चस्व की अतिक्रमणकारी विचारधारा के प्रति नारियों की चेतना है, वहाँ उनके विरोध की शक्ति भी है। नारी की दमित इच्छा शक्ति को बाहर निकाल खड़ा करना तथा पुरुष के सामंती विचार के प्रति विरोध प्रकट करने की शक्ति भरना उनके उपन्यासों का लक्ष्य है – जहाँ सिर्फ नारी ही विमर्श की बिन्दु है। पारिवारिक एवं सामाजिक अधिकार की माँग के प्रति सजग नारी-पात्रों का इतिहास सारी रूढ़ियों को तोड़कर नए विश्वास से आगे बढ़ने का संदेश प्रदान करता है।

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी की भूमिका का गवेषणात्मक विश्लेषण किया गया है। इसमें नारी की पारिवारिक भूमिका के निर्वाह में सामाजिक विषमताओं की बाधक प्रवृत्ति का नवीन रूप उभर कर सामने आया है । पुरुष वर्चस्व के बीच अपने परिवार को सम्भालती नारी आर्थिक विषमता से जूझती है । सामाजिक भूमिका में युग परिवर्तिनी नारी, चेतना-शक्ति के रूप में उपस्थित है। नारी समाज के उन बन्धनों का विरोध करती है, जहाँ पर उसका विकास बाधित होता है। पुरुष वर्चस्व के खिलाफ नारी का आक्रोश उस व्यवस्था की भर्त्सना करता है, जहाँ नारी केवल भोग और विलास की वस्तु समझी जाती रही है। विलासिता के विरूद्ध आवाज उठाती नारी का अपने अधिकारों के प्रति सजग होना नारी-विमर्श का प्रतीक है । नारी के आक्रोश को साकार रूप देता नागार्जुन का नारी-विमर्श समाज की भयावहता की तस्वीर बदल देता है – ''मधुरी ने कहा देखो मंगल अब हम छोकरा-छोकरी नहीं रहे - धूल-मिट्टी के बचकाने खेल काफी खेल चुके, सयाने समझकर माँ-बाप और सास-ससुर ने तुम पर जो जिम्मेदारी सौंपी है, उससे जी चुराना कायरता होगी। तुम्हें अपनी घरवाली के प्रति वफादार होना है । मुझे अपने घरवाले के प्रति। गाँव-गँवई के हम सीधे-सादे लोग ठहरे, हमारा प्रेम नगर समाज से या संसार के बाहर आबाद हुआ है। सुनती हूँ बड़े आदमी जब और कामों से ऊब उठते हैं तो दिल के टुकड़े इधर-उधर फेंका

करते हैं और दसियों घर बर्बाद कर छोड़ते हैं, मैं तुम्हारा घर बर्बाद करना नहीं चाहती मंगल, मैं नहीं चाहती कि एक औरत की सिंदूरी माँग पर कालिख पोतती रहूँ ।''

समाज में मानवोचित अधिकार में सम्मिलित मानवीय संवेदना, नारी की सजग चेतना को एक उत्कृष्ट आयाम प्रदान करती है। उसका जीवन संघर्षों से भरा पड़ा है, किन्तु नागार्जुन मूल्यों के प्रति एक सशक्त विमर्श प्रदान करते हैं । जहाँ नारी झुकती नहीं बल्कि सभी विद्रूपताओं से लड़ने के लिए तैयार है – ''जोर-जबरदस्ती किसी के शरीर पर ही केवल कर सकता है । मन पर कोई कतई नहीं । वैसे आप ही कहिए कि जहाँ पचास वर्ष के वर की पत्नी पन्द्रह साल की होती हो, वहाँ सौमनस्य कैसे संभव है ? बहुत छोटी ही थी मैं जब मामी की मुँह से एक कहानी सुनी थी । उसमें हुआ यह था कि किसी पोखरे में आग लग गई। उन दिनों यह बात अजीब लगती थी, पर अब अच्छी तरह समझती हूँ कि कैसे आग लगती है पानी में ....।''

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी की पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक भूमिका को सरल व्याख्यात्मक रूप में वर्णित किया गया है । इनमें नारी की सरलता-दुरूहता ऊपर-नीचे होकर सन्तुलन बनाती रही है । काम-काज की सक्रियता से उसके जीवन में अर्थोत्पादन की संभावना बनती है, जो गृहस्थी में जीवन को एक नवीन स्थायित्व प्रदान करती है। यही जागरूकता नारी-विमर्श की बिन्दु है ।

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन की प्रमुख समस्याओं का तार्किक विवेचन किया गया है। इसमें विवश नारी का घुटन से बाहर निकलने के अथक प्रयास का वर्णन तो है ही साथ ही उससे उत्पन्न आक्रोश, उसकी चेतना का साकार बिम्ब बन पड़ा है। पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक समस्याओं को दर्शाने वाले नागार्जुन नारी की समस्याओं को एक विमर्श उपलब्ध कराते हैं । नारी परिवार में संघर्ष करती है, समाज से लड़ती है, धर्म भीरू होने के कारण भय और शंका से ग्रस्त रहती है, साथ ही आर्थिक

भयावहता उसे हमेशा अपना शिकार बनाती है ।

इस प्रकार नारी की सारी शक्ति बच्चों की देखभाल में, घर के चूल्हे-चौके में और पति की सेवा में अपव्यय हो जाती है। उसके पास बौद्धिक, रचनात्मक, सांस्कृतिक, सामाजिक कार्यों के लिए ऊर्जा बचती ही कहाँ है ? वह बँट जाती, टुकड़ा-टुकड़ा, जीवन व्यतीत करती है, वह एक कवयित्री, लेखिका, दार्शनिक, मूर्तिकार, चित्रकार, बिदुषी आदि नहीं हो सकती, तो क्यों ? पुरुष जो करता रहा है – यह सारे काम ? पुरुष लाख चाहे पर घर को व्यवस्थित नहीं कर सकता, उस घर को सुन्दर नहीं बना सकता, बच्चों में वह संस्कार पैदा नहीं कर सकता । नारी घायल होती है, पिटती-मरती है, लेकिन हमारा तथाकथित सभ्य समाज कोई प्रतिरोध नहीं करता । उसे घर का व्यक्तिगत मामला बता दिया जाता है । यह है हमारे समाज का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण, नारियों ने इस अन्याय के खिलाफ संगठित होना प्रारंभ कर दिया है। नारी संगठन इस अन्याय को रोकने के लिए संघर्षरत है । इस सम्पूर्ण आन्दोलन की अवस्थाओं का उद्‌घाटन नागार्जुन के उपन्यासों में नारी की मुखर संवेदना के साथ हुआ है ।

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी ही विमर्श बिन्दु रही है। सजग रूप से नारी का वर्चस्ववादियों के विरूद्ध उठ खड़ा होना उनके विमर्श का मूल्यात्मक लक्ष्य है। नागार्जुन की कथा का अन्तस्चेतन वर्तमान और भविष्य को नारी अधिकार से परिचित कराने का दस्तावेज है। भारत की आत्मा कहे जाने वाले गाँव और उनमें पल रहीं नारियों के जीवन-वैषम्य का जो रूप विमर्श के माध्यम से नागार्जुन के उपन्यासों में प्राप्त हुआ, वह नारी-विमर्श की साहित्यिक यात्रा में मील का पत्थर साबित होगा ।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

संदर्भ ग्रंथ-सूची

हिन्दी ग्रंथ :

उपजीव्य ग्रंथ :

1. उग्रतारा : नागार्जुन, राजमकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं., 1987 ई.
2. कुम्भीपाक : नागार्जुन, राजमकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं., 1987 ई.
3. जमनिया का बाबा : नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वि. सं. 1991 ई.
4. दुखमोचन : नागार्जुन, राजमकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1999 ई.
5. नयी पौध : नागार्जुन, राजमकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वि. सं. 1999 ई.
6. पारो : नागार्जुन, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1995 ई.
7. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, राजमकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 2000 ई.
8. बलचनमा : नागार्जुन, राजमकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1997 ई.
9. वरुण के बेटे : नागार्जुन, राजमकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वि. सं. 2001 ई.
10. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, राजमकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1998 ई.

उपस्कारक ग्रंथ :

1. आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास : राजमकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 2000 ई.
2. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण : मोहम्मद अजहर ढेरीवाल, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 2000 ई.
3. आधुनिक हिन्दी काव्यों में नारी-भावना : शैल कुमारी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्र. सं. 2000 ई.
4. आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी : सरला दुआ, साहित्य निकेतन, कानपुर, प्र. सं. 1975 ई.
5. उपन्यास का पुनर्जन्म : परमानन्द श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1995ई.
6. उत्तर आधुनिक साहित्य विमर्श : सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 2007 ई.
7. नागार्जुन : प्रभाकर माचवे, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, प्र.सं. 1972 ई.
8. नागार्जुन का कथा-साहित्य : तेजसिंह, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1993 ई.
9. नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएँ : सं. शोभाकान्त मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1995 ई.
10. नागार्जुन की सामाजिक चेतना : प्रणय, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1995 ई.
11. नागार्जुन के नारी पात्र : प्रो. अर्जुन धरत, शब्द शक्ति प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1990 ई.

12. नागार्जुन रचना प्रसंग और दृष्टि : रामनिहाल गुंजन, नीलम प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 2002 ई.
13. नारी एक विवेचन : धर्मपाल, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1996 ई.
14. नारी चेतना का आयाम : डॉ. अल्का प्रकाश, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं., 2007 ई.
15. नारीवादी राजनीति : साधना आर्य, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, प्र. सं. 2001 ई.
16. नारीवादी विमर्श : राकेश कुमार, आधार प्रकाशन, पंचकुला हरियाणा, प्र. सं. 2004ई.
17. नारी प्रश्न : सरला महेश्वरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1998 ई.
18. नारी भीतर और बाहर : कमला सिन्धवी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1985 ई.
19. प्रसाद के नारी चरित्र : देवेश ठाकुर, नवयुग प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं., 2005 ई
20. प्रसाद के नारी पात्र : जगदीश नारायण दीक्षित, लोकभारती प्रकशन, इलाहाबाद, 1967 ई.
21. प्रसाद के नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : पुष्पलता वाजपेयी, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1982 ई.
22. बाबा नागार्जुन : प्रभाकर माचवे, वाणी प्रकाशन, पटना, प्र. सं. 1998 ई.
23. भक्तिकालीन राम तथा कृष्ण काव्य की नारी-भावना एक तुलनात्मक अध्ययन : श्याम लाल गोयल, विभु प्रकाशन, साहिबाबाद, प्र. सं. 1976 ई.
24. भारतीय नारी का स्वरूप : नरेश चौधरी, भारतीय प्रकाशन, झाँसी, प्र. सं. 1969 ई.
25. भारतीय नारी : स्वामी विवेकानंद, श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, षष्ठ सं. 1979 ई.
26. भारतीय नारी दशा और दिशा : आशारानी बोरा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1983 ई.
27. भारत में स्त्री असमानता एक विमर्श : गोपा जोशी, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, प्र. सं. 2006 ई.
28. भारतीय इतिहास में नारी : एस. एस. बरे, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, प्र. सं. 2007 ई.
29. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी-भावना : उषा पाण्डेय, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्र. सं. 1957 ई
30. मेरे बाबूजी : शोभाकान्त झा, मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्र. सं. 2007 ई.
31. स्त्री के लिए जगह : सं. राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1994 ई.
32. स्त्री उपेक्षिता : अनुवादक प्रभा खेतान, हिन्दी पाकेट बुक्स, दिल्ली, प्र. सं. 1998 ई.

33. स्त्री सांस्कृतिक संदर्भ : सं. प्रतिभा जैन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, प्र. सं. 1998 ई.
34. स्त्री-चिंतन की चुनौतियाँ : रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 2006 ई.
35. स्त्री-संघर्ष का इतिहास : राधा कुमार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 2005 ई.
36. सामान्य हिन्दी : डॉ. पृथ्वीनाथ पाण्डेय, नालन्दा पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, प्र. सं. 2008 ई.
37. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 36 वाँ सं. संवत् 256
38. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1975 ई.
39. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास : बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2002 ई.
40. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : गणपति चन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1994 ई.
41. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ : शशिभूषण सिंहल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1970 ई.
42. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग : हेमराज निर्मम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1971 ई.
43. हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ : लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय, इंडियन प्रेस प्रा. लि., इलाहाबाद, प्र. सं. 1975 ई.
44. हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन : शान्ति भारद्वाज, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1976 ई.
45. हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद : कमला गुप्ता, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1979 ई.
46. हिन्दी उपन्यास कला : रामलखन शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 1980 ई.
47. हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण : रणवीर रांगा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1985 ई.
48. हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य : मोहिनी शर्मा, जयपुर प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1986 ई.
49. हिन्दी उपन्यास में मध्यवर्ग : मंजुलता सिंह, अंकुर प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1989 ई.

50. हिन्दी उपन्यास : रामदरश मिश्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र. सं. 1989 ई.
51. हिन्दी काव्य में नारी : बल्लभदास तिवारी, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र. सं. 1978 ई.

संस्कृत ग्रंथ :

1. एकादशोपनिषद् : सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, विजयकृष्ण लखनपाल, दिल्ली, 1988 ई.
2. काव्यादर्श : दण्डी, ओरिएण्टल बुक डिपो, दिल्ली, 1958 ई.
3. काव्य प्रकाश (मम्मट) : व्या. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1965 ई.
4. यजुर्वेद : भा. महर्षि दयानन्द सरस्वती, सा. आ. प्र. सभा, वाराणसी, 1946 ई.
5. साहित्यदर्पण : शालिग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1951 ई.

अंग्रेजी ग्रंथ :

1. The Position of Women in Hindu Civilization : A. S. Altekar, Motilal Banarasi Das, Banaras, 1st edi. - 1956.
2. Women and Social : M.K. Gandhi, Navajivan Publishing house, Ahmadabad, 1st edi. - 1942.
3. Women of India : Jawaharla; Nehru, The Publishing Division, Delhi 1st edi.1958.

कोश :

1. अमर कोश : संशोधित रामेश्वर भट्ट, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1908 ई.
2. मानक हिन्दी कोश : सं. रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1966 ई.
3. संस्कृत हिन्दी कोश : वामन शिवराम आप्टे, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1991 ई.
4. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 1) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 1985 ई.
5. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 2) : सं. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 1985 ई.
6. हिन्दी शब्द सागर : डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, सं. 2014 वि.

पत्रिकाएँ :

1. आजकल
2. इन्द्रप्रस्थ भारती
3. भाषा
4. वर्तमान साहित्य
5. समकालीन साहित्य
6. सम्मेलन
7. साहित्य अमृत
8. हिन्दी अनुशीलन

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम	:	नमी दास
शिक्षा	:	एम. ए. (हिन्दी)
विभाग	:	हिन्दी
शोध-प्रबंध का शीर्षक	:	नागार्जुन के उपन्यासों में नारी-विमर्श
प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि	:	19 9. 2002
शोध प्रस्ताव की संस्तुति	:	
(i) बी. पी. जी. एस	:	30 9. 2002
(ii) स्कूल बोर्ड पंजीयन संख्या एवं तिथि	:	688 दिनांक 18.10.2002

NEHU LIBRARY 103964
Acc No..........
Acc By...
Date......8-6-10
Class by..........
Sub.Heading by..........
Enter by..........
Transcribed by..........

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलाँग